Ph.D Thesis

समकालीन हिन्दी कविता में लोक तत्व

SAMAKALEEN HINDI KAVITA MEIN LOK TATV

Thesis

Submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In

HINDI

Under the Faculty of Humanities

By

सीना कुरियन

SEENA KURIAN

Dr. R.SASIDHARAN
Professor&
Head of the Department

Prof.(Dr.)K. VANAJA
Supervising Teacher

Department of Hindi

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

December 2013

Certificate

This is to certify that this thesis entitled **"SAMAKALEEN HINDI KAVITA MEIN LOK TATV"** is a bonafide record of research work carried by **Ms.Seena Kurian**, under my supervision for Ph.D (Doctor of Philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university. All the relevant corrections and modifications suggested by the audience during the pre-synopsis seminar and recommended by the Doctoral Committee of the candidate has been incorporated in the thesis.

Prof.(Dr.)K. VANAJA
Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi- 682 022

Place: Cochin
Date: 31/12/2013

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis entitled **"SAMAKALEEN HINDI KAVITA MEIN LOK TATV"** based on the original work done by me under the guidance of **Dr. K. VANAJA** Professor, Dept. of Hindi, Cochin University of Science & Technology, Cochin- 682 022 and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any other university.

SEENA KURIAN
Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi- 682 022

Place: Cochin
Date: 31/12/2013

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय

समकालीन कविता: एक परिचय 1-80

आधुनिकता- समकालीनता- समकालीनता और आधुनिकता में अंतर- समकालीन कविता-समकालीन कविता की परिस्थितियाँ-समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ

दूसरा अध्याय

लोकतत्व: स्वरूप एवं विश्लेषण 81-157

लोक शब्द का अर्थ एवं परिभाषा- लोक तत्व के विभिन्न पहलू- लोक संस्कृति- लोकजीवन- रीति रिवाज़- लोककला-लोक कथा- लोकविश्वास-लोकधर्म-लोकगाथा- लोकवाद्य-लोकनाट्य- लोकसुभाषित व प्रकीर्ण साहित्य- लोकगीत-त्योहार-किसान संस्कृति- प्रकृति- भाषा

तीसरा अध्याय

समकालीन कविता में लोक जीवन 158-244

पुरुष कविता-स्त्री कविता- दलित कविता- आदिवासी कविता-रीतिरिवाज़-लोकसंस्कृति- लोकविश्वास- त्योहार- खानपान- वेशभूषा- लोककथा- लोकगीत-लोकवाद्य- लोककला-लोकधर्म

चौधा अध्याय

समकालीन कविता में कृषक संस्कृति 245-277

किसानों का जीवन यथार्थ- अपने मिट्टी से जुडाव- वातावरण-रहन सहन- खानपान- रीतिरिवाज़- मानयताएँ एवं परम्पराएँ-आभूषण- वेशभूषा- त्योहार- अंधविश्वास- खेती-बारी-कृषि सहयोगी औजार- धान- किसानों के वाहन

पाँचवाँ अध्याय

समकालीन कविता में लोक प्रकृति 278-311

लोक प्रकृति के अनेक उपादान-पशु-पक्षी-जीवजंतु- ऋतुपरिवर्तन के अनुसार बदलती प्रकृति-मनुष्य के बीच का संबन्ध

छठा अध्याय 312-333

समकालीन कविता में लोक-भाषा

लोकभाषा- बिंब- मिथक-मुहावरे-कहावत- प्रतीक

उपसंहार 334-340

परिशिष्ट 341

शोधछात्रा के प्रकाशित शोध लेख

राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रपत्र प्रस्तुतीकरण

सन्दर्भ ग्रंथसूची 342- 369

पुरोवाक्

समकालीन साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है। इसलिए समाज के बहुसंख्यक मेहनतकश जनसमूह सब कुछ झेलता, प्रतिरोध में जूझता, दुनिया को बचाने और उसे अधिक सुन्दर बनाने कोशिश करनेवाले लोकों के अनुभव और उसे अधिक और अनुभूतियों को साहित्य में दर्ज किया जा रहा है। इन लोकों के जीवन के सभी अंगों का समग्र विश्लेषण करते हुए उसका युग सापेक्ष अवलोकन करना ही लोकतात्विक अध्ययन कहलाता है। आधुनिकता में शहरीकरण की धुन है। वहाँ लोकजीवन को नष्ट होने की सूचना मिलती है। लेकिन यह लोकतत्व ही भारत की पहचान है। यह समझकर समकालीनता में उसे बचाने की कोशिश शुरू हुई। पहले लोक गाँवों तक सीमित था लेकिन आज रोज़गार की तलाश में गाँवों से भारी संख्या शहरों की ओर पलायन कर रही है। इसप्रकार लोक का विस्तार हो गया है। ये पहले अशिक्षित या थोडे बहुत साक्षर और श्रमजीवी होते हैं। लेकिन लोक के विस्तार के कारण उनके जीवन की समस्याएँ भी अलग होने लगीं। वे धीरे- धीरे साक्षर और शिक्षित होने लगे। शिक्षा के प्रचार प्रसार से उसकी चेतना भी विकसित हो रही है और इसके फलस्वरूप समसामयिक समस्याएँ और परिस्थितियाँ लोकजीवन का विषय बनती जा रही हैं। समकालीन कविता बडी मात्रा में लोकजीवन को उकेरने का प्रयास करती आ रही है। इसलिए

मेरे ख्याल से मेरा शोध विषय '**समकालीन हिन्दी कविता में लोकतत्व**' एकदम प्रासंगिक लगता है।

अध्ययन की सुविधा केलिए इस शोध प्रबन्ध को छः अध्यायों में विभक्त किया गया है। शोध प्रबन्ध का पहला अध्याय है '**समकालीन कविता: एक परिचय**'। इस अध्याय में प्रमुख रूप से आधुनिकता, समकालीनता और आधुनिकता में अंतर, समकालीन कविता और समकालीन कविता की परिस्थितियों और प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है।

दूसरा अध्याय है '**लोक तत्व: स्वरूप एवं विश्लेषण**'। इस अध्याय में लोक शब्द का अर्थ एवं परिभाषा, लोकतत्व के विभिन्न पहलू- लोकसंस्कृति, लोकविश्वास, रीति- रिवाज़, लोकगीत, त्योहार, लोककथा, लोकवाद्य आदि पर विचार किया गया है। साथ ही साथ किसानी संस्कृति,लोकप्रकृति आदि पर भी प्रकाश डाला गया है।

तीसरा अध्याय है '**समकालीन कविता में लोकजीवन**'। इस अध्याय में पुरुष, स्त्री, दलित और आदिवासी कविताओं में अभिव्यक्त लोकजीवन पर विस्तार से विचार विश्लेषण किया गया है।

चौथा अध्याय है '**समकालीन कविता में कृषक संस्कृति**'। इस अध्याय में किसानों का जीवन यथार्थ, रहन – सहन,वेश- भूषा, आभूषण, खान- पान, रीतिरिवाज़, अन्धविश्वास, त्योहार, खेती- बारी,कृषि-

सहयोगी औजार, किसानों के वाहन विनाशकारी कीडा जैसे मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है।

पाँचवाँ अध्याय, **'समकालीन कविता में लोक प्रकृति'** में प्रकृति के अनेक उपादान वन, पेड-पौधे, नदी- नाले, पगडंडियाँ, पहाड, पशु- पक्षी आदि पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही ऋतु परिवर्तन के अनुसार बदलती प्रकृति को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

छठा अध्याय है **'समकालीन कविता में लोक भाषा'** । लोकजीवन से जुडे प्रतीक, बिम्ब, कहावत, लोकोक्ति, लोकशब्द, आदि के माध्यम से लोकभाषा के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करने की कोशिश की गई है।

अंत में उपसंहार है। उपर्युक्त छः अध्यायों में हुए विश्लेषणात्मक अध्ययन का निष्कर्ष इसमें प्रस्तुत है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का कार्य कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की आदरणीय अध्यापिका डॉ. के. वनजाजी के वात्सल्य पूर्ण स्नेह-सिक्त कुशल मार्गदर्शन के कारण सम्पन्न हुआ। उनका सहज एवं सौम्य व्यक्तित्व एवं उनकी विद्वता का प्रकाश मेरा मार्ग आलोकित करता रहा है। समय - समय पर उन्होंने मुझे सहज ढंग से कार्य करते रहने केलिए प्रेरणा प्रदान की है। उनके प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ।

मेरे डॉक्ट्रल कमिटि के विषय विशेषज्ञ विभाग के डॉ. एन. मोहनजी के प्रति ह्रदय से आभार व्यक्त करती हूँ। जो प्रतिष्ठित विद्वान एवं एक अच्छे व्यक्तित्व की प्रतिमूर्ति हैं। जिनका सहाय मुझे समय- समय पर मिलता रहा है।

विभाग के अध्यक्ष डॉ. आर. शशिधरन जी के प्रति भी मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

इस विभाग के अन्य गुरुजनों को भी इस संदर्भ में स्मरण करती हूँ।

पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने पुस्तक तथा पत्रिकाएँ उपलब्ध कराके मेरे इस कार्य में सहायता की।

इस अवसर पर मैं अपने प्रिय पिताजी कुरियन, माताजी सिसिली और मेरे भाई सिजु के प्रति भी कृतज्ञता अर्पित करती हूँ।

इस शोध प्रबन्ध के आवरण चट्टे की निर्मिति में सहायक मेरा दोस्त सोणी जी के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ।

मैं अपने प्रिय मित्रों एवं शुभचिंतकों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समय- समय पर मेरी सहायता की है। सर्वोपरी मैं ईसा मसीहा के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनकी कृपा से यह शोधकार्य संपूर्ण हुआ है।

मैं यह शोध प्रबन्ध विद्वानों के समक्ष सविनय प्रस्तुत कर रही हूँ। मुझ अकिंचन की इस कोशिश में आयी हुई कमियों केलिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

सविनय,

सीना कुरियन

शोध छात्रा

हिन्दी विभाग

कोच्चिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

कोच्चिन- 682 022

तारीख:31/12/2013

समकालीन कविता: एक परिचय

जो भी व्यक्ति समय की चेतना को आत्मसात करता है उसे समकालीन कहा जाता है। जब कवि देश- काल की सीमाओं को लाँघकर मनुष्य एवं प्रकृति का वह रूप देख पाने में सक्षम होता है जो चिरंतन- सा है, तो कृति कालजयी बन जाती है और किसी- न किसी रूप में सदैव एवं सर्वत्र संगत जान पडती है। ऐसी कृति का लक्ष्य एवं संदेश सर्व- ग्राह्य बनने में सक्षम हो पाता है। तो वह समकालीन होता है। साहित्य के क्षेत्र में एक साथ एक समय में जीने और लिखने वालों को समकालीन शब्द से संबोधित करते हैं। यह प्रवृत्ति वास्तव में तत्कालीन घटनाओं, परिवर्तनों के आधार पर उभरकर आती है। समकालीन होने का मतलब उसके अंतर्विरोधों को प्रस्तुत करना मात्र नहीं है। साथ ही साथ उसमें भविष्य को उज्वल बनानेवाले नमूने भी निहित है, जो उसे सचमुच समकालीन बनाता है। वास्तव में आज की परिस्थितियों के सामने खडे होकर मुठभेड करना ही समकालीन है। इसलिए अतीत की गोद से वर्तमान में यात्रा करते हुए भविष्य की ओर संकेत करें वही समकालीन कहा जाता है।

समकालीन शब्द 'सम' उपसर्ग तथा 'कालीन' विशेषण के योग से बना है। 'सम' उपसर्ग का प्राय: 'एक ही' अथवा 'एक साथ' के अर्थ में होता है। 'कालीन' शब्द का अर्थ है 'काल' में अथवा 'समय में' समकालीन का सामान्य अर्थ 'एक ही समय में होने या रहने वाले' से है।

प्रामाणिक हिन्दी कोश के अनुसार समकालीन शब्द का अर्थ 'एक ही समय में होनेवाला या वर्तमान कालिक आदि है[1]' मानक हिन्दी कोश में समकालीन शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया गया है। "जो उसी काल या समय में जीवित अथवा वर्तमान रहा हो, जिस में कुछ और विशिष्ट लोग भी रहे हो एक ही समय में रहनेवाला"[2]। नालन्दा विशाल शब्द सागर के अनुसार समकालीन शब्द का अर्थ है 'जो एक ही समय में हुए हो' [3]। समकालीनता को अच्छी तरह समझने केलिए हमें आधुनिकता की जानकारी ज़रूरी है।

आधुनिकता

वैसे तो प्रत्येक युग अपने पूर्व युग से किसी न किसी अर्थ में आधुनिक होता ही है, क्योंकि आधुनिकता गत्यात्मक होती है। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तनों तथा इन सबसे मूल में निहित नये नये अन्वेषणों ने विश्व को हमेशा नयी गति, नयी चेतना व नये अर्थ दिये हैं। समय पर हमेशा से आधुनिकता की परतें चढती आयी हैं। आधुनिकता वास्तव में संदर्भहीन नहीं होती। वह अतीत को सार्थक रूप में भविष्य के साथ संबद्ध करती है। भावविह्वलता और कोरी

---

[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रामाणिक हिन्दी कोश, पृ. 914

[2] रामचन्द्र वर्मा,मानक हिन्दी कोश, पृ. 278

[3] नवलजी, नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ.1404

आध्यात्मिकता के स्थान पर उसमें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और वैज्ञानिकता का आग्रह रहता है।

आधुनिकता की शुरुआत यूरोप से हुई है। आधुनिकता के अग्रदूत के रूप में श्री एलन पो को मानते हैं। आधुनिकता की ललक सारे पश्चिम देशों में उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में ही बढ गयी थी। बीसवीं शती में आधुनिकता अपने आप में एक मूल्य बन गयी। बीसवीं शती तक आते- आते विभिन्न देशों में आधुनिकता को प्रतिष्ठित करनेवाले आन्दोलन पनपे। भाववादी युग के स्थान पर वस्तुवादी युग के चरण बढ गये। धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, व राजनीतिक व्यवस्थाएँ बदलने लगीं। यह परिवर्तन आधुनिक युगीन साहित्य में प्रतिध्वनित हुआ।

आधुनिक युग में मनुष्य तार्किक बन गया। वह बौद्धिक बनने के कारण प्रश्न करता है। आधुनिकता की वास्तविक टकराहट सबसे पहले धर्म और अध्यात्म से हुई, क्योंकि कोई भी नया बोध पहले स्थापित बोध से टकराता है। इस दृष्टि से पुरातन और मध्ययुगीन बोध दृष्टि के धर्म- अध्यात्म द्वारा अनुशासित होने के कारण विज्ञानजनित नए बोध की टकराहट भी इसी से हुई।आधुनिकता का प्रथम विस्फोट धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में हुआ था जो आधुनिकता को समझने में आज भी सहायक हो सकता है। किंतु यह आधुनिकता की सीमा न मानना चाहिए। यह ज़रूर हुआ कि तत्कालीन व्यक्ति की सोच पर धर्मप्रेरित आस्था- विश्वास, श्रद्धाभाव का जो साम्राज्य था, विज्ञान सम्मत तर्कदृष्टि ने उसकी नींव पूरी

तरह हिला दीं। उसके बाद उसकी एक- एक दीवार ढहती गई। इससे मध्यकालीन जीवन और बोध उत्तरोत्तर अप्रासंगिक एवं व्यर्थ होता गया। आधुनिक मानव ने एक ओर धर्म,ईश्वर को चिंतन के क्षेत्र से निकाला दूसरी ओर उसके समक्ष मानव को केन्द्र में रखने पर नई समस्याएँ पैदा हुई। नैतिकता, स्वतंत्रता, अस्तित्व की सार्थकता आदि के प्रश्न उतने ही गहरे और गंभीर रूप में उठ खडे हुए, जिनके उत्तरों की खोज में वह लगा है। "आधुनिकता काल की चेतना है, पर काल-बद्ध रूढि नहीं है। यह बात अगर समझ ली जाये तो इसके संबन्ध में बहुत सारे भ्रम अपने आप छूट जायेंगे। आधुनिक होने का अर्थ होता है यह पहचानते चलना कि हम किस ज़मीन पर है, हम किस हवा को अपनी साँसों में भर रहे हैं, छोड रहे हैं हम किस आकाश के वितान के साये में चल रहे हैं चल भी रहे हैं या फिर हमारा कोई भी साया चल रहा है, हम देश और काल बदल सकते हैं पर पहचानने का भाव नहीं बदलता, क्योंकि वह तो प्रक्रिया है"[1]।

हिन्दी साहित्य के प्राचीन और नवीन रूपों के बीच एक निश्चित विभाजन रेखा खींचना दुस्तर कार्य है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नवीनता और आधुनिकता के विकास में पश्चिमी भावों और विचारों का बहुत बडा हाथ रहा था। क्योंकि भारत सदियों से औपनिवेशिक शक्तियों के हाथों में था। भारत पर विभिन्न लोगों का आक्रमण हुआ था। वे अपने आधिपत्य कायम रखने में सफल हुए। सम्राट

---

[1] विद्यानिवास मिश्र, नयी कविता की मुख्यधारा, पृ. 6

हर्षवर्द्धन के समय से ही उत्तर भारत पर यवन आक्रमण आरम्भ हो गये। हर्षवर्द्धन ने दृढता से उनका सामना किया, उसकी समस्त शक्ति उस प्रतिरोध में ही समाप्त हो गयी। हर्षवर्द्धन की मृत्यु ने भारत की संगठित सत्ता के खण्ड- खण्ड हो जाने की सूचना दी तथा वे राजपूत- राज्य सामने आये, जो निरंतर युद्धों की आग में जलते- जलते अंतत: विशाल इस्लाम साम्राज्य की नींव में समा गये। आठवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक के भारतीय इतिहास की राजनीतिक परिस्थिति हमें यह दिखाती है कि हिन्दु सत्ता के धीरे- धीरे उदय होने लगे।

सबसे पहले भारत पर मुस्लिम सुलतान महमूद गजनबी का आक्रमण हुआ था। गजनबी का आक्रमण धर्म प्रचार केलिए था। उन्होंने यहाँ के मंदिरों को तोड डाला, उसके बाद मुहम्मद गोरी का आगमन हुआ। उसने भारत को मुस्लिम राज्य बनाया। धर्म प्रचार में वे विजयी बने। सन् 1325 से 1351 तक दिल्ली में सुलतान मुहम्मद बिन तुकलक का राज्यकाल था। सुलतान महमूद शाह की मृत्यु के उपरांत 1412 में तुकलक वंश का आधिपत्य समाप्त हो गया इसके बाद खिज्र खां ने दिल्ली पर अधिकार किया जो 1451 ई तक चलता रहा। सुलतान इब्राहिम लोदी(1487-1526) को शक्तिशाली मुगलों का सामना करना पडा और लोदी वंश की सल्तनत की स्थापना का दौर था। लोदी वंश के शासन काल में ही केन्द्रीय शासन शिथिल पड चुका था।

1498 में पुर्तगाली वास्को दा- गामा का आगमन व्यापार के उद्धेश्य से हुआ। समुद्री मार्ग खोज निकालने के बाद योरोपीय देशों से कई संघ व्यापार के तौर पर आते रहे। फिर 1579 में अंग्रेज़ 1597 में डेच और 1643 में फ्रेंच व्यापारी संघ आये। इनके बीच भी आधिपत्य की प्रतिस्पर्धा ज़ारी था। अंत में व्यापार के क्षेत्र में एकाधिकार स्थापित करने में अंग्रेज़ लोग सफल निकले। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी उसका परिणाम था।1757 के प्लासी युद्ध से ही अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना मानी जाती है। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के लगभग मध्य तक अंग्रेज़ हिन्दी प्रदेश में अपने राज्य की सीमा का विस्तार करने में लगे रहे। 1826 के भरतपुर युद्ध और 1849 के द्वितीय सिक्ख युद्ध के उपरांत अंग्रेज़ों का प्रभुत्व संपूर्ण देश में जम गया। 1857 की राज्य क्रांति के बाद देश का राज्य ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ में निकल कर साम्राट के अंतर्गत ब्रिटिश मंत्रिमंडल के हाथ में चला गया। नवीन शासन व्यवस्था के कारण जिन नीतियों का व्यवहार हुआ उनका प्रभाव देश- जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर पडना अवश्यंभावी था। केवल राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं, अन्य कई कारणों से भी 1857 एक महत्वपूर्ण समय है। शिक्षा तथा शासन की दृष्टि से अनेक प्रयोग किए गए। अंग्रेज़ भारत के शासक बनने के बाद उन्होंने भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा का संचालन किया। नवीन शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि देश के नवयुवक नवीन साहित्य तथा विज्ञान से परिचित हुए। वे साहित्य, भूगोल, गणित तथा अन्य विषयों के अध्ययन द्वारा मानसिक तथा बौद्धिक

विकास करने लगे। उनके जीवन में नये आदर्श, नयी उमंगें तथा नये विचारों का विकास होने लगा। एक ओर वे सरकारी नौकरियाँ प्राप्त कर अपनी जीविका कमाने लगे। दूसरी ओर उन्हें यह भी अनुभव होने लगा कि अन्य प्रगतिशील देशों के समान भारत को उन्नतिपथ पर बढाना चाहिए। उन्हें देश की दुरवस्था खलनी लगी। नवीन शिक्षा के प्रभाव से भारतवासियों में एक ऐसा परिवर्तन आने लगा कि वे अपने समाज तथा धर्म में आवश्यक सुधार करने को लालायित हो उठे। इसकेलिए बनारस में 1791 में बनारस संस्कृत कॉलेज, मुसल्मानों केलिए 1780 में कल्कत्ता मदरसा, अंग्रेज़ी शिक्षा देने केलिए कल्कत्ता में सन् 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई।

आधुनिक युग में विभिन्न संस्थाओं ने पुराने धर्म को नये समाज के अनुरूप ढालने का प्रयास किया। इसमें प्रमुख है ब्रह्मसमाज। राजा राममोहनराय ने सन् 1828 में ब्रह्मसमाज की स्थापना की। इस संस्था द्वारा भारतीय धर्म एवं समाज में व्याप्त रूढियों एवं अंधविश्वासों को समाप्त करने का कार्य शुरू किया। सती-प्रथा, बलि-प्रथा, आडंबरपूर्ण विधान पद्धति, धर्म संबन्धी ढोंग एवं मूर्त्ति पूजा जैसी कुरीतियों का विरोध किया गया। विधवा विवाह तथा स्त्री पुरुष के समानाधिकार का समर्थन किया।

राजाराम मोहनराय की मृत्यु के पश्चात देवेंद्रनाथ टैगोर तथा केशवचन्द्र सेन ने राजाराम मोहनराय के सुधार कार्यों को आगे

बढाया। वैचारिक मतभेदों के कारण ब्रह्म समाज विभाजित हो गया। केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्मसमाज के सैद्धांतिक कार्यों के प्रचार द्वारा मुंबई में 1867 में प्रार्थना समाज की स्थापना की। हिन्दू, ईसाई, बौद्ध , मुस्लिम सभी धर्मों के तत्वों का समन्वय करके उसके सारत्व को नये स्वरूप में प्रस्तुत किया। सभी धर्मों की उदारता को स्वीकार किया एवं कट्टरता को छोडकर एक उदार चेतना को प्रसारित करने का प्रयास किया। विधवा विवाह तथा अंतर्जातीय विवाह को मान्यता देकर शताब्दियों से चला आ रहे व्यवस्था का विरोध किया।

आर्य समाज के संस्थापक श्री दयानंद सरस्वती 'वेदों की ओर लौटो' की बात करने लगे। उन्होंने हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराइयों को समाप्त करने तथा आध्यात्मिक आधार देने का प्रयास किया। 1867 में दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की। उन्होंने अनेकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा, बहुविवाह, बालविवाह, जातिप्रथा इत्यादि का विरोध किया और सर्वशक्तिमान एक ईश्वर की आराधना का उपदेश दिया। इस संगठन ने स्त्री शिक्षा को बहुत प्रोत्साहन दिया। बाह्याडंबरों एवं वैवाहिक रिवाज़ों तथा मरणोपरांत किया जानेवाला खर्च कम करने की कोशिश की। ब्राह्मणों द्वारा स्थापित एकाधिकार को समाप्त कर वर्ण व्यवस्था का विरोध किया गया। एकता के सिद्धांत को प्रबल किया तथा दलितों में आत्मसम्मान का भाव जगाया।

उसी समय स्वामी विवेकानंद ने आध्यात्मिक तथा भौतिक

उत्थान जनसेवा तथा मानव कल्याण के उद्देश्य से अपने गुरू रामकृष्ण परमहंस के नाम से रामकृष्णमिशन की स्थापना की। उसने हिन्दू धर्म और दर्शन के क्षेत्र में नवीकरण किया। छुआ छूत, जातिभेद का विरोध किया और गरीबों के प्रति सहानुभूति रखते हुए उसके उद्धार में विशेष ध्यान रखा।

सन् 1874 ई में न्यूयार्क में रूसी महिला मैडम व्लेवेटस्की और कर्नल एस.एस.ऑलकाट द्वारा थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की। 1882 में मद्रास के अडयार में इसकी एक शाखा खोली। 1893 में श्रीमती एनी बेसेंट ने उसके नेतृत्व संभाला। इस संस्था ने हिन्दु-धर्म केलिए बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। हिन्दू धर्म की व्यापकता और सार्वभौमिकता का समर्थन इस संगठन ने किया। भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता और हिन्दू –धर्म की उच्चता को स्थापित किया तथा दुनियावालों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। इस संस्था ने सभी धर्मों की मूलभूत एकता की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। आध्यात्मिक जीवन तथा विश्व बंधुत्व की भावना को प्रतिपादित करने का कार्य किया। सच्चे हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान, समाज सुधार तथा शिक्षा प्रसार के प्रयत्न किये। समस्त धर्मों की एकता को प्रतिपादित कर विश्व- बंधुत्व की ओर ज्यादा ज़ोर दिया। भारतीय जनता के आधुनिकीकरण केलिए इस संस्था ने बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किये।

भारतीयों को आधुनिक बनाने में विभिन्न प्रकार के दर्शनों का प्रभाव अत्यंत सराहनीय है। भारतीय दर्शन आस्था और विश्वास पर केन्द्रित है। आधुनिक युगीन वैचारिक क्षेत्र में अरविन्द का योगदान आध्यात्मिक दर्शन को लेकर सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जिसमें राष्ट्रवाद की विशिष्ट प्रकृति एवं राजनीतिक मान्यताएँ अनुस्यूत हैं। अरविन्द के प्रमुख विचार धर्म और राजनीति का समन्वय स्थापित करने में सहायक हुए हैं। भारतीय आत्मा की अमरता को शंखनाद के रूप में उद्घोषित करनेवाले अरविन्द ने यहाँ की शिक्षा, संस्कृति एवं राष्ट्रीयता को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित किया है। उनका महान ग्रंथ 'लाइफडिवाइन' अरविन्द दर्शन का आध्यात्मिक पक्ष प्रस्तुत करता है। इसमें उन्होंने अपने मत को बौद्धिक व्याख्या और तार्किकता प्रदान की। अत: उनकी तर्कदृष्टि का साधन बनकर आई है जो भारतीय दार्शनिकों की विशिष्टता रही है। अरविन्द का विश्वदर्शन वर्तमान मानव सभ्यता की सर्वांगीण समस्याओं का नितांत मौलिक और आध्यात्मिक समाधान प्रस्तुत करता है।

आधुनिकता की वैचारिक पृष्ठभूमि निर्मित करनेवाले दूसरे विचारक महात्मागाँधी है। गाँधी दर्शन का प्रभाव आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के रूप में देखा जाता है। गाँधीवादी विचारधारा का कार्यक्षेत्र समाज है। वह भारतीय समाज की अनेकविध बुराइयों को दूर करके समाज में आमूल परिवर्तन लाना चाहते थे। उनसे पूर्व सामाजिक क्षेत्र में ब्रह्मसमाज एवं आर्यसमाज ने सुधार अभियान चला रखे थे, किंतु उनके परिणाम एक

सीमा तक ही फलदायी हो सके। गाँधीजी के सामने सामाजिक आदर्श के रूप में रामराज था, जिसे वह घटित देखना चाहते थे, यही उनके सामाजिक आदर्श की चरमसीमा भी थी। इसी दृष्टि से सामाजिक सुधार केलिए उन्होंने कुछ रचनात्मक कार्यों को महत्व दिया, जिनके अंतर्गत सांप्रदायिक एकता, अस्पृश्यता, प्रौढ शिक्षा, खादी, नई बुनियादी तालीम, स्त्रियों की उन्नति, मातृभाषा प्रेम, राष्ट्रभाषा प्रेम, आर्थिक समानता, ग्रामोद्योग, मद्यपान निषेध, स्वास्थ्य सफाई, किसान मज़दूर संगठन, आदिवासियों की सेवा, कोठियों की सेवा आदि गिनाए जा सकते हैं। इन कार्यों को निष्पन्न करने के उपरांत ही रामराज्य का स्वप्न पूरा हो सकता है। स्वतंत्रता के बाद जैसे- जैसे गाँधीजी के सिद्धांतों में लोगों की आस्था हटने लगी, वैसे-वैसे साम्यवादी प्रभाव हिन्दी कविता पर बढने लगा। मार्क्सवाद के बढते प्रभाव के कारण गाँधी के प्रति लोगों की आस्था हटने लगी थी।

कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित विचारधारा मार्क्सवादी विचारधारा कहलाती है। इस विचारधारा ने आधुनिक जीवन के प्राय: प्रत्येक वर्ग को प्रभावित किया। मार्क्सवाद मानव मुक्ति की एक दार्शनिक परिणति को सामने लाकर सामान्य हुआ है। मार्क्स अपना दर्शन 'दास कैपिटल' में व्यक्त किया गया। आम आदमी की ज़िन्दगी को केन्द्र में रखकर लिखा गया यह दर्शन वास्तव में विश्व भर के उपेक्षितों पीडितों एवं शोषितों के उद्धार का महामंत्र बन गया। उन्होंने सबसे पहले ईश्वरीय

अस्तित्व के सामने प्रश्न चिह्न लगाया। उन्होंने कहा संसार में दो ही जाति हैं- पूँजीपति और कामगर वर्ग,शेष सारा विभाजन शोषण केन्द्रित नहीं। मार्क्स सामाजिक गत्यात्मकता का मुख्य आधार पूँजी को मानते थे। वे राज्य के संदर्भ में सामाजिकता और समाजवाद के महत्व को रेखांकित करते थे। समाजवाद में श्रम की गरिमा और समाज की आवयविक ईकाई के रूप में व्यक्ति की सत्ता को स्वीकार किया गया। इसके अंतर्गत समाज के प्रत्येक वर्ग से उसकी योग्यता के अनुसार प्राप्त करने और उसकी ज़रूरत के अनुसार उसे देने का सिद्धांत स्वीकार्य होता है। सामजिक गत्यात्मकता का आधार मनुष्य के अंतर्मन में निहित समता की आकांक्षा को माना जाता है। पूँजी के संचालन को ही मनुष्य की चित्तवृत्ति का मुख्य नियामक माना जाता है। याने पूँजी के संचालन की जटिलताओं से ही मानवीय स्थितियों को व्याख्यायित किया जा सकता है। इसकेलिए किसी ईश्वरीय सत्ता की अनिवार्यता नहीं स्वीकारी जाती। मनुष्य अपना नियंता स्वयं है यही उनका विचार है।

आधुनिकता की वैचारिक पृष्ठभूमि की सर्जना में मार्क्स के बाद फ्रायड का विशेष योगदान है। इनके दो सिद्धांत है 'दि इंटरप्रेटेशन ऑफ ड्रीम्स' 'थ्री एस्सेस ओन द थियोरी ऑफ सेक्स्वालिटि'। इन दोनों सिद्धांतों ने विश्व मानसिकता के सामने अनेक नये प्रश्न उपस्थित करने तथा उन्हें नये सिरे से सोचने- विचारने केलिए प्रेरित किया। प्रसिद्ध आत्मवादी दार्शनिक क्रोचे ने मनोविज्ञान के सहारे कला को अभिव्यंजना कहा। जिस

में कलाकार की समस्त अनुभूतियाँ 'इनट्यूशन' के रूप में आती हैं। फ्रायड का मनोविश्लेषण क्रोचे के अभिव्यंजनावाद का रूप कहा जा सकता है। फ्रायड, युंग, एडलर जैसे मनोवैज्ञानिकों के विचारों की नींव मनुष्य के मानस की अवचेतन क्रिया से है। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति को समझने केलिए उसके मन:संघर्ष, अवचेतन, आंतरिक प्रेरणाओं और व्यक्तित्व को पूरी तरह से समझने की आवश्यकता है।मनुष्य की सारी मानसिक परेशानियाँ और उसके व्यक्तित्व की सम्पूर्ण विकृतियों की नींव यही मानसिक संघर्ष है। आधुनिक साहित्य मनोविज्ञान के नए नए सिद्धांतों की छाया में व्यक्ति और उसके मानसिक क्रिया कलाप में सर्वाधिक रुचि लेने लगा है।

सार्त्र के अस्तित्ववाद की पूर्वपीठिका निर्मित करने का श्रेय कीर्केगार्द को है। मार्क्सवाद के साथ ही कीर्केगर्द की मान्यताओं का प्रतिपादन हुआ था। जिसमें उसने ईश्वर की सत्ता को नकारा था। कीर्केगार्द ने कहा "आज एक क्षमाशील ईश्वर, नैतिकता का स्रोत- धर्म, प्राकृतिक शक्तियों पर विजय दुंदुभी बजानेवाला प्राकृतिक मनोविज्ञान समता और व्यक्तिगत अधिकारों की क्षमता प्रकट करनेवाला राजनीतिक मतवाद सभी टूटकर फहरा चुके हैं"[1] ।युद्ध, क्रांति, बिखराव, टूटन, अवसाद और निराशा के इस युग में अस्तित्ववादी चिंतन एक ऐसी विचारधारा है

[1] डॉ शिवमंगल सिंह, आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, पृ. 26

जिसने स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कविता को एक नयी दिशा दी है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी समस्या का समाधान ढूँढने की प्रेरणा कीर्केगार्द ने दी थी।

आधुनिक हिन्दी कविता में आगत व्यक्ति- स्वातंत्र्य, एकाकीपन अंतर्मुखी प्रवृत्ति, गहरे कहीं गहरे स्वयं का अस्तित्वबोध सार्त्र की विचारधारा के निकट है। कीर्केगार्द की अनुपम वैयक्तिकता का नारा नयी पीढी ने उत्साहपूर्वक स्वीकार किया है। अभावों की ज़िन्दगी में केवल सोच का विषय मानकर उसमें जीवित रहकर नवीन पथ निश्चित करने की प्रेरण अस्तित्ववाद, नास्तिकता की भूमि पर पल्लवित हुआ है। प्रसिद्ध विचारक नीत्से ने कहा था-"ईश्वर मर चुका है, हमने उसकी हत्या कर दी। अब तक संसार में जो सबसे अधिक विषय था शक्तिशाली था, उसे हमने छूरे से भोंक कर मार डाला"[1] । सार्त्र ने अस्तित्ववाद के प्रतिपादन के साथ नीत्से और कीर्केगार्द के मतों का समन्वय किया। अपने पूर्व के इन विचारकों का समर्थन करते हुए सार्त्र ने यह माना था कि –"चेतना का सम्बन्ध तत्व से होता है वस्तु से नहीं, चेतना की प्राप्ति केलिए हमें जीवन के सींखचों से बाहर आना पडता है और अपने को शून्य बनाना पडता है । हम निस्सारता से युक्त होकर सचेतन रूप में अपने अस्तित्व की प्राप्ति केलिए उन्मुख होते है"[2]।

---

[1] डॉ शिवमंगल सिंह ,आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, पृ. 43

[2] नरेन्द्र वर्मा,आधुनिकता पाश्चात्य काल और समीक्षा के उपादान, पृ. 27

सार्त्र की इस विचारधारा में अस्तित्व और स्वाधीनता समानार्थी है। जीवन की अनिवार्यता है। आधुनिक हिन्दी कविता में परिस्थितियों के नियमन के विपरीत अपराजेय शक्ति के रूप में मानव का अभ्युदय मानवतावाद के रूप में हुआ, जिसमें मनुष्य को स्वयं अपने भाग्य का निर्माता बताया गया। अनीश्वरवादी विचारधारा के इस मतवाद द्वारा भाग्यवाद को अस्वीकृत किया गया तथा व्यक्ति चिंतन को ही समस्त मूल्यों का स्रोत कहा गया। ईश्वर के स्थान पर मानव की स्थापना इसी विचारधारा द्वारा हुई। बीसवीं शताब्दी की इस चेतना का विकास समकालीन मूल्यबोधों के अनुरूप होने के कारण आधुनिकता की आधारशिला बन गयी।

डार्विन ने अपने सिद्धांत 'सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट' में व्यक्त किया है कि मनुष्य पहले के किसी विकसित संवर्ग का अधोमुखी या प्रतिगामी सदस्य है। डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त में मनुष्य निम्नतर श्रेणी से धीरे- धीरे विकसित होकर आज तक पहूँचा है। आधुनिक मनुष्य यह मानने लगा कि हमारे पूर्वज जंगली थे, रीछ थे, असभ्य थे, अविकसित थे उनकी तुलना में हम अधिक विकसित एवं बुद्धिजीवी है। इस आधुनिक विचारधारा से पुरातनता के प्रति अनास्था जाग्रत हुई और रूढियों को तोडकर क्रांति, संघर्ष और विद्रोह की भावना को स्वीकृत किया।

आधुनिकता की पृष्ठभूमि में मिल का उपयोगितावाद का अपना महत्व है। मिल की कृति 'ऑन लिबर्टी' के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पक्ष का समय पर उल्लेख किया गया है। प. जवाहरलाल नेहरू ने , 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' में आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता का पूरक माना है। बुद्धिवाद एवं तर्क की इस नवीन दुनिया में ईसाई धर्म की रूढियों पर व्यापक प्रहार किया गया। यूरोप में सांस्कृतिक और सामाजिक परिवेश को नवीनता प्रदान करने वाले इस विचारक ने उपयोगिता के आधार पर वस्तु की मूल्य स्थापना की है।

मिल के उपयोगितावाद, डार्विन के विकासवाद, हेगल और मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकतावाद तथा सार्त्र के अस्तित्ववाद से नये युग का निर्माण हुआ। नीत्से, कीर्केगार्द आदि विचारकों ने अनास्था की संस्कृति का प्रतिपादन किया। फ्रायड, एडलर और युंग ने मानव मन को ही घटनाओं का निष्कर्ष माना और इन सबके सम्मिलित प्रभाव ने चिंतन दिशा बदल दी। महात्मागाँधी, अरविंद आदि भारतीय मनीषियों ने वैश्विक चेतना को भारतीय रूप प्रदान कर आधुनिकता की वैचारिक पृष्ठभूमि बनाया।

उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे अधिक महत्वपूर्ण आविष्कारों रेल और तार का क्रमश: 1854 और 1859 में ही सूत्रपात हुआ। चार्ल्स वुड की शिक्षा आयोजना 1854 में ही प्रस्तुत की गई थी। साहित्य में इन सब नवीनताओं की प्रतिक्रिया होनी अनिवार्य थी और 1857 में ही विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। आलोच्य काल में नवयुग और

आधुनिकता का प्रदर्शन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अधिनायकत्व और उनके जीवन काल में यथेष्ट तीव्र गति से होने लगा था। भारतेन्दु का जन्म भी 1850 में हुआ था। अस्तु इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए यदि स्थूल रूप से, भारतेन्दु की जन्मतिथि अर्थात 1850 से हिन्दी साहित्य के नवीन या आधुनिक युग का सूत्रपात मान लिया जाय तो कोई विशेष हानि न होगी। हिन्दी में आधुनिकता का सूत्रपात लगभग इसी समय से होता है । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही देश की तत्कालीन परिवर्तित परिस्थितियों के प्रभावांतर्गत गद्य का प्रचार बडी तेज़ी से होने लगा था। 1857 की राज्यक्रांति के बाद हिन्दी गद्य साहित्य ने विशेष उन्नति की। विषयों की अनेक रूपता के साथ- साथ वह अपने पैरों पर खडा होने योग्य बना। काव्य क्षेत्र में वीर, भक्ति, श्रृंगार और रीति धाराएँ अपने प्राचीन वैभव का क्षीण स्वरूप लिए हुए अब भी प्रवाहित हो रही थीं। किंतु साथ ही कविता पाश्चात्य शिक्षा और नवीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक शक्तियों के फलस्वरूप विषयों की ओर झुक रही थी। नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों के माध्यम द्वारा हिन्दी प्रदेश का संपर्क ज्यों- ज्यों संसार के अनेक देशों और साहित्यों से बढता जा रहा है, त्यों-त्यों साहित्य में शैली, विचार और रूप की दृष्टि से अनेकरूपता की वृद्धि हो रही है।

हिन्दी साहित्य के इस नवीन विशद, पूर्ण और विविध विषय संपन्न स्वरूप के निर्माण का श्रीगणेश दो सभ्यताओं के सांस्कृतिक संपर्क के

फलस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। अंग्रेज़ जिस सभ्यता को लेकर भारत वर्ष आये थे उसमें गति एवं शक्ति थीं। भारतीय सभ्यता शताब्दियों के बोझ से स्थिर और शिथिल हो चुकी थी। ऐसी दशा में भारतीय सभ्यता का पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होना अवश्यंभावी था। यद्यपि नवीन शासकों की नीति के कारण यह प्रभाव जितना उत्कृष्ट और सर्वांगीण होना चाहिए था उतना नहीं हुआ। फलस्वरूप हिन्दी साहित्य रूढिग्रस्त मार्ग छोडकर गतिशील हुआ,उसमें नवीनता और आधुनिकता का जन्म हुआ।

हिन्दी कविता में आधुनिकतावाद का आरंभ अज्ञेय से माना जाता है। जब छायावाद के बन्धनों से मुक्त होकर प्रगतिशील चेतनावाले कवियों ने और प्रगतिवादी कवियों ने प्रगतिवादी कविता लिखनी शुरू की तब सन् 1943 में अज्ञेय के संपादकत्व में तारसप्तक का प्रकाशन हुआ। कविता को पारंपरिक कथ्य तथा शैली विषयक प्रतिमानों से मुक्त कर उसे विशुद्ध रूप में समकालीन संदर्भ से जोडना अज्ञेय का लक्ष्य था। आगे मुक्तिबोध,श्मशेर बहादुर सिंह,प्रभाकर माचवे की कविताओं में आधुनिकता की झलक दिखाई पडती है। प्रयोगवाद और नई कविता के दौर में आधुनिकतावादी विभिन्न आन्दोलनों जैसे प्रतीकवाद, बिंबवाद, भाववाद और अतियथार्थवाद आदि का प्रभाव विभिन्न कवियों की कविताओं में देखा जा सकता है।

समकालीनता

समकालीनता एक व्यापक और बहुआयामी शब्द है। यह शब्द मात्र किसी काल या समय का सूचक नहीं है बल्कि वह आधुनिक काल का सूचक होने के साथ-साथ उस काल के मूल्यों का बोध भी कराती है,जिसमें उससे जुडे प्रत्येक लेखक का जीवन, समाज, संस्कृति, साहित्य आदि सबके सब प्रकट होते हैं। समकालीनता का गहरा संबन्ध समकालीन ज़िन्दगी के अंतर्विरोधों और विभिन्न संदर्भों से है। जिसके ज़रिए हमें समकालीन यथार्थ का खुला विवरण मिलता है। समकालीनता वास्तव में अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं के साथ उलझना है, जो वर्तमान का सत्य होता है।

समकालीनता शब्द अंग्रेज़ी के कण्टेम्परेनियस (contemporaneous) अथवा कण्टेम्परेनिटि (contemporaneity) शब्दों के रूप में हिन्दी में प्रचलित है। जिसका अर्थ है 'एक ही समय में विद्यमान'[1] (Existing or occuring at the same time) वस्तुत: समकालीनता का आशय अपने समय के प्रति ईमानदार होने से है।

हिन्दी के अनेक लेखकों और विचारकों ने भिन्न – भिन्न दृष्टियों से समकालीनता की व्याख्या की है। डॉ विश्वंभरनाथ उपाध्याय के अनुसार – "समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला

---

[1] फादर कामिल बुल्के,अंग्रेज़ी हिन्दी कोश, पृ. 134

करता है। समस्याओं और चुनौतियों में भी केन्द्रीय महत्व रखनेवाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है"[1]। समकालीनता काल के साथ साथ जीना न होकर उसमें जो समस्याएँ है, उसके साथ जूझते हुए उसको चुनौती के रूप में अपना लेना है।

धूमिल के अनुसार "रूप,रंग और अर्थ के स्तर पर आज़ाद रहने की सामने बैठे आदमी की गिरफ्त में न आने की तडप, एक आवश्यक और समझदार इच्छा जो आदमी को आदमी से जोडती है, मगर आदमी को आदमी की जेब या जूते में नहीं डालती । स्वतंत्रता की तीव्र इच्छा और उसकेलिए पहल तथा उस पहल के समर्थन में लिखा गया साहित्य ही समकालीन साहित्य है"[2]।

डॉ रमेश कुंतल मेघ ने समकालीनता के संबन्ध में अपनी राय इस प्रकार व्यक्त किया है-"समकालीनता और समसामयिकता समयगत चेतना या बोध है,जब कि आधुनिकता का समय संदर्भ होने के साथ-साथ प्रवृत्तिगत अर्थ भी है"[3]।

---

[1] विश्वभरनाथ उपाध्याय, समकालीन सिद्धांत और साहित्य, पृ. 16

[2] धूमिल, कल सुनना मुझे के भूमिका से

[3] डॉ. मोहन, समकालीन कविता की भूमिका,पृ.12

डॉ रवीन्द्र भ्रमर ने समकालीनता के तीन अर्थ बताये हैं- " काल विशेष से संबद्ध, व्यक्ति विशेष के काल-यापन से संबद्ध और साहित्य समाज अथवा प्रवृत्ति विशेष से संबन्धित संश्लिष्ट कालखण्ड"[1]।

प्रत्येक वर्तमान चिंतन समकालीनता से ही यथार्थता ग्रहण करता है। परिवेश की परिवर्तनशीलता के कारण समकालीनता के स्वरूप में बदलाव आ सकता है। नये मूल्यों की तलाश में समकालीन बोध जिस प्रकार का अनुभव प्राप्त करता है, जिन समस्याओं से उसे गुज़रना पडता है इन सबके मूल में जो कुछ उसे सही और सार्थक प्रतीत होता है उसे सही और सार्थक प्रतीत होता है इन सबके मूल में जो कुछ उसे सही और सार्थक प्रतीत होता है उसे प्रतिमानों के रूप में घोषित करता है। वास्तव में समकालीनता का सही तात्पर्य अपने समसामयिक इतिहासबोध, वैश्विक विज़न और राजनैतिक संक्रमण में जन संघर्षों और चेतना के जुडाव का है।

समकालीनता और आधुनिकता में अंतर

समकालीनता पर ध्यान देते समय यह स्पष्ट हो चुका है कि आधुनिकता और समकालीनता के बीच एक रिश्ता है। अत: आधुनिकता से समकालीनता संस्कार ग्रहण करती है । "समकालीनता आधुनिकता के पीठ पर स्थित एक कालखण्ड है"[2]। जो आधुनिकता के साथ होकर भी आधुनिकता से अलग अपनी पहचान रखता है। याने जो घटनाएँ चारों

---

[1] डॉ रवीन्द्र भ्रमर, समकालीन कहानी की भूमिका, पृ. 2

[2] डॉ रवीन्द्र भ्रमर, समकालीन हिन्दी कविता, पृ. 19

ओर घटित होती हैं, उनका प्रतिबिम्ब नया प्रतिफलन समकालीनता है परंतु उसका निषेध करना आधुनिकता है। अत: समकालीनता आधुनिकता के एक भाग को विस्तार से समझने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

समकालीनता अपने समय की सच को तटस्थता के साथ परखने की क्षमता है। आधुनिकता एक मानसिक प्रक्रिया है जो अपने परिवेश की गंभीर समस्याओं से उद्‌भूत होती है और समकालीन जीवन को संस्कार देती है। आधुनिकता में युग विशेष के औसत मिज़ाज का ज्ञान निहित रहता है, जबकि समकालीनता को आधुनिकता की एक स्थिति अथवा सोपान कहा जा सकता है। समकालीनता की सार्थकता को समयगत संदर्भों में रेखांकित किया जा सकता है, जबकि आधुनिकता का समयगत संदर्भ के साथ- साथ मूल्यगत अर्थात् गुणात्मक आयाम भी है। जो संदर्भ आधुनिकता की व्यापक परिधि में अपेक्षित अथवा अप्रासंगिक प्रतीत होते है, वे समकालीन संदर्भ में महत्वपूर्ण हो उठते है। "आधुनिकता का लक्ष्य जीवन के प्रति आध्यात्मिक और परम्परावादी दृष्टिकोण का नकार और यथार्थ की गतिशील शक्ति को स्वीकार करने का आग्रह है। इस प्रकार आधुनिकता को ग्रहण कर हम अपने सन्दर्भ के साथ- साथ अपनी गतिविधियों को भी अंकित करते हैं"[1]। यथार्थ की जिस गतिशील शक्ति को स्वीकार करने का आग्रह आधुनिकता में होता है, उस गतिशील शक्ति के स्वरूप का ज्ञान समकालीनता में रहता है।

---

[1] पुष्पपाल सिंह, समकालीन हिन्दी कहानी: युगबोध का सन्दर्भ, पृ. 8

आधुनिकता एक अविराम प्रक्रिया है समकालीनता इसका व्यावहारिक संदर्भ। आधुनिकता में समाज, संस्कृति, धर्म, परम्परा आदि की रूढियों के प्रति विद्रोह का आह्वान है। पर उसमें विद्रोह की सक्रियता नहीं उसका सारा विद्रोह शब्दों में है व्यवहार में नहीं। लेकिन विद्रोह की क्रियाशीलता समकालीनता में देखने को मिलती है। परिवेश के भीषण यथार्थ के प्रति लोगों को सजग बनाना आधुनिकता का लक्ष्य रहा है। आधुनिकता का विद्रोह मात्र कथनी पर ही रहा । उसमें सभी प्रकार की समस्याएँ हैं। लेकिन किसी आन्दोलन के रूप में नहीं। समकालीनता में ये समस्याएँ विभिन्न आन्दोलन के रूप में सक्रिय हो उठी हैं। समकालीन साहित्यकार इन्हीं आन्दोलनों में सक्रिय है। "आधुनिकता एक दृष्टिकोण है और बौद्धिक गतिशील परंपरा है , जबकि समकालीनता एक ज्वलंत सत्य है, वर्तमान का सत्य है"।[1]

समकालीनता का बोध वर्तमान समय का बोध है, जिसमें हम जी रहे हैं , यह वर्तमान बोध आधुनिक बोध का एक अंग है। आधुनिकता का महत्व मूल्यगत संदर्भों में भी है, अत: वह समकालीनता की अपेक्षा व्यापक परिधि में फैली हुई है। आधुनिकता चूँकि एक प्रक्रिया है, अत: इसमें यथास्थितिशीलता नहीं होती। समकालीनता की समयगत परिधि अपेक्षाकृत संकुचित होती है, अत: उस दृष्टि से देखने पर इसमें यथास्थितिशीलता के भी विविध रूप सक्रिय रूप में लक्षित होते हैं।याने

---

[1] डॉ अंजनीकुमार दुबे, समकालीन कविता के विविध आयाम, पृ. 18

कि समकालीनता और आधुनिकता अन्योन्याश्रित शब्द है। समकालीनता की प्रेरणा से आधुनिकता एक निरंतर गतिशील प्रवृत्ति है।

समकालीन कविता

समसामयिक परिवेश का दबाव सबसे पहले कविता पर ही पडता है। हिन्दी की समकालीन कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता की तुलना में जीवन के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित कविता है। समकालीन हिन्दी कविता की एक सुनिश्चित रूपरेखा है यह काव्यधारा हिन्दी साहित्य की एक प्रवृत्ति के रूप में उभर आई है। इस स्थिति में आज समकालीन कविता पर दोहरा दबाव है। एक ओर तो वह देश की आतंकित स्थितियों से पूर्णत: आक्रांत और अस्थिर है दूसरी ओर विश्व स्तर पर हो रही वैचारिक और प्रयोगात्मक स्थितियों से भी पूरी तरह से प्रभावित है। समकालीन जीवन संदर्भ में हमारे वर्तमान का समग्र जीवन आ जाता है।

समकालीन कविता के बारे में कई विद्वानों ने अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है, वे निम्नलिखित हैं-

डॉ विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने समकालीन कविता को अपने समय के मुख्य अंतर्विरोधों तथा द्वन्दों की कविता के रूप में स्वीकारते हुए अपना मत इस तरह प्रस्तुत करते हैं-"समकालीन कविता में जो हो रहा है (बिकमिंग) का सीधा खुलासा है। इसे पढकर वर्तमान काल का बोध हो सकता है क्योंकि उसमें जीते संघर्ष करते, लडते, बौखलाते, तडपते गरजते

तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है। आज की कविता में काल अपने गत्यात्मक रूप में ठहरे हुए क्षण या क्षणांश के रूप में नहीं। यह कालक्षण की कविता नहीं, कालप्रवाह के आघात और विस्फोट की कविता है"।[1]इनके अनुसार समकालीन कविता में जो घटित प्रमुख घटनायें हैं, उसकी छाया उसमें देखने को मिलती है।

कुमार कृष्ण के अनुसार, "समकालीन कविता अथवा साठोत्तरी कविता बदलते हुए मूड की कविता है। उसकी भाषा बोलचाल की भाषा है, जिसपर आभिजात्य का मुलम्मा नहीं चढा है, जो विद्रूप यथार्थ को रंगीन बनाकर पेश करता है"[2]

डॉ रामदरश मिश्र के अनुसार "साठ के बाद कविता में जो तेवर स्वर उगे हैं वे नयी कविता में विद्यमान रहे हैं और गौण भाव से प्रस्फुटित रहे हैं"[3] । इनके अनुसार साठ के बाद जो भी कविताएँ आयी हैं वे नयी कविता जैसी ही हैं। लेकिन उसका विकास समकालीन कविता में हुआ।

समकालीन कवि लीलाधर जगूडी के अनुसार "समकालीन कविता का मिजाज वर्णन का ज्यादा और बोलचाल का कम जहाँ है वहाँ बोलचाल काफी प्रभावशाली और अपनी एक नयी लय रचना हुआ, सुनायी व देखी भी जाती है। समकालीन कविता इस समय विश्व की श्रेष्ठ

---

[1] विश्वंभरनाथ उपाध्याय, समकालीन कविता की भूमिका, पृ. 34

[2] कुमार कृष्ण, समकालीन कवित का बीजगणित, पृ. 10

[3] डॉ रामदरश मिश्र, हिन्दी कविता आधुनिक आयाम, पृ.183

कविताओं के मुकाबले रखी जा सकती है"[1]। समकालीन कविता में वर्णन ज़्यादा है क्योंकि कवि यहाँ पाठकों के सामने वह चित्र हूबहू रचना चाहता है।

रामकली सर्राफ के अनुसार"समकालीन कविता का अर्थ जीवन की बाह्य परिस्थितियों के बोध तक सीमित न होकर उस यथार्थ की पहचान करना है, जिसके सारे अंतर्विरोधों और द्वन्द्वों के बीच से गुज़रता हुआ मनुष्य अपने विकास के पथ पर अग्रसर होता है"[2]।समकालीन कविता केवल बाह्य परिस्थितियों का बोध तक मात्र सीमित न होकर मानव के आंतरिक संघर्ष, द्वन्द्व, यथार्थ आदि का सही पहचान कराते हुए मनुष्य को विकास के पथ पर अग्रसर कराती है।

डॉ रोहिताश्व के अनुसार, "समकालीन कविता का पद प्रयोग रागात्मक बोध, वैचारिक संघर्षों, काव्य कला आन्दोलनों के सौन्दर्य बोधी रूझानों की समाहारता केलिए प्रयुक्त हुआ है"[3]

समकालीन कविता का कथ्य यथार्थ पर आधारित है, वह सपाटबयानी की धरोहर है। साथ ही वह नयी कविता से भिन्न भी है, विशेष धरातल पर आधारित और परम्परा के प्रति उसकी विशिष्ट दृष्टि

---

[1] लीलाधर जगूडी, मेरे साक्षात्कार, पृ. 31

[2] डॉ रामकली सरीफ, समकालीन कविता की प्रकृतियाँ, पृ.196

[3] रोहिताश्व, समकालीन कविता और सौंन्दर्यबोध, पृ. 16

होती है। शिल्पगत नवीनता और श्ब्दों के मनोदशानुकूल प्रयोग आदि की दृष्टि से समकालीन कविता अपने आप में विशिष्टता की द्योतक है।

समकालीन कविता की परिस्थितियाँ

हमारे समकालीन परिवेश अनेक विसंगतियों से भरा हुआ है। इस परिवेश में व्यक्ति अपनी बाहरी और भीतरी पीडा को चुपचाप सहने केलिए विवश है। स्वातंत्रता पूर्व का भारतीय समकालीन चिंतन पूर्णत: राष्ट्रीय स्वतंत्रता पर केन्द्रित था। लेकिन स्वतंत्रता के बाद असमानता और राजनीतिक अस्थिरता आयी। विभाजन, विस्थापन और मारकाट चला। गाँधीजी की हत्या हुई। एक नया संविधान बना, गणतंत्र की घोषणा हुई, पहला आम चुनाव हुआ, केन्द्र तथा राज्यों में जनतांत्रिक सरकार का गठन हुआ। लेकिन यहाँ आज़ादी सत्ता के शिखरों को नसीब हुई ठीक और गरीब, मेहनतकश , साधारण जन की मुक्ति का वह स्वप्न अधूरा ही रह गया था। आम नागरिक अपनी उसी स्थिति में रहा जिस स्थिति में स्वातंत्रतापूर्व था। समाज की ऐसी स्थिति में पूंजी का केन्द्रीकरण होता रहा। लोग अति अमीर और गरीब में बंट गये। इन दोनों के बीच एक ओर वर्ग विकसित हुआ वो मध्यवर्ग था। उनकी ज़िन्दगी बिल्कुल अभावग्रस्त है। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी शासक वर्ग अपने लुभावने वाले को निभा नहीं पाया था। जनता इसकी प्रतीक्षा करती रही और उसका परिणाम था मोहभंग। एक तरह से कहा जाए तो समकालीन कविता की पृष्ठभूमि यही थी।

1960 तक नेहरू का युग मोहग्रस्त काल था। जनता को आनेवाले भविष्य के प्रति आश्वस्त कर दिया गया था। 1962 में भारत चीन के बीच हुई लडाई ने इस प्रतीक्षा को बिगाड दिया। इसके बाद 1965 और 1971 के पाकिस्तान युद्ध ने भी सब कुछ झकझोर दिया था। देश की अर्थ व्यवस्था बिगडने लगी। कई प्रकार की अनीतियाँ, जातिवाद, वर्गवाद, सांप्रदायिकता का प्रचार –प्रसार बढा। जो भी स्थिति स्वतंत्रता से पहले मौजूद थी, बाद में भी उसी तरह बनी रही। निर्धनता, भूख, निरक्षरता, असुरक्षा, आतंक,शोषण दमन उसी तरह कायम रहा। देश की सामाजिक , आर्थिक और राजनीतिक स्थिति पिछडी रह गई।

विभाजन से लेकर सन् 1965 के सीमा संघर्ष के बीच का सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विपर्यय और इनसे उत्पन्न असंख्य समस्याओं के बीच किसानों, मज़दूरों, दलितों, मेहनतकशों की आवाज़ के दमन की नीति ने भारतीय जनता के जीवन को प्रभावित किया है। सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में भी देश का आर्थिक संकट निरंतर गहराता जा रहा था, विदेशी सहायता के प्रति निर्भरता बढती जा रही थी। खाद्य सामग्री के आयात के कारण महंगाई पराकाष्ठा की ओर अग्रसर थी। कृषि कर्म आहत हो रहा था, मज़दूरी घट रही थी, उपभोक्ता का स्तर संकटापन्न था। प्रौद्योगिक विकास और समकालीन समाज के मूल ढाँचे के बीच कोई सुसंगति बैठाने की सुसंगत चेष्टा दिख नहीं रही थी। सन् 1966 में अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन हुआ। जनसामान्य के

बीच इसकी प्रतिक्रिया तीखी हुई। सन् 1967 के आम चुनाव में इन सभी परिस्थितियों का प्रभाव सामने आया। नौ राज्यों में गैरकांग्रज़ी शासन बहाल हुआ। यदि सन् 1964 में वामपंथी दल में विभाजन न हो गया होता तो निश्चित रूप से सन् 1967 के आम चुनाव का परिणाम कुछ और होता । वामपंथी दल के फुट का लाभ लेकर जिस तरह की मिली जुली सरकार भारतीय लोकतंत्र में कायम हुई, उससे राजनीतिक परिस्थितियाँ थोडी और जटिल हुई। हडताल, प्रदर्शन, मुठभेड आदि का सिलसिला चल पडा।

ऐसे ही समय में आर्थिक विषमता और किसानों के आक्रोश के कारण मार्च 1967 में नक्सलवादी आन्दोलन आरंभ हुआ, जिसके दमन की पुरजोर सरकारी कोशिश हुई, मगर शीघ्र ही यहाँ आन्दोलन संपूर्ण देश के मज़दूर- किसानों का जीवन संघर्ष हो गया। इस आन्दोलन के सकारात्मक पहलुओं से प्रगतिकामी संस्कृतिकर्मियों की चेतना हिल उठी। धूमिल,लीलाधर जगूडी, आलोकधन्वा,कुमार विकल,विजेन्द्र, वेणुगोपाल, कुमारेन्द्र, परसनाथ सिंह जैसे कवियों ने इसके साथ खडी हुई।

सन् 1967 के नक्सलबाडी आन्दोलन की सफलता के उत्साह में सन् 1969 में अति उत्साही कुछ किसानों ने सशस्त्र संघर्ष का रूख कर लिया, कम्युनिस्ट पार्टी में तीसरी बार फिर विभाजन हुआ, और मार्क्सवादी- लेनिनवादी पार्टी कायम हुई। अगस्त 1969 में राष्ट्रपति जाकिर हुसैन के देहावसान के बाद कांग्रेस पार्टी में अपनी जगह बनाए

वामपंथियों के प्रयास सफल हुए और ट्रेड यूनियन के नेता वी. वी. गिरि राष्ट्रपति हुए। सन् 1971 में फिर पाकिस्तान से सीमा संघर्ष हुआ। सुनिश्चित संसदीय बहुमत और वामपंथी शक्तियों के समर्थन से लोकतेत्र पर कांग्रेज़ी सत्ता का शिकंजा लगातार कसता गया। दमन उत्पीडन के बढते स्वरूप से देश की जनता को तानाशाही सरकार की बर्बरता साफ नज़र आने लगी। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में जनक्रांति शुरू हुई । पूरे देश के छात्रों ने समर्थन दिया। बिहार से शुरू हुए इस आन्दोलन के क्रम में 19 मार्च 1974 को खग़डिया में छात्रों के जुलूस पर गोली चली, जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में संचालित 8 अप्रैल के मौन जुलूस की पटने में सफलता देखकर सत्ता की दमन-नीति तेज हो गई 1अप्रैल 1974 में स्त्रियों ने जुलूस निकाला, धरना किया, उनके समर्थन में खडे छात्रों को जीप से कुचल डालने का आदेश सैनिक जीप के ड्राइवर ने नहीं माना, वर्दी उतारकर फेंक दी। भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी ने जयप्रकाश नारायण को अमरीकी एजेंट घोषित किया। पूरा वर्ष जुलूस, धरना, नारेबाज, लाठीचार्च और दमन का वर्ष रहा। लेखकों पत्रकारों और जनता के पक्षधरों पर लगातार अत्याचार किया जाता रहा। प्रख्यात लेखक फणीश्वरनाथ रेणु को गिरफ्तार कर लिया गया। मगर जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में चल रहे इस जनांदोलन को निरंतर व्यापक समर्थन मिलता जा रहा था। जनकवि नागार्जुन ने 30 जनवरी 1975 में आयोजित मौन सम्मेलन हिस्सा लिया। अकेले बिहार में ही 6 मार्च

1975 को दस हज़ार लोगों के गिरफ्तार किया गया। इलाहाबाद हाई कोर्ट में मुख्य न्यायाधीश ने 12 जून 1975 को इंदिरा गांधी के चुनाव को अवैध होने का फैसला दिया। रामलीला मैदान, दिल्ली में 25 जून 1975 में आयोजित सबसे बडी जनसभा को लगभग दस लाख लोगों की उपस्थिति में जयप्रकाश नारायण ने इंदिरागांधी से इस्तीफा माँगा। उसी रात तीन बजे लोकनायक को गिरफ्तार कर 26 जून 1975 को देश में आतंरिक आपातकाल की घोषणा कर दी गई। असंख्य छोटे- बडे नेताओं, राजनीतिक कार्यकर्ताओं, साहित्यकारों, पत्रकारों को गिरफतार कर मीसा में बंद कर दिया गया। अखबार और पत्रिकाओं पर कडा सेंसरशिप लगू हो गया। तानाशाही और निरंकुशता की यह त्रासदी हतप्रभ करने वाली थी।

जनवरी 1977 में लोकसभा चुनाव की घोषणा हुई 1मार्च 1977 में चुनाव हुआ। आपातकाल और कांग्रसी निरंकुशता से बिलबिलाई जनता का क्रोध फलीभूत हुआ। इंदिरा गाँधी समेत कई दिग्गज नेता पराजित हुए। मगर नवगठित सत्ता के जनप्रतिनिधि फिर अपने- अपने स्वार्थों के वशीभूत कटने- मरने लगे, सरकार गिर गई। मध्यावधि चुनाव हुआ, पूरे देश में राजनीतिक अनस्थिरता का दौर चल पडा, वह अनस्थिरता लोकसभा से विधान सभा तक आज भी कायम है। कांग्रेस पार्टी फिर सत्ता में आई, आगे चलकर इंदिरा गाँधी की हत्या हुई।

आपातकाल, आम चुनाव के परिणाम , परिवर्तित शासन व्यवस्था के आचरण, मध्यावधि चुनाव और फिर से सत्ता में कांग्रेस पार्टी के

आगमन ने देश के आम और प्रबुद्ध नागरिकों की चिंतन व्यवस्था हिला दी। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में हुई संपूर्ण क्रांति को नई पीढी ने इस घटना के आलोक में विफल प्रयास माना। प्रतिपक्ष विद्रोह और आन्दोलन द्वारा देश और समाज का ढांचा बदल देने का फैसला रखने वाला युवा- वर्ग आगे चलकर आन्दोलन से भय खाने लगा, वे विद्रोह की दशा छोडकर किसी तरह कुछ पा लेने केलिए पिछले दरवाज़े की तलाश करने लगे। यह स्थिति रचनाकारों केलिए त्रासद थी। उनकेलिए विषय तो वे ही थे, पर उस देश की तीक्ष्णता बढ गई थी।इसकेलिए कवियों ने अपनी शैली और शिल्प बदल डाली। चीख, विद्रोह और आक्रोश की भाषा संयत हुई, मगर व्यंग्य की ओर मुडकर पहले से अधिक सांघातिक हो गई। संभवत: इन कारणों से सन् 1980 के बाद की कविता को समकालीन कविता कहते हैं। परमानन्द श्रीवास्तव के अनुसार, "1980 के बाद की कविता सच्चे अर्थों में जीवनधर्मी कही जा सकती है, जहाँ भाव की प्रधानता दिखाई देती है। सुख- दु:ख, संघर्ष अनुभूति सम्वेदना सब पर इस कविता ने ज़ोर दिया है"[1]।

समकालीन कविता की लम्बी कहानी में सनातन सूर्योदयी कविता, अपरम्परावादी कविता, सीमांतक कविता , युयुप्सावादी कविता, अस्वीकृत कविता, सकविता, अन्यथाकारी कविता, विद्रोही कविता, बुकातर कविता, कबीरपंथी कविता,समाहारात्मक कविता, उत्कविता,

---

[1] परमानन्द श्रीवास्तव, समकालीन हिन्दी कविता, पृ. 13

विकविता, अकविता, अभिनवकविता, अधुनातन कविता, नूतन कविता, नाट्कीय कविता, एण्टी कविता, निदिर्शायामी कविता,लिंग्वादल मोतवादी कविता,एबसर्ड कविता,गीत कविता, नव प्रगतिवादी कविता साम्प्रतिक कविता, बोध कविता, मुहूर्त की कविता, द्वीपांतर कविता, अति कविता, टट्की कविता, ताजी कविता, अगली कविता, प्रतिबद्ध कविता, युद्ध कविता, स्वस्थ कविता, नंगी कविता, गलत कविता, सही कविता, प्राप्त कविता, सहज कविता, आँख कविता आदि का योगदान महत्वपूर्ण है। इस दौर में व्यक्तिवाद इतना प्रबल हुआ कि छोटे छोटे गुट में कवि बंटने लगे। व्यक्तिवाद, निषेध, नकार, अनास्था से भरी ये काव्य प्रवृत्तियाँ व्यक्ति- स्वातंत्र्य की वकालते करने लगीं।

बीसवीं शदी के नब्बे के दशक तक आते- आते भूमण्डलीकरण के दौर में उदारीकरण भी शुरू हुआ। सोवियत संघ के विघटन के बाद विश्व का नियंत्रण अमेरिका के सार्वभौमिक एकाधिपत्य में चला गया। विश्व व्यापार संधि, आर्थिक उदारीकरण तथा नई पूँजीवादी व्यवस्था ने विश्व परिदृश्य पर यथार्थ को बडी तेज़ी से बदल दिया है। आदर्श मानवीय मूल्य ध्वस्त हुए है, तथा वैचारिक शून्यता की आशंकाएँ प्रकट हुईं। वैश्वीकरण की परिणति यदि औपनिवेशिक साम्राज्यवाद के वर्चस्व के रूप में हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं होगा। इसी बीच साहित्य में उत्तर आधुनिकता का प्रवेश हुआ। दूसरी तरफ दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, पारिस्थितिकी विमर्श,

लोकजीवन और उत्तर औपनिवेशवाद के नए सोच से भरे रचनाकारों का आगमन हुआ। इन तमाम समस्याओं का प्रभाव समकालीन कविता में है।

समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ

समकालीन कविता की परिस्थितियों को पहचानने के बाद उसकी प्रवृत्तियों को जानना भी आवश्यक है। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर को जानने के बाद उसके व्यवहार को, उसके गुण- दोषों को जानना आवश्यक होता है ठीक उसी प्रकार समकालीन कविता को पूर्णत: पहचानने केलिए उसकी प्रवृत्तियों को जानना भी आवश्यक है। समकालीन कविताओं में जीवन के हर पक्षों को जगह मिली, मानव जीवन के सब रंग इनमें आने लगे। समय के साथ- साथ नई पीढी के रचनाकारों का भी आगमन हुआ, और पुरानी पीढी के लोग अपने दृष्टि फलक विस्तृत करते हुए समय की ज़रूरत समझने लगे। वैयक्तिक, पारिवारिक, समाजिक, नैतिक संबन्धों की पहचान कविताओं में होने लगी। कविता आम जनमानस से अपने नये संबन्ध को साथ जोडने लगी। इस तरह से समकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं-

भूमण्डलीकरण और बाजारू संस्कृति

भूमण्डलीकरण वैश्वीकरण का एक नया उपक्रम है। वैश्वीकरण का वास्तविक मकसद विश्व के दरिद्र राष्ट्रों को आर्थिक एवं वैज्ञानिक सहायता प्रदान करके उन्हें विकास की ओर अग्रसर करना ही था। इस उद्देश्य से

अमेरिका, ब्रिटन,जर्मनी, जपान जैसे साम्राज्यवादी देशों ने भूमण्डलीकरण की योजना बनायी। वह तीसरी दुनिया माननेवाले विकासशील देशों के आर्थिक एवं मानवीय अधिकारों की हत्या करते इन राष्ट्रों को अपनी इच्छा के अनुकूल बनाने का एक अंतर्राष्ट्रीय षडयंत्र था। यह विश्व भर के जनता की सहायता करने की उद्धेश्य से बना है। विश्वभर की जनता में बहुत कम जनता है सुसंपन्न, बाकी सारी जनता अभावग्रस्त है वे विकास केलिए निरन्तर परिश्रम करती हैं। अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोश विश्वबैंक तथा विश्वव्यापार संगठन जैसी संस्थाओं के गठन के पीछे शुरू- शुरू में विश्वमानव की भलाई ही लक्षित थी। अविकसित तथा विकासशील राष्ट्रों को आवश्यक आर्थिक तथा तकनीकी सहायता देकर उन्हें विकासोन्मुख करना तथा विश्वराष्ट्रों का एक खुला मंच तैयार करना भी इसका लक्ष्य था। विश्वस्तरीय व्यापार में जो बाधाएँ थीं उन्हें मिटाकर एक खुले व्यापार क्षेत्र का गठन भी इसके उद्धेश्यों में प्रमुख रहा था। जिससे विश्व के हर पिछडे देश को आगे आ जाने, अपने उत्पादनों केलिए योग्य मंडी चुन लेने तथा सबसे अधिक मुनाफा प्राप्त करने का अवसर मिले। वास्तव में यह अच्छा उद्देश्य था। लेकिन परिणति बिल्कुल उलटी पड गयी। इसकी परिणति यह हुई कि सारा नियंत्रण विकसित देशों के हाथों में पड गया। धीरे-धीरे वे कर्जदार बनाया गये। अपना स्वत्व खो गये। अपने देश की विरासत और अपनी भाषा से भी अपरिचित हो गये।

भूमण्डलीकरण पर गंभीरतापूर्वक विचार करें तो अपनी वैचारिक अराजकता का पता चल ही जाएगा। आज की भूमण्डलीकृत संस्कृति में सब कहीं अराजकता ही हो रही है। इसे कवियों ने अच्छे ढंग से अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। कुमार अंबुज ने 'परंतु' कविता में अपनी राय इस प्रकार व्यक्त किया है-

"यों तो मैं खुश हूँ
परंतु मुझे शर्म आती है
अपनी समकालीन कायरता पर
मैं शब्दों से काम चलाता हूँ
परंतु मुझे अब कुछ दूसरे हथियार भी लगेंगे" [1]

अजकल के ज़माने में लोग केवल अपने शब्दों से काम चलाते हैं। वह अपनी कायरता का प्रतीक है।

उदयप्रकाश की 'रात में हारमोणियम' शीर्षक कविता में भी भूमण्डलीकृत दुनिया का चित्रण है। कवि ने यहाँ हमारे स्वत्व को याने अपनी चीज़ों को बचाने का आह्वान करते हुए कहा हैं-

"बचाना ही हो तो बचाये जाने चाहिए
गाँव में खेत, जंगल में पेड, शहर में हवा
पेडों में घोंसले, अखबारों में सच्चाई, राजनीति में

[1] कुमार अंबुज, अतिक्रमण, पृ. 83

नैतिकता, प्रशासन में मनुष्यता दाल में हल्दी"[1]

एकान्त श्रीवास्तव 'हस्ताक्षर' कविता में अपने देश और संस्कृति की बिक्री की बात उठाते हैं-

"सिर्फ एक हस्ताक्षर किया जाता है
और खो देते हैं हमारा
अपना देश"[2]

बाज़ार का मतलब एक ऐसे स्थान से है जो मनुष्य और समाज को सुविधा प्रदान करता है। अर्थात् जीवनोपयोगी वस्तुओं के लेन देन के स्थान का नाम बाज़ार है। वस्तुओं के लेन देन की यह क्रिया ऐसे अर्थों वाले बाज़ारों में मनुष्यता के शाश्वत सामान्य गुणों, मनुष्यों के बीच आपसी रिश्तों को बगैर हानि पहुँचाए सम्पन्न होती है। वास्तव में बाज़ारीकरण का विकास भूमण्डलीकरण की एक मुख्य प्रवृत्ति है।

सभ्यता के शुरुआती दौर में बाज़ार का विकास धीरे- धीरे हुआ। वह न तो आज की तरह संगठित था और न आज की तरह विकसित ही हुआ था। बाज़ार का आधुनिक रूप पूँजीवाद के विकास के साथ दुनिया के सामने आया। व्यापार और उद्योग में परम स्वतंत्रता की वकालत की गई। वह बाज़ार से पूर्ण स्वतंत्रता और तटस्थता की भूमिका की अपेक्षा करता

---

[1] उदयप्रकाश, रात में हारमोनियम,पृ.22

[2] एकांत श्रीवास्तव, मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद, पृ. 83

था। शासकीय हस्तक्षेप का वह कट्टर विरोधी था। वह खुली प्रतियोगिता का पक्षधर था।

बाज़ारीकरण का प्रभाव मध्यवर्ग के लोगों पर बुरी तरह से पडा है। वे इस युग में जीने केलिए मजबूर करने लगे। क्योंकि बाज़ारीकरण ने सबकुछ उजाड दिया है। विज्ञापनों के मायाजाल ने मानव को घेर लिया है। ये विज्ञापन तय करते हैं कि मानव को क्या खरीदना और क्या न खरीदना है। बाज़ारों की दुनिया में आविष्कार आवश्यकता की जननी बनाया गयी है। अब हाइपर मार्केट या बडे- बडे शोपिंग मॉल की संस्कृति है। हम ग्राहक मल्टी नेश्नल कम्पनियों के प्रोडक्टों के सामने हतप्रभ हो जाते हैं। कम्पनी ही हमारी रूचि तय करती है। विज्ञापनों के मायामोह के शिकंजे में कसकर हम प्रोडक्टों के गुलाम बन जाते हैं। अर्थात् नवउपनिवीशवादी दौर में हम दिमाग स्तर पर पूँजीपतियों व साम्राज्यवादियों के गुलाम बन रहे हैं। मनुष्य का दिमाग यंत्र सा बन गया है। ज्ञानेन्द्रपति ने 'आज़ादी उर्फ गुलामी' कविता में भूमण्डलीकृत समाज के मुनाफेखोर रवैये को अत्यंत मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है।

"आज़ादी का मतलब है
बाज़ार से अपनी पसन्द की चीज़ चुनने की आज़ादी
और आपकी पसन्द
वे तय करते हैं

जिनके पास उपकरणों का कायाबल
विज्ञापनों का मायाबल
आपकी आज़ादी पसन्द है उन्हें

चीज़ों का गुलाम बनने की आज़ादी
यांत्रिक सभ्यता के शीर्ष पर
उन्होंने केवल कम्प्यूटर ही नहीं बनाये हैं
आपके दिमाग को भी कम्प्यूटर में बदल दिया है
जिसका सोफ्टवेयर वे सप्लाई करते हैं
घर बैठे होम डिलीवरी
मुफ्त, बिल्कुल मुफ्त"[1]

बाज़ार और मीडिया के वर्चस्व से हमारी मुक्ति संभव नहीं है। क्योंकि हमारे न चाहने पर भी हर माल का विज्ञापन व डिस्प्ले टी.वी. में देखना पडता है। हमारी विकृत मानसिक बुनावट का यह एक महत्वपूर्ण कारण है। घर का बाज़ार में बदलने का मतलब यह है कि रिश्ते भी मुनाफे के आधार पर बनाये रखते हैं लोग। इसी विडम्बना को 'विज्ञापन' में अनिता वर्मा प्रस्तुत करती है-

"आप दूध पियेंगे तो पहले तो पहले देखिए उसके तरीके
और दिन भर करने को रह गये हैं बस दो काम

[1] ज्ञानेन्द्रपति, संशयात्मा, पृ.123

या तो नहा लीजिए या फिर धो लीजिए कपडे

बहुत खुश हों तो चार बार कर सकते हैं ब्रश"[1]

कुंवरनारायण ने 'बदलते पोस्टर' कविता में इस प्रकार कहा है-

"कभी एटलस साइकिल पर सवार पगाह किसान

कभी हाथ जोडे खडे धनवर्षा का संदेश देते

धनकुबेर।

मगर वह गुमसु उदास लडका नहीं बदलता

जो ठेके पर सरकारी पोस्टर लगता है

बाप शराब पियेंगे

और बेटे भूखों मरेंगे"[2]

समकालीन कविता में बाज़ार एक महत्वपूर्ण शब्द बनाया गया है। यहाँ रिश्ते, सिद्धांत, व्यवहार तथा मानवीय संवेदनायें तक बिकने की स्थिति पैदा हो गयी है। बाज़ार के प्रति स्वस्थ रवैये के अभाव में उसकी संपन्नता सर्वग्रासी है। आम आदमी केलिए जो महँगाई है, हेमंत कुकरेती ने 'शिकार पर पडती है बर्फ' कविता में इस अनैतिक वृत्ति को इस प्रकार व्यक्त किया है।

"फैल वहाँ के इतने महँगे होते जाते हैं

कि कुछ दिनों बाद महाकूडेदान में

---

[1] अनिता वर्मा, एक जन्म में सब, पृ. 19

[2] कुँवरनारायण, कोई दूसरा नहीं, पृ. 115

सडे हुए मिलते हैं" [1]

इसका मतलब यह है कि बाज़ार का मूल्यहीन इस्तेमाल महंगाई का नियंता है। भूमण्डलीकरण का आधार बाज़ारवाद है जो उदारीकरण की नीतियों पर चलता है। इस तरह उदारीकरण की राजनीति वणिक संस्कृति को जन्म देती है। वहाँ तो मनुष्य नहीं है,
सब वस्तु में तब्दील होता है। इससे एक संस्कृति का उदय हुआ, वह है उपभोग संस्कृति।

उपभोग संस्कृति

आज मानव उपभोग संस्कार का गुलाम बनाया रहा है। भूमण्डलीकरण, विदेशी पूँजी निवेश , मुक्त व्यापार आदि के कारण उपभोग संस्कार फैल गया है। इसने अपने मनुष्यत्व को खो दिया है। विदेशी गुलामी से मुक्ति केलिए पूर्वजों ने जो त्याग और बलिदान किए हैं, उन्हें भूलकर वर्तमान पीढी अपनी महत्वाकांक्षा से पाश्चात्य संस्कृति के पीछे दौड रही है। इस भाग दौड में बेचारा दूसरों के उपभोक्ता बनकर अपने आप में खो बैठते हैं। इस उपभोक्तावादी समाज ने हमारी सारी मान्यताओं, मूल्यों सामूहिकताओं और नैतिक प्रतिबद्धताओं का उन्मूलन किया है। मानव समाज में अवसरवाद, चापलूसी, भ्रष्टाचार और व्यक्तिबद्ध अहंवादी मूल्यों की वृद्धि हुई। व्यक्ति व समाज के आपसी रिश्ते

---

[1] हेमंत कुकरेती, नया बस्ता, पृ. 43

और संबन्धों की परिभाषा ही बदल गयी। उपभोगवादी समाज ने एक ऐसी सभ्यता को विकसित किया है, जिसमें व्यक्ति और व्यक्तित्व नष्ट होकर सिर्फ वस्तु बने रह जाने की स्थिति में आ गये हैं। व्यक्ति में आत्मनिर्णय और स्वविवेक नष्ट होने लगे हैं। बाज़ार और बाज़ारू-रूझान तथा उसकी नीतियों के जाल ने व्यक्ति को आकर्षित और विवश कर उसे व्यक्ति के स्थान पर सिर्फ उपभोक्ता बनाकर छोड दिया है।

बाज़ारीकरण के औजार संचार माध्यमों के ज़रिए उपभोगवादी संस्कृति का प्रसार हो रहा है। 'गंगातट शुरू रात की बेला' कविता में पेडों की छायाभासी पट्टी के पीछे चंद्रोदय के पूर्वाभास से फैले बत्तियों के समवेत प्रकाश के प्रतीकन में बाज़ारीकरण का फैलाव ही सूचित है। यानी ऐसे छद्म बिंब पेश हो रहे हैं कि अयथार्थ को यथार्थ मानकर चलने केलिए मजबूर किया जा रहा है। यह ऐसा मायावी बाज़ार है जहाँ-

"तुम्हारी इच्छाओं और रुचियों के नियंता
तुमहारे भीतर ज़रूरत ही ज़रूरतें जगते"[1]

पहले बाज़ार का अपना आदर्श था, उपभोग का अपना आदर्श था, लेकिन वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति बाज़ार का ऐसा संगठन है हमारे उपभोग का स्वरूप हमारी आवश्यकताएँ नहीं, व्यवसायिक हित निर्धारित करते हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति एक नव-औपनिवेशिक जाल है, जिसमें फँसाने केलिए विज्ञापन प्रायोजित हो रहे हैं जो सुखवादी

[1] ज्ञानेन्द्रपति,गंगातट,पृ.14

संस्कृति पर बल देते हैं।

मौजूदा हालत में स्त्री की उपभोगवादी पहलू ही मीडिया द्वारा अधिकांशत: प्रसारित हो रही है। अमानवीय संस्कृति ने स्त्री के स्वाभाविक गुणों की सौन्दर्य को, नारी जन्य संवेदनाओं को उनसे हडप ली है। वर्तमान बाज़ारी संस्कृति में लडकी भी माल में तब्दील हो गयी है। एकांत श्रीवास्तव 'लडकी ओर आम' शीर्षक कविता द्वारा ऐसी साजिश से हमें वाकिफ करना चाहते हैं-

"फल फल थे
उन्हें बिकना ही था
किसी न किसी बाज़ार में
लडकी मगर लडकी ही थी
हाड-मांस की जीवित
उनकी इच्छाएँ थीं
कि उसे स्कूल जाना था
कि उसकी डोली उठती थी
लडकी आम नहीं थी"[1]

आज की विज्ञापन संस्कृति साधारण स्त्री को बेकार की चीज़ मानती है।

[1] एकांत श्रीवास्तव, बीज से फूल तक, पृ. 29

मीडिया का प्रभाव

समय के साथ-साथ परिस्थितियाँ भी बदल गई हैं। आज की सदी मीडिया और सूचना प्रौद्योगिकी की है। मीडिया ने हमारे दैनिक जीवन, रहन- सहन आदि समूचे परिवेश को प्रभावित किया। आज साहित्य, कला और संस्कृति पर भी मीडिया का प्रभाव हम देख सकते हैं। संचार क्रांति तथा उपभोक्तावादी वैचारिकता के कारण विश्व स्तर पर सांस्कृतिक मौलिकता की अस्मिता का संकट उपस्थित हुआ है। दृश्य- श्रव्य साधनों का इतना विस्तार हो चुका है कि सारा संसार परस्पर एक परिवार सा हो गया है, किंतु उसका मनुष्यत्व जैसे कहीं खो गया है।

मीडिया सबको खबर देने के साथ- साथ सबकी खबर लेने का दावा भी करता है। समकालीन कविता में इस खबरदार मीडिया की खबर भी ली गई है। मीडिया वास्तविक दुनिया का चित्र खींचता है। टी. वी. दर्शकों को निष्क्रिय और आलसी बनाने की कोशिश की जाती है। कोई सीरियल देखना शुरू करते हैं तो देखना छोड भी न देते। सीरियलों की घटनाएँ वास्तविक जीवन से कम, लेखक निर्देशक के दिमाग से ज्यादा मेल खाती है। मीडिया खबर छुपाती भी है और खबरों से खेलती भी है। इस खिलवाड से शोर पैदा होता है। इतना शोर कि उसके अलावा और कुछ सुनाई न दे। शहरयार को ठीक ही अनुभव होता है कि-

"सदा के साये में सन्नाटे को पनाह मिली
अजब कि शहर में चर्चा न इस खबर का हुआ"[1]

बाज़ारुनुमा उपभोक्तावादी संस्कृति ने मानवीय मूल्यों का अपसांस्कृतीकरण कर दिया है। यहाँ सबकुछ मुनाफे या भाव-तोल के मापदण्ड के अनुसार होता है। मानवीय संवेदनाएँ भावुकताएँ सब कुछ बेकार की चीज़ें हो गयी हैं। जहाँ तक मृत्यु जैसी भावुक संवेदनात्मक घटना भी सनसनीखोज एवं विज्ञापनी खबर मात्र रह गयी है। लीलाधर मंडलोई ने ऐसी एक दर्दनाक एवं शर्मनाक वास्तविकता को हमारे सम्मुख पेश करती है।

"मृत्यु सिर्फ उपभोक्ता खबर है दृश्यों में
पहुँचती नहीं उन तक जो कभी भी तोड सकते हैं
अपनी आखिरी सांस अटकी जो उम्मीद में कहीं" [2]

मीडिया का बाज़ारीकरण के साथ सीधा संबन्ध है। यह पूजीपतियों द्वारा संचालित है। उदारीकरण, निजीकरण द्वारा देश के विकास का दावा करनेवालों का समर्थक मीडिया आज अपने कर्तव्य पथ से विचलित हो रहा है। इस तरह संवेदनहीन और संवादशून्य समाज बनाने केलिए पूँजीपति वर्ग मीडिया का इस्तेमाल कर रहा है।

---

[1] शहरयार, कहीं कुछ कम है, पृ. 22

[2] लीलाधर मंड्लोई, काल बाँका- तिरछा,पृ. 67

सनसनीखोज खबरों की बोलबाला में 'मृत्यु' तक अब बेकार की बात बन गयी है।

सांप्रदायिकता का प्रतिरोध

सांप्रदायिकता आज हमारी सबसे बडी समस्या है, जिसने संपूर्ण राष्ट्र की अस्मिता को ही छिन्न भिन्न कर दिया है। विभिन्न संस्कृतियों के मानने वाले भारत जैसे देश को इस भावना ने रोगग्रस्त कर दिया है। सन् 1920 में यह विचारधारा बहुत शक्तिशाली नहीं दिखाई देती थी परंतु सन् 1927 तक आते-आते भारत में सांप्रदायिक हिंसा का एक महत्वपूर्ण दौर चला था। विश्वयुद्ध के समय में यह अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी और सन् 1947 तक आते आते इसकी फसल पूरी तरह पककर तैयार हो गई थी।

सांप्रदायिक दंगों का दुष्परिणाम अनेक स्तरीय होता है। काश्मीर, अयोध्या, गोर्थरा जैसी घटनाएँ इन दंगों का भयानक रूप हमें देती हैं। आज़ादी के बाद भारत धर्म और जाति निरपेक्ष राष्ट्र बनाया गया, पर यह समस्या आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। आज इसने सांप्रदायिकता, आतंकवाद, धर्मान्धता, जातीयता आदि विकराल समस्याओं का रूप धारण किया है। इसी वजह से यहाँ कई प्रकार के हमले, हत्याकांड, राष्ट्रीय विध्वंसक प्रवृत्तियाँ आदि होती ही रहती हैं। सांप्रदायिकता राष्ट्रवाद की उलझी हुई समस्या बन गयी है। जिस प्रकार विदेशी शासन काल में अंग्रेज़ों ने 'फूट डालो और राज्य करो' की जो नीति अपनाई थी, वही

नीति आज हमारे राजनीतिज्ञ अपना रहे हैं। "यह सांप्रदायिकता धर्मे की देन नहीं है बल्कि राजनीति, सामाजिक, आर्थिक शक्ति को हथियाने केलिए तथा सत्ता में बने रहने केलिए अवसरवादियों की साजिशों की देन है"[1] । सांप्रदायिकता के गर्भ से नक्सलवाद, जातिवाद,क्षेत्रवाद की भावनाएँ विकसित होने लगती है।

जब सांप्रदायिक शक्तियाँ अपने ही धर्म को सर्वोत्तम मानने लगती हैं, इसकी ज़िद करती है कि सारी मानवता की मुक्ति अपने ही धर्म के ज़रिए ही संभव है और ऐतिहासिक घटनाओं को अपनी स्वार्थता केलिए इस्तेमाल करती हैं और ऐतिहासिक सच्चाइयों को माँजकर नया कुछ लिखने की कोशिश करती हैं तो हमारी विरासत की औकात ही कहीं गुम हो जाती है। आखिर इसका बुरा परिणाम आम आदमी को ही भोगना पडता है। इस संदर्भ में बबरी मस्जिद का ध्वंस, गुजरात का नरसंहार और उडीसा में कठमुल्लावादियों के हाथों जलाए गए ग्राहाम स्टुवर्टस और उनके मासूम बच्चों की हत्या आदि मानवीयता पर पडे कलंक हैं। आज सब कहीं साम्प्रदायिकता के नये रूप जैसे विमानपहरण, बम विस्फोट, इंटरनेट द्वारा की जानेवाला हमला आदि सांप्रदायिक शक्तियों की साजिश विद्यमान है। अनेक समकालीन कवियों ने इसके खिलाफ आवाज़ उठायी है।

---

[1] आधुनिक सांप्रदायिकता का विकास और परिणाम, पहल पत्रिका, सितंबर 1992,पृ. 151

बोधिसत्व की कविता 'पागलदास' में पागलदास संपूर्ण अयोध्यावासियों का प्रतीक है। अयोध्या को पवित्र भूमि माना जाता है। क्योंकि वहाँ जाने पर लोगों को पुण्य और मोक्ष प्राप्त होता है। अयोध्यावासी पागलदास का निधन हो गया। वहाँ रहकर भी पागलदास उदास था। राम की नगरी में रहने के कारण उन्हें खुश रहना चाहिए था लेकिन उदास थे। पागलदास की उदासी का कारण ढूं ढने पर पता चला कि उनकी उदासी का कारण वह स्वयं था।

"जैसे अयोध्या में बसती है दूसरी अयोध्या
सरजू में बहती है दूसरी सरजू
वैसे ही पागलदान में था दूसरा पागलदास
और दोनों रहते थे अलग- थलग और
उदास" [1]

सांप्रदायिकता का शिकार होनेवाले आम बेकसूर जनता का चित्रण कुमार विकल की

'पहचान' कविता में देखा जा सकता है-

"यह जो सडक पर खून बह रहा है
इसे सूँधकर तो देखो
और पहचानने की कोशिश करो

[1] बोधिसत्व, हमारा जो नदियों का संगम है, पृ. 13

यहाँ हिन्दु का यहाँ मुलमान का"[1]

अपराध उसका यही था कि वह अपराधी नहीं था। इसकी सज़ा उसे मिली। सांप्रदायिकता से ग्रस्त धर्म ऐसा ही न्याय किया करता है। उसकी खुली घोषणा राजेश जोशी के शब्दों में है-

"सबसे बडा अपराध है इस समय
निहत्थे और निरपराध होना
जो अपराधी नहीं होंगे
मारे जाएँगे"[2]

समझना मुश्किल नहीं है कि यह कैसा धर्म है, जिसे अपराध की इस कदर ज़रूरत पडती है। यह अपराधियों का धर्म है। अपराधियों द्वारा अपराधियों केलिए निर्मित धर्म है। धर्म इस अपराध तंत्र का रूप मात्र है। इसके वर्चस्व में अपराधी न होना तो अपराध है। गुणवान होना और भी बडा अपराध है। अरुण कमल ने कहा-

"मैं मारा गया
इसलिए कि मेरी नाभि में कस्तूरी थी
और रोओं से झर रही थी सुगंध लगातार
जानता था एक दिन नष्ट ही करेगी पवित्रता

---

[1] कुमार विकल, संपूर्ण कविताएँ, पृ. 184

[2] राजेश जोशी, नेपथ्य में हँसी, पृ.35

इसी जीवन के कारण मरूँगा तै था"[1]

यहाँ सुगन्ध मार डालती है का मतलब है दुर्गन्ध पैदा करो, गंध का यही रूप है, जो अपराधियों को अपना लगता है इसी को पालते- पोसते हैं।

धर्म के नाम पर होनेवाले अत्याचार से उचटकर कुमार विकल 'चीख' नामक कविता में आवाज़ उठाता है।

"मैं किसी किरपान से मारूँ

किसी त्रिशूल से

या पुलिस की गोली से

पर मरने से पहले

मैं ज़रूर चिल्लाऊँगा।

मज़हब ही सिखाता

आपस में वैर रखना

आदमी को

त्रिशूल या किरपान में बदलना"[2]

धर्म के असली मकसद का पोल खोलते हुए कवि खुलासा करते हैं कि धर्म कभी आरती, कभी कलमा कभी अरदास बनकर आम आदमी की

---

[1] अरुण कमल, नये इलाके में, पृ. 72

[2] कुमार विकल, संपूर्ण कविताएँ, पृ.121

तमन्नाओं में घुस जाता है ताकि वह इस दुनिया को बदल न पाए और गालियाँ बुदबुदाते हुए एक तर्कनुमा ज़िन्दगी जीते- जीते रीत हो जाए।

इस प्रकार देखें तो सांप्रदायिकता की चुनौतियों पर हिन्दी के अनेक कवियों ने अपनी लेखनी चलायी। यह आज की मांग है।

पारिस्थितिक विमर्श

इतिहास इस बात का गवाह देता है कि मानव और प्रकृति हमेशा कविता का विषय रहे हैं। समकालीन कविता के केन्द्र में मनुष्य है इसलिए वहाँ प्रकृति भी है। लेकिन सभ्यता के विकासानुसार प्रकृति की सत्ता को मानव अपने से पृथक मानने लगा। इसलिए कभी वह प्रकृति की शक्ति से आतंकित होता है और कभी उसके सौन्दर्य से मुग्ध। धीरे- धीरे प्रकृति को अधीन करने की प्रवृत्ति उसमें पनपने लगी। भविष्य की परवाह किये बिना मानव विकास के नाम पर पर्यावरण से विवेकहीन बर्ताव करता जा रहा है। मानव की खुद की गतिविधियों ने पृथ्वी के साथ ही साथ स्वयं के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है। इसके परिणाम स्वरूप हमारा पारिस्थितिक संतुलन बिगडने लगा है। पर्यावरण की यह समस्या आज की सबसे खतरनाक समस्या के रूप में पूरी दुनिया को खायी जा रही है। याने यह एक सामाजिक समस्या है। पारिस्थितिकी का केन्द्रीय विचार प्रकृति और मनुष्य का आपसी संबन्ध और उसका सह अस्तित्व है। सच तो यह है कि विकास की विशिष्ट योजनायें,औद्योगीकरण, जल विद्युत परियोजनायें, सिंचाई केलिए बने बाँध, खनिज, उत्खनन आदि लोगों को

विस्थापित करती है, उसकी सामाजिकता का ह्रास करती है। पर्यावरण में उपलब्ध उनकी जीविका के साधनों से उन्हें अनिश्चय के अंधेरे में धकेल दिया जाता है। समकालीन कविता की सबसे बडी खासियत है पारिस्थितिक बोध। ये कवितायें प्रकृति और मनुष्य के सह- संबन्धों का टूटना, प्रकृति में मनुष्य की दखलंदाज़ी, विभिन्न पारिस्थितिक समस्यायें, प्रकृति शोषण जैसे मुद्दों को केन्द्र में रखती हैं। इन समस्याओं को वैश्वीकरण, उपभोगवाद, बाज़ारीकरण, विकास परियोजनाएँ आदि के तहत देखने परखने का कार्य भी समकालीन कविता की ओर से हुआ है।

पारिस्थितिक बोध की अवधारणा दरअसल प्रकृति और मनुष्य के बीच के सह अस्तित्व पर ज़ोर देती है। प्राचीन काल में मनुष्य प्रकृति के नैकट्य से सुख शांति पाता है। लेकिन आधुनिक उपभोगवादी संस्कृति में हमारा पर्यावरण अशांत नज़र आता है। प्रकृति में मनुष्य के जो अतिरिक्त हस्तक्षेप और उनसे उत्पन्न समस्याओं के प्रति हिन्दी के समकालीन कवि हेमंत कुकरेती बहुत अधिक चिंतित हैं। वे पहले की तरह प्रकृति में सुख शांति की आशा में जाते हैं लेकिन वहाँ अशांति नज़र आती है। वर्तमान सभ्यता और उपभोगवादी संस्कृति के कारण पर्यावरण में असंतुलन आता है या विकृतियाँ आती हैं और प्रकृति का अस्तित्व संकट से घिरता जा रहा है। इस स्थिति की ओर इशारा करते हुए कवि कहते हैं-

" मैंने सोचा मेरा ताप आकाश सोख लेगा

उसने कहा भूल जाओ

पहले की और थी बात

अब तो मैं भी जगह- जगह से धधक रहा हूँ

हवा का अपना ही ठिकाना नहीं था" [1]

अपने समय एवं समाज के प्रति संवेदनशीलता रखनेवाले कुकरेतीजी की चिंता यह है कि आज का युग प्लास्टिक का युग है। आजकल नगरों और महानगरों में विभिन्न मानवीय क्रियाकलापों के फलस्वरूप प्लास्टिक प्रदूषण पैदा होता है। मानव ने प्लास्टिक जैसी कभी न गलनेवाली चीज़ों को बनाकर प्रकृति को दुर्वह बोझ पैदा कर दिया है, क्योंकि इसका निस्तारण बहुत ही कठिनाई से होता है। यदि जलाकर या किसी अन्य प्रकार से इसे नष्ट करने की कोशिश की जाए तो वह भी पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं को नुकसान पहूँचाता है। इस सच की स्पष्ट झलक निम्नलिखित पंक्तियों में देखने को मिलती है-

"नश्वर आदमी ने प्लास्टिक जैसी यह कैसी अमर चीज़

को पैदा कर दिया कि पल्ले पड गया दुर्वह बोझ"[2]

---

[1] हेमंत कुकरेती, नया बस्ता, पृ. 63

[2] हेमंत कुकरेती, चाँद पर नाव, पृ. 47

आज कल दैनिक उपयोग की तमाम वस्तुओं के निर्माण के साथ प्लास्टिक थैलियों का उपयोग निरंतर बढ रहा है। खाद्य पदार्थों के यातायात और भण्डारण में भी इसका अधिक उपयोग किया जाता है। निरंतर बढते जा रहे प्लास्टिक का उपयोग मानव स्वास्थ केलिए अत्यंत हानिकारक है।'पालिथिन' नामक कविता में ज्ञानेन्द्रपति भी इसी स्थिति का बयान करते हैं-

"पालिथिन! पालिथिन!
तंग हूँ मैं इस पालिथिन से

तंग पडती जा रही है जगह जीवों को धरती पर
बीजों को धरती पर
इसके कारण

जिधर देखो उधर पालिथिन"[1]

यहाँ कवि ने पोलिथिन को हमारे समय की सबसे बडी विडम्बना के रूप में माना है।

विकास के नाम पर बनाए जा रहे बडे- बड़ी बाँध और औद्योगिक परियोजनाएँ बहुत अधिक पारिस्थितिक समस्याएँ पैदा कर रही हैं।

समकालीन हिन्दी कविता के पारिस्थितिक बोध का ज्वलंत मिसाल है भोपाल विषकांड दुर्घटना पर लिखी गयी कवितायें- विनय दुबे

[1] ज्ञानेन्द्रपति, गंगातट,पृ. 95

की 'ढाई बजे', अर्चना वर्मा की 'भोपाल 1984', राजेश जोशी की 'कुछ दिनों बाद', 'कोई नहीं रोता' 'वृक्षों का प्रार्थनागीत' 'इस शहर को दुर्घटनाओं से संत्रस्त मानवीय जीवन और प्राकृतिक वातावरण का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती हैं।

समकालीन कविता प्रदूषण के कई प्रकार और उनके कारणों को प्रस्तुत करती है। ज्ञानेन्द्रपति की 'नदी और साबुन', 'नगर की आँखों में बसी है असी' , पंकज चतुर्वेदी की 'एक समुद्र भी था' सुदीप बैनर्जी की 'तमाम नदियों का अंत है', राजेन्द्र उपाध्याय की गंगा केवल एक नदी का नाम नहीं' जैसी कविताएँ जल प्रदूषण की भीषण स्थिति से अवगत कराती हैं।

वायु प्रदूषण को चित्रित करनेवाली कविताओं में ज्ञानेन्द्रपति की 'धुएँ के पेड की तरह उगी है' राजेश जोशी की 'हवा' आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार देखें तो समकालीन परिस्थितियाँ मनुष्यता के खिलाफ हैं अर्थात् प्रकृति के खिलाफ भी। समकालीन सौन्दर्यशास्त्र ने समकालीन हिन्दी कविता को नवीन वस्तु, भाव, विचार और भाषा शैली प्रदान करके एक नये सौन्दर्यशास्त्र का निर्माण किया है। यह एक नयी काव्यशैली है जिससे पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता को लेकर जन चेतना काफी जागृत हो गयी है। आधुनिक मानव को सही दिशा देने और सक्षम बनाने केलिए पारिस्थितिक अवबोध की सख्त ज़रूरत है।

नारी विमर्श

समकालीन दौर में सर्जनात्मकता के क्षेत्र में कई सामाजिक समस्याएँ उभरकर आयी हैं जिनमें प्रमुख है नारी की समस्या। कविता के क्षेत्र में तो नारीवाद एवं नारी मुक्ति का स्वर आज बुलन्द है। समकालीन कविता में स्त्री विमर्शवादी स्वर बडे संवेदनशील और व्यापक स्तर पर सुनायी पड रहा है। अनेक कवियों ने अपनी कविताओं में स्त्री जीवन की बदत्तर ज़िन्दगी का खुला दस्तावेज़ प्रस्तुत कर पुरुषमेधा समाज की अनीतियों की पोल खोल दी है। हमारे परंपरागत समाज ने सदैव धर्म के गिरफ्त में स्त्री को कैदकर रखा है।

समकालीन नारीवादी कविता स्त्री के अधिकारों की संघर्षपूर्ण मांग करती है। पुरुष केन्द्रित समाज में व्याप्त स्त्री उत्पीडक तत्वों को प्रकाश में लाना उसका सबसे बडा उद्देश्य है। वह याद दिलाती है कि हमारा अब तक का इतिहास स्त्री शोषण का ही इतिहास है। पुरुष केन्द्रित समाज समय- समय पर स्त्री चेतना को दबाने का परिश्रम करते आया है। किंतु इतिहास इस बात का भी गवाह है कि दबाने की सारी कोशिशों के बावजूद स्त्री चेतना किसी न किसी रूप में उगी भी है। नारी मुक्ति का अर्थ केवल देह मुक्ति ही नहीं बल्कि विचारों की मुक्ति, आत्मा और परम्परागत शोषण से मुक्ति है।आज नारी को पता है कि उसे अपना आकाश स्वयं ही

पाना है, क्योंकि पुरुषों के अधीन रहकर वह या तो देवी बनायी जायेगी या दासी मायावी दुनिया उसे कभी नहीं बनने दिया जायेगा। आज भी पुरुष नारी को पूर्ण स्वतंत्रता देने में हिचकिचाता है।किंतु उसे तो अब अपनी पूर्ण स्वतंत्रता चाहिए।अब उसे अपनी नियति बदलती है।वह रोते-रोते सब कुछ चुपचाप नहीं सह लेती है। आज वह आत्मविश्वास से पूर्ण अपना व्यक्तित्व निर्माण कर आत्मनिर्भर हो गयी है, तो फिर क्यों वे पुरुषों के अधीन रहे। हर क्षेत्र में वे अपनी विजय पताका लहरा रही है। इसे सविता सिंह ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

"मुझे वह स्त्री पसन्द है, जो कहती है अपनी बात साफ- साफ
बेझिझक जितना कहना है बस उतना
निर्भीक जो करती है अपने काम
नहीं डरती सोचती हुई आत्म निर्भरता पर अपने
आत्मा जिन्हें बचाये रखना चाहती है देह केलिए"[1]

आज नारी अपने अस्तित्व की खोज कर रही है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि घर परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड रही है। वे पुरुषों की अपेक्षा अधिक परिश्रमी, व्यवहारकुशल, ईमानदार, कुशाग्रबुद्धि और उदार प्रकृति की होती है। इसलिए वे घर और बाहर दोनों परिस्थितियों में आसानी से सामंजस्य बिठा लेती हैं। उनके बिना घर का कोई अस्तित्व ही नहीं है। अरुण कमल की स्वप्न में एक स्त्री

[1] सवितासिंह, मुझे वह स्त्री पसंद है, वसुधा ,पृ. 146

बार- बार घर से भागती है। कभी मंदिर की सीढियों पर बैठी रहती है, कभी किसी जानवर के घर तो कभी नैहर चली जाती है। वह हर बार लौटकर मार खाई। चाहती तो आत्महत्या भी कर सकती थी-

"लेकिन वह जीवन से मृत्यु नहीं
मृत्यु से जीवन केलिए भाग रही थी
खूँटे से बाँधी बछिया- सी जहाँ तक रस्सी जाती, भागती
गर्दन ऐंठने एक यूँटे को डिगाती
वह बार- बार भागती रही
बार- बार हर रात एक ही सपना देखती
ताकि भूल न जाए मुक्ति की इच्छा
मुक्ति न भी मिले तो बना रहे मुक्ति का स्वप्न
बदले न भी जीवन तो जीवित बचे बदलने का यत्न"[1]

बदलाव की इच्छा को बचाए रखने केलिए जो स्त्रियाँ रह- रहकर पिट सकतीं, वे बदलाव केलिए क्या नहीं कर सकतीं। अपनी आत्मानुभूति और जीवन संघर्ष को कविता के माध्यम से अनमिका जी व्यक्त कर रही हैं-

"जिनका कोई घर नहीं होता-

[1] अरुण कमल, पुतली में संसार, पृ. 24,25

उनकी होती है भला कौन- सी जगह?

कौन-सी जगह होती है ऐसी

जो छूट जाने पर

औरत हो जाती है

कटे हुए नाखूनों

कंधी में फंसकर बाहर आए केशों- सी

एकदम से बुहार दी जाने वाली?[1]

अपने जीवन के शून्य को वह अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम से बरने की कोशिश करती है, जो उसके खालीपन को मिटाने में सहायक है। इस समाज से मिले सुख- दुख और अपने जीवन साथी से मिली तमाम सुख सुविधा के बीच वह अपने आपको ही खोजने की कोशिश करती रहती है।

दलित विमर्श

भारतीय समाज में सदियों से कुछ लोगों को मूलभूत अधिकारों से वंचित रखा गया है। जिनके बारे में आजकल ज़ोरों से चर्चायें हो रही हैं। सदियों से शोषित, पीडित दलितों को सवर्णों ने अपना गुलाम बनाकर शारीरिक और मानसिक रूप से लूटा जा रहा है। सवर्ण की नज़रों में दलित मनुष्य न होकर केवल पशु है, बदत्तर ज़िन्दगी जीने योग्य है। वे अछूत,अनपढ, अस्पृश्य माने जाते हैं। इसलिए इतिहास के पन्ने पलटते हैं

[1] अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 5

तो शोषण को झेलने वाले दलित वर्ग क स्वरूप हमें नज़र आता है, जिनकी आवाज़ साहित्य के द्वारा बुलंद होती है। ब्राह्म्णवादी व्यवस्था द्वारा शोषित और पीडित जनता में चेतना का प्रवेश उनकी ज़िन्दगी में नया प्लाटफोम बनाने में कामयाब रही। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, "दलित जातियाँ वे हैं जो अपवित्रकारी होती है। इस श्रेणी में कारीगर, धोबी, मोची, भंगी, बगैर, सेवक जैसे चमार डॉगरी (मरे हुए पशु उठाने केलिए) सऊरी, ढोला आते हैं। कुछ जातियाँ परम्परागत कार्य करने के अतिरिक्त कृषि- मज़दूरी का कार्य करती है। 'दलित' शब्द करुण या पश्चाताप को नहीं बल्कि बे वजह दमन और अपमान का शिकार होने के स्वाभाविक रोष को व्यक्त करता है"[1]।दलितों की पीडा, दैन्य, अपमान आदि का चित्रण कर उनमें आत्मसम्मान और स्वाभिमान का भाव जागृत करना दलित साहित्य का मुख्य लक्ष्य है। दलित साहित्य के अंतर्गत हाशिएकृत जनता पर लिखित साहित्य, दलितों पर दलितों द्वारा लिखित साहित्य और दलित लेखक गैर विषयों पर लिखित साहित्य आदि आते हैं। दलित साहित्य वास्तव में दलितों पर दलितों द्वारा लिखित साहित्य है। गैर दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य सहानुभूतिपरक, करुणापरक और सहयोगपरक तो हो सकता है पर उसका भोगा हुआ यथार्थ नहीं हो सकता। दलित साहित्य का मूल प्रेरणा स्रोत बाबा साहेब अम्बेडकर का

[1] डॉ. नरसिंहदास खेमदास वाणकर, दलित विमर्श, पृ. 35

दर्शन है हिन्दी में मराठी कवियों की प्रेरणा लेकर दलित कविता का सृजन हुआ।

समकालीन दलित कविता में विद्रोह, आक्रोश तथा संघर्ष के स्वर दिखाई देते हैं। दलित साहित्य के सुप्रसिद्ध रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की अधिकांश कविताओं में दलितों का अतीत आज भी कवि को पीछा नहीं छोडता है। उनकी यातना उनके जीवन के साथ है। वह अपने पूर्वजों की यातनाओं की स्मृति को ताजा करता है। वह एहसास करता है कि कितना कष्ट होता है अपनी इच्छाओं के विरुद्ध जीने केलिए। कवि ने इस स्थिति की व्यंजना इस प्रकार की है-

"बडी यंत्रणा होती है
इच्छाओं के विरुद्ध जीना
या देखते देखते छिन जाना
उन क्षणों का
जिनमें हंसा जा सकता था
गुनगुनाया जा सकता था
हवाओं की तरह"[1]

जाति के नाम पर सब कहीं अन्याय हो रहा है। शिक्षित समाज के लोग भी जाति के नाम पर भेदभाव करते हैं। लोग उसका नाम

[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्सबहुत हो चुका है, पृ. 79,80

या काम भी नहीं पूछते सिर्फ वह कौन- सी जाति का है? यह जानना चाहता है। मुकेश मानस ने अपना प्रतिरोश इस प्रकार व्यक्त किया है-

"उसने मेरा नाम नहीं पूछा
मेरा काम नहीं पूछा
पूछी एक बात
क्या है मेरी जात
मैंने कहा- इंसान
उसके चेहरे पर उभर आई
एक कुटिल मुस्कान
उसने तेज़ी से किया अट्टहास
उस अट्टहास में था
मेरा उपहास का
एक लंबा इतिहास"[1]

इस प्रकार जाति के नाम पर दलित वर्ग सदियों से उच्च वर्ग के उपहास चुपचाप सहते आ रहे हैं।

वर्षों से दलित शोषित, प्रताडित अछूत जनता अब मूरख व जड नहीं रही उसमें भी अब चेतना आ गयी है। जिन्हें वर्षों से अस्पृश्य अछूत कहा जा रहा था, अब वे ही उन अर्थों को अस्वीकार कर रहे हैं। क्योंकि

[1] मुकेश मानस, पतंग और चरखडी, पृ. 19

उनमें चेतना जाग्रत हो गई है। वे अब किसी की दया पर नहीं जीना चाहते। समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाना चाहते हैं।

"कि शब्द अब
अछूत नहीं
अरुणा का पात्र नहीं
याचक – सा दीन नहीं
हरिजन-सा हीन नहीं
कि वह अब दलित- सा
संगठनबद्ध
बुद्ध – सा
अप्प- दीपों- भव बनाया गया है"[1]

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। इसलिए हमको आस नहीं छोडनी चाहिए कि यह वर्ग जो शताब्दियों से हर प्रकार के अत्याचार सहकर भी समाप्त नहीं हो पाया। भस्मांकुर की तरह हर युग में नया रूप लेकर अपनी चिता पर आता और बढता रहा। एक दिन निश्चय ही अपनी अस्मिता को बचाये रखेगा। समकालीन दलित कविता अपने दर्द भरे अतीत को आज के समय में रखकर विश्लेषित कर रही है।

---

[1] रमणिका गुप्ता, अब मूरख नहीं बनेंगे हम, पृ. 16

आदिवासी विमर्श

भारत अनेक जाति-जन-संप्रदायों का भण्डार है। जाति व्यवस्था भारतीय समाज व्यवस्था का प्राणतत्व है। आर्यों का भारत आगमन, आर्य अनार्यों के मध्य चला दीर्घकालीन संघर्ष, आर्यों द्वारा अनार्य आदिवासियों का क्रूर संहार और आतंक, जिसके चलते उन्हें गिरिकुहरों तथा वनों में आश्रय नहीं हैं, जिन्हें पढकर भुलाया जा सके। आदिवासी समाज ऐसा समाज है जिनके नाम में ही उसकी पहचान छिपी हुई है। आदिवासी शब्द केलिए 'मूल निवासी' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है अर्थात् आदिवासी समाज इस भूमि का मूल निवासी है और वही इस भूमि का उत्तराधिकारी भी है। आदिवासी संस्कृति की अपनी विशिष्ट पहचान है। इस के अंतर्गत जाति समानता, लिंग समानता, सहभागिता, सहयोगिता, सामूहिकता, भाईचारा एवं सब से विचित्र प्रकृति से निकटस्थ संबन्ध एवं प्रकृति से प्रेम है, जो अन्य सभी संस्कृतियों से आदिवासी संस्कृति को पृथक करता है।

आदिवासी संस्कृति में मनुष्य का जीवन बिल्कुल सादा है। इनका दृष्टिकोण उपयोगितावादी है और विचारधारा जियो और जीने दो की है। आदिवासी समाज की ज़रूरतें बिलकुल सामान्य व सीमित हैं। किंतु आज केरल में आदिवासी जनता को जीवन की मुख्यधारा की ओर लौटाने का अजस्र परिश्रम किया जा रहा है। इनकी सहायता केलिए देशीय और राष्ट्रीय स्तर पर कानून का कार्यान्वयन यथाशीघ्र होता ही रहता है। उन्हें

अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाने का कार्य भी चलता रहता है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों केलिए शिक्षा के स्तर पर आरक्षण, छात्रवृत्ति, छात्रावास आदि सुविधाएँ आज उपलब्ध हैं। नौकरी केलिए भी उन्हें कहीं- कहीं आस्पताल, चलता दवाखाना, डाक्टरों की ओर से बीच बीच में जाँच आदि का आयोजन भी होता रहता है। सरकार की तरफ से ये सब देने पर भी आदिवासी लोगों को बहुत सारी समस्याएँ भोगनी पडती हैं।

आदिवासी लोग विस्थापन की समस्या से जूझ रहे हैं। उनको मुख्यधारा में लाने केलिए जो योजनायँ बना रही हैं ये उन तक पहूँचती नहीं हैं।

"वे जो सृष्टि का केन्द्र में है मगर
बरसों से गिरे हुए हैं परिधि के बाहर

जिनका जीवन का हो रहा है व्यापार- विशाल
जो हँस रहे हैं अभावों में

खाँसी केलिए खरीदते हुए कटीली की जडें"[1]।

आदिवासियों के प्रति हमारे शासक वर्ग का बर्ताव क्रूर, निर्मम एवं भयावह है। उन्हें भारतीय नागरिक भी नहीं समझा जाता। आधुनिक विकास के नाम पर जो कुछ यहाँ चल रहा है उससे आदिवासी गण का विनाश ही हो रहा है।

---

[1] कुमार अंबुज, अतिक्रमण, पृ. 107

'एक आदिवासी गाँव से गुज़रती सडक' कविता में ज्ञानेन्द्रपति ने एक ओर आदिवासी जीवन का दु:खदर्द तथा सहज जीवन का चित्रण किया गया है तो दूसरी ओर उनके जीवन की सहजता एवं प्रकृतस्थ जीवन को तहस नहस कर डालनेवाली नयी सभ्यता के परिवेश का चित्रण हुआ है। वह सभ्यता उनकेलिए नहीं दूसरों को उन्हें दबाने एवं शोषण करने केलिए है-

"तब दिखता है
इस आदिवासी गाँव के आँगन से गुजरती हुई यह सडक
अत्याचारियों के गुजरने का रास्ता है
यहाँ इनके पैरों केलिए नहीं बना
बडे- बडे रोड- रोलर आए थे लुटेरे वाहनों के आने से पहले
धरती काँपते धीरे- धीरे चलते हुए विशालकाय रोड रोलर"[1]

विकास के नाम पर तथा आदिवासियों को मुख्य धारा में लाने के प्रयत्न के बहाने कई प्रकार से आदिवासियों का शोषण आजकल हो रहा है। इनके शोषण का मतलब है कि हमारी सहज संस्कृति का शोषण।

शोषण का और एक रूप संस्कृति के नाम पर भी हो रहा है। आदिवासी लोगों की संस्कृति के प्रचार प्रसार के वास्ते इनकी बनाई चीज़ों को सस्ते मूल्यों पर ले जा रहा है। प्रदर्शिनियों में उनकी नंगी तस्वीरें दिखाई जा रही हैं। गण्तंत्र दिवस पर दिल्ली के राजमार्ग पर पेश किए

[1] ज्ञानेन्द्रपति, संशयात्मा, पृ.20

जाते हैं । मेलों में घडा- उतार जैसी तमाशा करवाकर उनकी नादानी की खिल्ली उडाती हुई कवयित्री निर्मला पुतुल पूछ रही हैं-

"दिल्ली की गणतंत्र झांकियों में

अपनी टोली के साथ नुमाइश बनकर

कई- कई बार पेश किए गए तुम

पर गणतंत्र नाम की कोई चिडिया

कभी आकर बैठी तुम्हारे

घर की मुंडेर पर"[1]

आदिवासी की वेशभूषा, नृत्य, गान आदि को स्वतंत्रता दिवस के परेडों में नमूने के तौर पर पेश किए जाते हैं। इन दृश्यों को बडे गौरव के साथ टी. वी. चैनलों में दिखाया भी जाता है। आदिवासी को क्या करना है क्या न करना है इसका निर्णय वे खुद नहीं, बल्कि सुदूर राजधानी में बैठनेवाले राजनीति लोग ही तय करते हैं।

"यह तय है कि सबकुछ वही तय करेंगे

उन्हीं के हाथों में होगा रिमोट

जब चाहेंगे बदल देंगे

चैनल

[1] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में, पृ.14

और सबकुछ बदल जाएगा
एक झटके में हमारे चाहने न चाहने के

बावजूद
यहाँ तय है"[1]

आदिवासी परगनाओं पर राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण कभी कभी उनकी संस्कृति, भाषा, वेश भूषा आदि नष्ट हो जाती हैं। आदिवासी की बुनियादि आवश्यकताओं की पूर्त्ति जिस जंगल से होती थी, उसे पूरी तरह ध्वस्त करनेवाली राजनीति आज कल हम देखते हैं।

हर पाँच साल में आदिवासियों के दुख: दर्द को कुरेदा जाता है। समस्त भारत के सामने कई टी. वी. चैनलों द्वारा इन गरीबों की चर्चा होती है। उनकेलिए पीने का पानी से लेकर सत्ता में अधिकार दिलाने तक के झूठे वादे करते हैं। लेकिन किसी भी जनता की संस्कृति को एक बार तोडने पर वह अपना निजी स्वरूप खो बैठता है और कुछ और ही बनाया जाता है। यही स्थिति आज आदिवासियों की हो रही है।

बालविमर्श

बच्चों के प्रति संवेदनशून्यता भी समकालीन कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त की है। आज संयुक्त परिवार की जगह एकल परिवार की बढती व्यवस्था बच्चों को अक्सर अकेला कर जाती है।

---

[1] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में , पृ. 56

खासकर माँ- बाप दोनों कामकाजी हों बच्चों को बहुत जल्दी अकेले रहने की आदत डालनी पडती है। माता- पिता उस अकेलापन को महँगे तथा अत्याधुनिक खिलौने वगैरह देते हैं। वातावरण का प्रभाव बच्चों पर पडता है। आज का बच्चा ही कल का नागरिक है। यदि बचपन से ही वह निर्बाध भोग और हिंसा की घटनाएँ देखता- सुनता आ रहा हो तो उसका असर किसी- न- किसी रूप में उसपर पडेगा। बाल- उत्पीडन, बाल- हिंसा, बाल- शोषण आज के समय में चिंतनीय मुद्धा है। परिवार में असुरक्षा, समाज में असुरक्षा, बाज़ार में असुरक्षा सब तरफ असुरक्षा ही असुरक्षा है। बाल मज़दूर से मालिक अधिकतर सहानुभूति का भाव न रखकर बदसलूकी से पेश आते हैं। गाली देने, मार- पीट करने की घटनाएँ सब कहीं सुनाई पडती हैं। यौन- शोषण का हमला अलग से बचपन पर ज़ारी है। कानून तथा न्याय व्यवस्था के पास भी ऐसे संवेदनशील मुद्दे केलिए हल नहीं हैं। समकालीन कवि की दृष्टि भूख, गरीबी, अभाव झेलते बच्चों पर अन्याय तथा असमानता झेलते बच्चों पर तिरस्कृत तथा उपेक्षित बच्चों पर तो गयी है।

इब्बार रब्बी की एक कविता में आठ साल का पान सिंग साफ बोल नहीं पाता। पर वह गाँव से दिल्ली जाने को तैयार है। वहाँ क्या करेगा? कहाँ रहेगा? क्या खाएगा? कैसे जिएगा? इससे कोई मतलब नहीं मतलब सिर्फ इससे है कि -

"बस मनीऑर्डर करेगा जाते ही

..... दुनिया उठाएगा

पीठ पर"[1]

स्कूल जाने की उम्र में पीठ पर बस्ते की जगह दुनिया उठाना दमित बचपन का सच है।

स्कूल न जा सकने वाले बच्चों को स्कूल जाने का मौका मिल भी जाए तो उनकी हैसियत मंगलेश डबराल की कविता में है-

"पैदल जाने वाले बच्चों का कोई भरोसा नहीं

वे घर से जल्दी चल पडते हैं

और स्कूल पहूँचते हैं अक्सर देर से रास्ते में गंदी हो जाती हैं उनकी पोशाक

जिन्हें सँभालते हुए वे भागते हैं

आँखें नीची किये खडे होटल हैं कतार में"[2]

अनुशासन हीन होना दमित बच्चे चाहें , न चाहें, उन्हें होना ही है। पैदल जाएँगे तो लेट पहुँचेगा। गलियों- सडकों से गुज़रेंगे तो पोशाक बचाते- बचाते भी मैली होगी। स्कूल के समारोहों में वे सारे स्कूल से अलग थलग होंगे।

---

[1] इब्बार रब्बी, लोगबाग, पृ. 67,68

[2] मंगलेश डबराल, घर कारण रास्ता, पृ. 30,,31

आजकल बच्चे काम पर जा रहे है। ऐसे काम करनेवाले बच्चों को बोधिसत्व ने देखा है-

"जो जूतों की तलाश में

घूमते हैं ब्रश लेकर

और मिलते ही बिना देर लगाए

ब्रश को गज की तरह चलाने लगते हैं

जूतों पर

गोया जूते उनकी सारंगी हों

यश और मोक्ष नहीं

निस्तेज जूतों की तलाश करते हैं वे"[1]

यहाँ जूतों के माध्यम से रोटी की तलाश करने वाले बच्चों की स्थोति को व्यक्त किया है। इस प्रकार राजेश जोशी की एक कविता है 'बच्चे काम पर जा रहे हैं' इसमें उन्होंने काम की तलाश करने वाले बच्चों की स्थिति को व्यक्त किया है।

"कोहरे से ढकी सडक पर बच्चे काम पर जा रहे हैं

सुबह- सुबह

बच्चे काम पर जा रहे हैं

हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह

---

[1] बोधिसत्व, हमारा जो नदियों का संगम हैं, पृ. 33

भयनक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना

लिखा जाना चाहिए इस एक सवाल की तरह"[1]

आज न बचपन की अठखेलियाँ सहज सुलभ हैं, न उन्मुक्त हँसी। वे अभावपूर्ण ज़िन्दगी जीने केलिए अभिशप्त है-

"और ये बच्चे

केवल लँगेट पहनकर

नदी में मछलियाँ पकडते हुए

कुपोषण से

निकले हुए हैं इनके पेट

किसी किताब के

पन्ने नहीं फडफडाते इनके जीवन में

नहीं बजती किसी स्कूल की घण्टी

कोई शब्द

कोई वाक्य इन्हें रास्ता नहीं दिखाता"[2]

आज बाल- विमर्श की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है, क्योंकि आज बचपन सब तरफ से बचाने की दिशा में यूनिसेफ, देश की

---

[1] राजेश जोशी, नेपथ्य में हँसी, पृ. 23,24

[2] एकांत श्रीवास्तव , नागकेसर का देश यह, पृ.19

मानव- विकास संसाधन मंत्रालय, महिला एवं बाल विकास विभाग,आइ.सी.डी.एस आदि संस्थाओं ने अपनी भूमिका निभाई है। शिक्षा, कुपोषण, गरीबी आदि पर गंभीरता पूर्वक विचार की शुरूआत हुई।

वृद्ध समस्या

समय परिवर्तनशील है और बदलते समय के साथ मानव की मान्यताएँ भी बदलने लगती हैं। किंतु यहाँ बदलता समय जब किसी भी समाज की संस्कृति और मूल परंपराओं को प्रभावित करने लगता है और संस्कारों को ही कुचलने रौंदने लगता है। भारतीय संस्कृति में सामाजिक स्तर पर संयुक्त परिवार की बडी ही अहम भूमिका था। जिसमें दादा- दादी, नाना- नानी, काका- काकी, मामा- मामी और उनके बच्चे सब मिलकर खुशी से जी रहे थे। जिसका मुखिया समूचे परिवार का सबसे बडा व्यक्ति होता था। यहाँ परंपरा युग- युगों से चला आ रहा था। लेकिन आज वह अभिशप्त हो गया। परिवार केलिए नकारा और व्यर्थ बोझ बन गया। स्वतंत्रता के बाद विदेशी औपनिवेशिक संस्कार एवं बाज़ारीकरण के बदौलत के कारण भारत से संयुक्त परिवार प्रथा गायब हो गयी और इसके स्थान पर अणु परिवार आ गया है। परिवारों से बच्चे शिक्षित होकर विदेश जा रहे हैं और उनके पास अपने माँ- बाप की देखभाल केलिए समय भी नहीं है। उनका लक्ष्य केवल कमाओ, खाओ और मौज उठाओ तक सीमित था, जो पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण है। एक युग था जब

श्रवण्कुमार जैसे पुत्र अपने माता- पिता की सेवा में अपना जीवन तक नष्ट कर देते थे, किंतु आज उस श्रवणकुमारों ने एक नई सभ्यता, नई आश्रम पद्धति विकसित की है वह है वृद्धाश्रम पद्धति। अब कस्बों, नगरों, महानगरों में बढते हुए अनाथाश्रमों की भांति वृद्धाश्रमों की मांग निरंतर बढ रही है। आधुनिक उपभोगवादी संस्कृति में अनुपयोगी चीज़ों केलिए कोई महत्व नहीं है। वस्तु में तब्दील होती मनुष्य संवेदना ही इसका कारण है। मनुष्य से मनुष्यता का गुण तिरोहित होता जा रहा है। इसलिए हमारे यहाँ वृद्धाश्रमों की संख्या बढती जा रही है। अरुण कमल की 'ओह बेचारी कुबडी बुढिया' कविता में कुबडी बुढिया की बुढापे का चित्रण है।

"अचानक ही चल बसी
हमारी गली की कुबडी बुढिया
अभी तो कल ही बात हुई थी
जब वह कोयला तोड रही थी
आज सुबह भी मैंने उसको
नल पर पानी भरते देखा"[1]

वह बेचारी कुबडी बुढिया वर्तमान व्यवस्था के खिलाफ एक कर्मठ स्त्री के रूप में उभरकर पाठक के सामने आती है जो कोयला तोडती है , नल से पानी भरती है, दिन भर कपडे धोती है, घर धोती बुहारती है।

---

[1] अरुण कमल, अपनी केवल धार, पृ. 30

इतने पर भी वह मालिक की डाँट- फटकार सहती है, बहू- बेटे का झगडा भी सहती है और अचानक ही वह दुनिया से विदा लेती है।

इसप्रकार अरुण कमल की दूसरी कविता 'बुढापा' में बुढापे की निश्चिंतता को बताया गया हैं। अपने बुढापे में भी संघर्ष करते बादशाह खान को आदर्श पुरुष के रूप में व्यक्त किया गया है। उनकी जिजीविषा और उनके भीतर जो वात्सल्य है उसकी अभिव्यक्ति कवि ने इस प्रकार की है-

"मगर बुढापे का मतलब
खुली हवा केलिए
रोटी और शोरबे केलिए
दुनिया भर के पोते पोतियों केलिए
गिरफ्तारी जेल और पीठ पर कोडे
जुल्म के खिलाफ लडने की उम्र कभी खत्म नहीं होती
उम्र दराज़ हो तुम्हारी, चिनार देवदारू बादशाह खान
न विवशता न थकान न स्यापा
हों, तो जिन्दगी की नोक हो बुढापा" [1]

मदन कश्यप ने 'बुढिया जीवित है' कविता में एक बुडिया के ज़िन्दगी का जिक्र किया किया है-

---

[1] अरुण कमल, सबूत, पृ.32

"वह बुढिया हमेशा
अपनी झोंपडी में पडी हुई मिलती है
पता नहीं कब फरागत जाती है
कब खाती है/ क्या खाती है
इतनी धीमी आवाज़ है उसकी
कि जब बोलती है तो लगता है
पेट के भीतर से कोई नन्हाँ बच्चा
बोल रहा हो"[1]

गाँधी दर्शन का प्रभाव

गाँधीवाद महात्मागाँधी की विचार पद्धति का नाम है। महात्मागाँधी केवल भारत के नेता ही नहीं,वे एक साथ समाजसुधारक,अर्थवेत्ता, शिक्षाशास्त्री, धर्मोपदेशक और महात्मा भी थे। समकालीन जीवन का प्रत्येक पक्ष उनसे प्रभावित रहा है। समाज और शासन के संगठन तथा जीवन के अनेक पक्षों के बारे में गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित विचार स्वयं उनकी जीवन साधना का प्रतिफल है। गाँधीवाद का आधार तर्क न होकर स्वानुभूति है।

गीता का कर्मयोग, वेदों और उपनिषदों से सत्य- अहिंसा, मानव मात्र के कल्याण की भावना लेकर गाँधीजी ने समाज केलिए रामराज्य

[1] मदन कश्यप, लेकिन उदास है पृथ्वी,पृ. 28

का स्वप्न देखा। गाँधीवाद की सबसे बडी देन उसकी यह विचारधारा है। गाँधीवाद के मूल स्तंभ दो हैं-सत्य और अहिंसा। सत्य के साक्षात्कार से समबुद्धि से सबके प्रति अहिंसा का भाव उत्पन्न हो जाता है। अहिंसा में केवल द्वेष का अभाव नहीं प्रेम की सम्प्राप्ति भी है। अहिंसा के प्रति आत्मशुद्धि, अहंकार के त्याग और भगवदशक्ति से होती है।

गांधीजी के मतानुसार समाज और विश्व में चारों ओर फैल रही हिंसा का कारण केन्द्रीकृत औद्योगिक व्यवस्था है। पूंजी के एकीकरण तथा पूंजी के विकास का भी यही कारण है। इस स्थिति से बचने का एक ही उपाय है कि बडे पैमाने के उद्योगों द्वारा बनायी जायें।रोटी केलिए प्रत्येक व्यक्ति केलिए शारीरिक श्रम करना अनिवार्य है। खादी और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना अनिवार्य है। धनिक लोग आवश्यकता से अधिक धन और वस्तुओं का संग्रह न करें। अपने ऊपर निर्वाह मात्र केलिए धन खर्च करें तथा अतिरिक्त धन को समाज की धरोहर समझें और उसे सामाजिक हितों के कार्यों में लगायें। गाँधीजी के सामाजिक कार्यक्रमों ने भारतीय समाज को परिवर्तित कर दिया था। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ऐसे समाजिक क्रांति के कार्य संपन्न करके आपत्तियों और कठिनाइयों को सहन करने की सामर्थ्य प्राय: सभी वर्गों के व्यक्तियों में आ गयी थी। त्याग और बलिदान करने, कष्ट उठाने और साहस दिखाने की शक्ति से सम्पन्न उदार बौद्धिकों ने सामाजिक क्रांति की अभिलाषा से गाँधीवादी सामाजिक आदर्शों को अंगीकार किया।

समकालीन कवियों ने पीडित दलित मानवों की मूक वेदना को वाणी प्रदान करने का प्रयत्न किया। उन्होंने सामाजिक अन्याय के विरुद्ध समाज में तीव्र आक्रोश, क्षोभ की अभिव्यक्ति की और सामाजिक सुधारों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया। अधिकांश कवियों केलिए सामाजिक दुर्दशा भुक्त यथार्थ रही है। युगीन प्रेरणा से दलित जातियों के प्रश्न में उन्होंने विशेष रुचि ली है। अछूतों के प्रति सामाजिक अत्याचार के करुणा चित्र उन्होंने प्रस्तुत किए है। हरिजनोद्धार और नारी की मुक्ति की अनेक पहलुओं पर साहित्यकारों ने विचार प्रकट किए हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह एवं ग्रहस्थ के आदर्श चित्र भी सजाये गये हैं। उन्होंने पश्चिमी सभ्यता एवं शिक्षा के प्रति विरोध प्रकट किया और नशा बंदी का प्रचार किया। संक्षेप में गाँधीवादी विचारधारा के अनुसार रूढिविरोध, हरिजनोद्धार, अंग्रेज़ियत का विरोध, शिक्षा संबन्धी विचार, विवाह और गृहस्थ नारी उद्धार नशा बन्दी जैसे सामाजिक विषयों को कवियों ने अपनी कविताओं में वर्णित किया है।

सबसे पहले भवानीप्रसाद मिश्र की कविताओं में गाँधीवाद का प्रभाव देखा जा सकता है। वे प्रयोगवादी कवि हैं। गाँधी और उनके दर्शन के प्रति आकर्षित थे। 'गीत फरोश','चकित है दुख' 'अंधेरी कविताएँ' 'गाँधी पंचशती', 'बुनी हुई रस्सी' 'व्यक्तिगत' जैसे काव्यसंग्रहों में गाँधी दर्शन की गहरी छाप है। वे सक्रिय रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल हुए और जेल में भी गये। गाँधीवाद उनकेलिए सिर्फ एक वैचारिक प्रेरणा का स्रोत नहीं

था। वरन् उनकी चेतना और संवेदना का अभिन्न हिस्सा बनाया गया था। गाँधीजी ने श्रम को समस्त भौतिक मूल्यों का आधार माना और इसलिए कहा कि हर व्यक्ति को अपनी रोज़ी कमाने केलिए शारीरिक श्रम करना ही चाहिए-

"भारत नींद सभ्यता की श्रमबद्ध शब्द पर बंधी है
पिछले बरसों में देखा है, हमने गाँधी में वह स्वरूप" [1]

श्रम के महत्व के साथ साध्य और साधन दोनों अनिवार्य है। हिंसा और विद्रोह द्वारा शांति और सुख लाना संभव नहीं है। उसकेलिए अहिंसा और सत्य का मार्ग अपनाना होगा।

"हाय, तब एक ही था गोड्से
अब हज़ार
हिंसा के देश में
कहाँ अब जगह अहिंसा की
घृणा की लपटों में
कैसे बचेंगे ये फूल प्रेम के"[2]

---

[1] भवानी प्रसाद मिश्र, गाँधी प6चशती, पृ. 215

[2] एकांत श्रीवास्तव , नागकेसर का देश यह, पृ.53

उदय प्रकाश ने 'गाँधीजी' नामक कविता में गाँधीवादी आदर्शों का जिक्र किया है-

"गांधी जी
कहते थे-
'अहिंसा'
और डंडा लेकर
पैदल घूमते थे"[1]

संक्षेप में कहें तो समकालीन कविता के सामने कई चुनौतियाँ हैं। वास्तव में ये चुनौतियाँ समकालीन कविता का यथार्थ है। इस यथार्थ की अभिव्यक्ति समकालीन कविता की मुखमुद्रा है।

****

[1] उदय प्रकाश, अबूतर- कबूतर' पृ 78

लोकतत्व : स्वरूप एवं विश्लेषण

लोक शब्द का अर्थ एवं परिभाषा

लोक शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से हो रहा है। यह शब्द संस्कृत के 'लोकृ दर्शने' धातु से बना है। इसमें 'घञ्' प्रत्यय लगने से ही 'लोक' शब्द निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ है- देखना। इसका लट्लकार में अन्य पुरुष के एकवचन का रूप 'लोकते' होता है। अत: लोक शब्द का मूल अर्थ हुआ 'देखनेवाला'। इस प्रकार लोक शब्द का अभिप्राय उस सम्पूर्ण जन समुदाय से है जो किसी देश में निवास करता है उसे 'लोक' कहा जा सकता है। वास्तव में लोक शब्द से सामान्य से अतिसामान्य जन और उसका परिवेश ध्वनित होता है।

'लोक' शब्द की व्याख्या पाश्चात्य विद्वानों ने भी की है। हिन्दी का लोक शब्द अंग्रेज़ी के फोक (Folk) का हिन्दी रूपांतर है। Folk शब्द एंग्लोसेक्सन(Folc) शब्द से विकसित है। जर्मन भाषा में यह Volk रूप में प्रचलित है।

लोक शब्द का संकुचित प्रयोग आदिम संस्कृत और 'मूढ' अर्थों में और व्यापक रूप में 'लोक', 'जन' और 'ग्राम' अर्थों में होता है। वेदों में इसका उल्लेख पाया जाता है। साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद में

अनेक स्थानों में प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरुष सूक्त में लोक शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में हुआ है।

"नाभ्या आर्सादंतरिक्ष
शीष्णौ द्यौ: समवर्तत।
पद्श्यां भूमि: दिश: श्रोत्रात्

तथा लोकानकल्पथम्"॥

लोक शब्द दिव्य और पार्थिव अर्थों में भी व्यवह्रत है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्म्ण ग्रंथ तथा बृहदारण्य आदि ग्रंथों में ऐसे उदाहरण देखा जाते हैं। गीता में अतोस्मि लोके वेदे च प्रथित: पुरुषोत्तम: में भी वेद से इतर 'लोक' की सत्ता स्वीकार की गई है।

संस्कृत व्याकरण के पिता महर्षि पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी में 'लोक' तथा 'सर्वलोक' शब्दों का उल्लेख किया है तथा इनसे 'ठअ' प्रत्यय करने पर 'लौकिक' तथा 'सार्वलौकिक' शब्दों की निष्पत्ति होती है।

सर्वत्र विभाषा गो: सूत्र के वृत्तयर्थ से यह सिद्ध होता है कि वेद और लोक शब्दों का पृथक- पृथक अस्तित्व है। वररुचि के वार्तिकों में भी 'लोक' शब्द है। महाभाण्यकार पतंजलि ने लोकप्रचलित गौ:शब्द के अनेक रूपों का उल्लेख किया है।

महर्षि व्यास ने लिखा है-

"अज्ञान तिमिरांधस्य लोकस्य त विचेष्टत:

ज्ञानांजन शलाकाभिर्नेत्रोन्मीलनकारकम्"[1]

उक्त श्लोक में लोक शब्द साधारण जनता के अर्थ में ही प्रयुक्त है। 'प्रत्यक्षदर्शी लोकानां स्वदर्शी भवेन्तर'[2]का उल्लेख करनेवाले महर्षि व्यास का दृष्टिकोण है कि जो व्यक्ति लोक को स्वत: अपनी आँखों से देखता है वही उसे सम्यक् रूप से जान पडता है। भगवतगीता में लोक तथा लोक संग्रह शब्दों का व्यवहार अनेक स्थानों पर मिलता है। अशोक के शिलालेख में भी 'अनुवतंर सर्वलोक हिताय' और 'नास्ते हि कम्मतर' सर्वलोक हिताया का उल्लेख है। अमरकोश के 'लोस्तु भुवने जने' का तात्पर्य लोकस्वर्गादिलोष तथा जन से है। यों तो लोक शब्द के विभिन्न अर्थ मिलते है पर मुख्यतया दो ही अर्थ विशेष व्यवहृत है। पहला अर्थ इहलोक, परलोक अथवा त्रिलोक से संबन्धित है और दूसरा जनसामान्य से है।

आर्यों के आगमन पर आर्य तथा आर्येतर जातियों में जो सांस्कृतिक संदर्भ हुआ उसके फलस्वरूप 'वेद' तथा 'वेदेतर' संस्कृति का जन्म हुआ। इससे एक नवीन अर्थ की उद्भावना हुई अब लोक शब्द का अर्थ वेद विरोधी हो गया। इससे वेद की प्रतिष्ठा के साथ-साथ लोक स्वतंत्र

---

[1] महाभारत आ. प.1,84

[2] महाभारत, उद्योग पर्व, 43,36

महत्व भी हो गया। परंतु आज 'लोक' श्ब्द अपने संकुचित अर्थ से बहुत ऊपर उठ गया है। वह परम्परा का सहजक एवं अनुभूति की संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति का सतत् संवाहक बन गया है। उनके पास अपने शब्द अपनी भाषा, अपनी लोक ग्राही शैली भी है।

आगे चलकर हम पाते हैं कि बौद्धधर्म के प्रचार के समय 'लोक' शब्द का प्रयोग मानवीय भावनाओं से संयुक्त होकर प्रकट हुआ। यहाँ लोक शब्द साधारण जन समाज के अर्थ में व्यवह्रत हुआ। सामान्य जन जीवन की कार्यविधियों का संवाहक बनकर यह शब्द एक विराट भावना उद्घाटक बनाया इसलिए लोक शब्द का संकुचित अर्थ जो स्थल विशेष के रूप में सम्मुख था उससे इसका विस्तार हुआ और मानवमात्र के भावों का केन्द्र स्थल बनकर महात्म रूप में स्थापित हुआ। प्राकृत और अपभ्रंश ग्रंथों के भी लोकजत्ता, लोक उपावाय शब्द इसी की ओर इंगित करते है।

जैसा हम कह चुके हैं को लोक शब्द अपने दो अर्थों में स्थान और साधारण जन समाज में व्यवह्रत है, जो समाज से अलग होकर जीवन बितानेवाले लोग हैं। इसे गाँव या जनपद तक सीमित नहीं किया जा सकता। बल्कि आज लोक गाँवों में रहते हैं, और शहरों में भी। वह अपनी आजीविका चलाने केलिए नगरों और महानगरों की ओर चलने लगे। इन महानगरों में उन्होंने अपना एक जनपद तैयार कर लिया है। लेकिन वह जनपद तैयार कर लिया है। लेकिन वह जनपद आम आदमी की जीवन रीति का होता है। जो किसी न किसी रूप में अपने जीवन के इर्दगिर्द छाए

तमाम विश्वासों, प्रथाओं एवं रीति- रिवाज़ों के प्रति आस्थावान् रहकर अपने लोकाचारों को जीवन देता रहा है, भले ही वह नागरिक शिक्षितों की दृष्टि में अनपढ और अर्द्धसभ्य माना जाता है। लेकिन इन लोगों ने अपनी मौलिक परम्परा के माध्यम से अपनी चिरसंचित ज्ञानराशि को सुरक्षित रखा है।प्रदेश चाहे जो भी हो, अभिव्यक्ति की भाषा भी भिन्न हो लेकिन उसके लौकिक आचारों की आत्मा अक्षुण्ण रही है।

परिभाषा

डॉ सत्येन्द्र ने लोक शब्द की परिभाषा देते हुए स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है कि-"लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना, पाण्डित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।[1] लोकसाहित्य के मर्मज्ञ डॉ सत्येन्द्र की उपर्युक्त परिभाषा अधिक सार्थक प्रतीत होती है। क्योंकि लोक में एक दृष्टि प्रधान है लोक एक ऐसा समुदाय है जो आधुनिक सभ्यता एवं शिक्षा से वंचित होते हुए प्राचीन विश्वासों तथा अनुष्ठानों को सुरक्षित रखे हुए हैं।

डॉ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक शब्द का प्रयोग जनसामान्य के अर्थ पर बल देते हुए कहा है- "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत

[1] हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल, वारणासी, पृ. 685-86

जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने केलिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उन्हें उत्पन्न करते हैं"[1]

श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी ने लोक की व्याख्या करते हुए लिखा है- "लोक का तात्पर्य सर्व साधारण जनता है तथा दीन- हीन, दलित, शोषित, पतित, पीडित लोग और जंगली जातियाँ- कोल, भील, संथाल, गोंड, नाग, शक,हूण, किरात, पुक्कर, यवन, खस इत्यादि सभी लोक समुदाय मिलकर लोक संज्ञा को प्राप्त होता है"[2]।

लोक शब्द पर विचार करते हुए डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है- "लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव केलिए लोक सर्वोच्य प्रजापति है। लोक की धात्री सर्वभूतमाता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक – पृथ्वी-मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।

---

[1] डॉ. श्रीरामशर्मा, लोकसाहित्य सिद्धांत और प्रयोग, पृ. 4

[2] सम्मेलन पत्रिका, लोकसंस्कृति अंक, पृ. 112

डॉ. रवीन्द्र भ्रमर की दृष्टि में, "लोक शब्द के प्रचलित अर्थ दो है- एक जो विश्व अथवा समाज और दूसरा जनसामान्य अथवा जनसाधारण। साहित्य और संस्कृति के एक विशिष्ट भेद की ओर इंगित करनेवाले एक आधुनिक विशेषण के रूप में इस शब्द का अर्थ ग्राम्य या जनपदीय समझा जाता है किंतु इस दृष्टि से केवल गाँवों में ही नहीं वरन् नगरों, जंगलों, पहाडों और टापुओं में बसा हुआ वह मानव समाज जो अपने परम्परा प्रथित रीति-रिवाज़ों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने के कारण अशिक्षित अल्प सभ्य कहा जाता है, लोक का प्रतिनिधित्व करता है"[1]।

आचार्य डॉ नन्दलाल कल्ला के माता में, "लोक विशद, व्यापक, विराट, विस्तृत सर्वव्यापक, सर्वकालिक, सर्वदेशिक तथा परम्परानुमोदित मानसिकता है जो किसी शास्त्रीय अथवा आभिजात्य संस्कारों तथा पाण्डित्य की लक्षमणरेखा में बद्ध नहीं है लोक अनलंकृत है,अकृत्रिम है इसलिए पुरातन होते हुए भी चिर नवीन रहता है। स्वाभाविकता इसकी पहचान है, सहजोद्रेकता इसका धर्म है और सरलता इसका स्वभाव और सर्व भवंतु सुखिन: का संकल्प इसकी आत्मा है"[2]।

समकालीन कवि आलोचक विजेन्द्र लोक का अर्थ सर्वहारा ग्रामीण भी हो सकता है, शहरी भी। वे लिखते हैं- "लोक यानि सामान्य, अति

---

[1] डॉ रवीन्द्र भ्रमर, हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व, पृ. 3

[2] डॉ नन्दलाल कल्ला, हिन्दी का प्रादेशिक लोक साहित्य शास्त्र, पृ. 188-189

सामान्य। सौंन्दर्यशास्त्र की भाषा में कहें तो अपने श्रम पर आश्रित सर्वहारा और उसका पूरा परिवेश और प्रकृति ..... आज के लोकतंत्र की प्रमुख अंतर्वस्तु यही लोक है....लोक को सामान्य या सर्वहारा का पर्याय मान लेने के बाद उसे गाँव और शहर में बाँटकर देखना उचित नहीं"[1]।

जीवनसिंह के अनुसार "लोक श्रम से उत्पन्न सामूहिक मूल्य व्यवस्था व अनुभूति का नाम है। यहाँ जब तक समाज में रहेगा तब तक लोक जीवित स्पंदित एवं प्राणवंत रहेगा। 'लोक' किसी रूढ संज्ञा का नाम नहीं । वह एक समय के अनुभव और ज्ञान से निर्मित शास्त्र की रूढियों को तोडता हुआ, अपने समय की नई राह खोलता है, यही बात उसके जीवित होने का प्रमाण है"[2]। साहित्य में लोक का अस्तित्व सामाजिक सच को प्रतिपादित करता है। इसीसे समाज में क्रियाशीलता लोक का प्राणतत्व है।

पीयूष दईया ने लोक को व्यापक परिवेश में परिभाषित किया है। "लोक पूरे देश की धरती से जुडा हुआ जन समुदाय है। लोक भोला और सरल होता है। वह विश्वास चालित होता है। उसकी मर्यादाओं जटिल विधानों पर नहीं, प्रेम और विश्वासों पर आधृत होती हैं। प्रकृति के साथ उसका नित्य संबन्ध है। वह उसके जीवन का अंग है। ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, पशु- पक्षी, वृक्ष, लता, नदी, सरोवर सभी उसके अपने है"[3]।

---

[1] उद्भावना, जुलाई- अगस्त2009 पृ. 532

[2] जीवनसिंह, कविता और कवि कर्म, पृ.16

[3] पीयूष दईया,लोक, पृ. 385

लोकतत्व के विभिन्न पहलू

लोक शब्द पर विचार करने के पश्चात् लोकतत्व को स्पष्ट करना अनिवार्य है। सामान्यत: किसी पदार्थ को अस्तित्व में लाने वाले और उसकी उत्पत्ति के मूल कारण को तत्व कहा जाता है। लोकतत्व वस्तुत: उन परम्पराओं के सूत्र हैं जो कि प्रत्येक मानव हृदय में स्वाभाविक रूप से अनुस्यूत रहते हैं। असंस्कृत मनुष्यों में सहज और स्पष्ट रूप से और तथाकथित अभिजात्य वर्ग के मनों की गहराइयों में वो दिखाई देते हैं। लोक की परिभाषा देते समय डॉ सत्येन्द्र ने बताया है कि "लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे लोकतत्व कहलाते है"[1]।

लोकतत्व शब्द की अर्थ- सीमा काफी विस्तृत है। इसके अंतर्गत उन समस्त आचार विचारों, रूढियों तथा संस्कारों की सम्पत्ति आ जाती है, जिनके द्वारा स्वत: ही मानव का पारम्परिक रूप प्रत्यक्ष हो उठता है और जिनके स्रोत लोकमानस है जिनमें परिमार्जन अथवा संस्कृति की चेतना उपेक्षित नहीं होती।

लोकतत्व ग्रामीण या नागरी संस्कृति की सीमा के परे प्रत्येक मानव ह्रदय में छिपे वे संस्कार हैं, जो अशिक्षित मनुष्यों में सहज एवं स्पष्ट रूप से और तथा- कथित आभिजात्य वर्ग के मनों की गहराइयों में अनुस्यूत रहते हैं तथा इनकी उपस्थिति से लोकजीवन का परिचय मिलता है। लोकजीवन की अभिव्यक्ति ही लोकतत्व है। लोकतत्व पर प्रकाश

[1] हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल, पृ.685-86

डालते हुए हिन्दी साहित्य कोश में लिखा गया है- "लोक मानुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, वे लोकतत्व कहलाते हैं। लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, रीति- रिवाज़, संस्कार, सूक्तियाँ, सुभाषित, लोकनृत्य, लोकनाट्य, लोकविश्वास, लोकधर्म जैसे विभिन्न पक्ष लोकतत्व में निहित है। आगे हम उस पर विस्तार से विचार करेंगे।

लोकसंस्कृति

संस्कृति मानवीय इतिहास की संरक्षिका और संवाहिका होती है, जो मानव के जीवन के सभी पक्षों को अपने परिवेश में समाहित कर लेती है। समाज की समग्र जीवन शैली और उसकी आत्मा संस्कृति ही होती है। याने संस्कृति किसी राष्ट्र की चेतना होती है, किसी समाज की समग्र जीवन शैली और उसकी आत्मा भी होती है। संस्कृति के साथ 'लोक' शब्द जोडने से 'लोक संस्कृति' श्ब्द बनाया जाता है। 'लोक संस्कृति' शब्द अंग्रेज़ी के 'फोक कल्चर' (folk culture) का हिन्दी रूपान्तर है। लोक संस्कृति से हमारा अभिप्राय जन साधारण की उस संस्कृति से है, जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी, जिसकी उत्सभूमि जनता थी और जो बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर उपस्थित थी। अत: लोकसंस्कृति

शब्द लोक की सम्पूर्ण संवेदनाओं का प्रतिनिधि है। लोकसंस्कृति हमारी जीवन शक्ति है। इसके प्रति लोक की अटूट आस्था, अटूट विश्वास और अटूट जुडाव होने के कारण यह परंपराशील है। लोकसंस्कृति में लोक और संस्कृति एक दूसरे के पूरक रूप में प्रयुक्त हुए है।

लोकसंस्कृति व्यक्ति का आंतरिक संस्कृति है। यह संस्कार व्यक्ति को अधिकाधिक आनंद से जीने की इच्छा शक्ति प्रदान करता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके मध्य जीने और रहने वाला व्यक्ति भूमि को पूजता है, उससे प्रेम करता है, उसके पेड- पौधों, पशु- पक्षियों, नदी-पहाडों को चाहता है, उनका वंदना करता है और उनकी सुरक्षा केलिए निरंतर चिंतित रहता है।

लोक संस्कृति में मानव जीवन के मूल्यों की निरंतर सुरक्षा होती है, जबकि सभ्य समाज मानव जीवन के आदर्श, सिद्धांतों और मूल्यों के प्रति उदासीन हो जाती है। इस वर्ग में व्याप्त स्वार्थमूलक महत्वाकांक्षा जीवन आदर्शों को एक ही झटके में तोड फेंकने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करती। लोक संस्कृति में निहित जीवन आदर्श ही एक विस्तृत समाज को प्रेरित कर उसे अधिक मानवीय बनाकर सामाजिक संयम में उल्लेखनीय सहयोग प्रदान करते हैं। त्याग, तपस्या, कर्म संस्कृति ,क्षमा, परोपकार, आस्था आदि जीवन मूल्य लोकसंस्कृति में पोषित होते रहते हैं। इसके विपरीत सभ्य समाज इन मूल्यों का हनन करता है। वास्तव में सभ्य

समाज लोकसंस्कृति का ही एक विकसित, परिमार्जित रूप होता है। सभ्य समाज लोकसंस्कृति से सारतत्व ग्रहण कर आगे बढती है।

भारतीय लोकसंस्कृति में व्याप्त रीति- रिवाज़ों, व्रतोत्सवों, पर्व-त्योहारों, आस्था- विश्वासों आदि में जो सूक्ष्म वैज्ञानिकता व्याप्त है इसका मूल कारण यही है कि भारतीय मनीषा लोक संस्कृति के अधिक निकट रही है तथा उसने लोकजीवन को उपजीव्य बनाकर लोक संस्कृति में ऐसे बीज बोये हैं जो भारतीय समाज का निरंतर पोषण एवं कल्याणकारी संवर्धन करते रहे हैं। इसलिए लोकसंस्कृति का ऐकांतिक महत्व सभी केलिए आकर्षण का विषय रहा है। यह तत्व लोकसंस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण देन है।

प्रारम्भ से लेकर अब तक का समाज लोक परम्परा का वाहक रहा है। वह मौखिक रूप से एक दूसरे को अंतरित की जाती है और प्रत्यक्ष रूप से पुस्तकों पर आधारित नहीं होती उसका ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर विकसित होता है। जन संस्कृति के तत्व लोक संस्कृति में आते रहते हैं, तथा लोकसंस्कृति के तत्व आभिजात्य संस्कृति में संक्रमण करते रहते हैं। लोक संस्कृति में धर्म, तत्व- मीमांसा साहित्य और संगति आदि का ज्ञान प्राप्त करने केलिए व्यक्ति को विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं पडती। इनसे संबन्धित गतिविधियों में भाग लेते हुए व्यक्ति इन्हें स्वत: ही सीख लेता हैं, समूह नृत्य आदि में भाग लेने वाले स्वयं ही गीत रचना और गायन करते हैं। कलाकार और दर्शक वे स्वयं ही होते हैं।

लोकसंस्कृति में ज्ञान और कला के क्षेत्र में व्यवसायीकरण की बहुत कम संभावना रहती है। इसका मूलभूत कारण लोकसंस्कृति की अंत:चेतना में ही निहित हैं, क्योंकि उनका गायन, वादन और नृत्य या अन्य कोई अनुष्ठान जीवन की क्लांति का हरण कर आनंद के स्रोत का वरण करता है।

आज भारतीय समाज भारत की लोक संस्कृति के मेरुदण्ड- रूप, लोक- रीतियों, रिवाज़ों, पर्व- त्योहारों, उत्सवों एवं गीत संगीत आदि को निरर्थक समझकर या उन्हें मात्र ग्रामीणों के मनोरंजन का साधन समझकर उपेक्षा कर रहा है। यहाँ तक कि उनमें वह मानसिक रूप से भाग भी नहीं ले पा रहा है। आज भारतीय समाज पर्व,त्योहार एवं व्रतोत्सवों की मात्र औपचारिकता से पूरी करता है। साथ ही अपने- अपने अहं की प्रवृत्ति ने उसमें भौतिकता की चकाचौंध और आडंबरों की वृद्धि कर दी है। लोक संस्कृति का परिवेश नैसर्गिक परिवेश है। उसकी संरचना और संस्कारशीलता को उसकी अपनी आधारशिला, आत्मीयता, अंतश्चेतना तथा ऊर्जा में प्रकाशवान होने देना ही उसकी असलियत तथा मूल एकरूप का संरक्षण है। बदलते परिवेश में उसकी नैसर्गिकता को खोकर हमने उसके प्रति ज़्यादती ही की है। उसे विविध सेमिनारों, संगोष्ठियों और कार्यशालाओं में ढालकर तथा शिक्षण प्रशिक्षण शिविर आयोजित कर प्रयोगधर्मी बनाने में कोई कसर नहीं रखी।

लोकसंस्कृति पर आधुनिकता का प्रभाव हो रहा है। विकास की प्रक्रिया हो रही है। गाँवों का भी नगरीकरण हो रहा है। वहाँ के जीवन से वे सारे सामाजिक- सांस्कृतिक मूल्य नष्ट हो रहे हैं, जो अपने माध्यम से लोक संस्कृति को जीवित रखे हुए थे। यंत्रीकरण और औद्योगिकरण ने गाँवों को काया-पलट कर दिया है। याने ग्रामीण क्षेत्रों में नगरों से अधिक समस्याएँ जन्म ले रही हैं। भारतीय गाँवों का भटकाव महानगरों के भटकाव से अधिक भयंकर है। नगरों में तो अपरिचित ही अपरिचित है। जबकि भारत के गाँवों में परिचित ही अपरिचित हो रहे हैं। यहाँ समूह चेतना एवं भाईचारे का भाव अब कम दिखाई पडता है। इस संदर्भ में लोक मंगल की संरक्षिका और उसके उत्स को सिंचित करनेवाली लोकसंस्कृति को सुदृढ करने, उसके पुनर्जागरण एवं पुन: प्रतिष्ठापन की आवश्यकता है, ताकि उन समस्याओं को सम्यक् निदान और समाधान हो सके, जिनका उद्भव लोक संस्कृति की उपेक्षा के कारण भारतीय समाज में व्याप्त होता जा रहा है।

लोकजीवन

किसी देश की सांस्कृतिक चेतना का ज्ञान प्राप्त करने केलिए वहाँ के लोकजीवन का अध्ययन करना आवश्यक है। युग युग का जनजीवन इसमें परिलक्षित होता है। लोकजीवन आदिम मनोवृत्तियों के अवशेषों से प्राचीन परम्पराओं, विश्वासों, प्रथाओं से अभिभूत रहता है। इसलिए

लोकतत्व के अंतर्गत रीति-रिवाज़, त्योहार, पूजा, अनुष्ठान, व्रत, जादू-टोना, टोहके भूत प्रेत संबन्धी सभी विश्वास आ जाते हैं। किसी विशेष अंचल की स्थानीय लोकसंस्कृति उस अंचल को लोकमानस के आधार पर ही संघटित होती है और लोक की चेतना सदैव समाज की परम्परा और परिस्थितियों पर आधारित होती है।

लोकसाहित्य में सामाजिक जीवन का सहज सुर स्वाभाविक चित्र देखने को मिलता है। भारतीय समाज की यथार्थ स्थिति का परिज्ञान लोकसाहित्य से ही प्राप्त होता है। भारत में मानव जीवन को सोलह संस्कारों से संस्कृत करने का विधान प्रारम्भ से चला आ रहा है। इन संस्कारों में तीन संस्कार- जन्म, विवाह,मृत्यु प्रमुख है। इनमें प्रथम दो तो आनन्द के अवसर है,और अंतिम शोक का। लोकसाहित्य में संस्कारों से संबन्धित अनेक लोकगीत उपलब्ध होते हैं और इनके साथ ही साथ इन संस्कारों पर किए गए लोकाचारों तथा अनुष्ठानों का विधिवत उल्लेख भी हमें मिलता है। हमारा भारतीय समाज संयुक्त परिवारों का एक आदर्श उदाहरण रहा है। माता- पुत्री, पिता-पुत्र, भाई- बहन, सास- बहन, सास-बहू, नन्द- भावज, पति-पत्नी के परस्पर मधुर तथा कटु संबन्धों की झाँकी हमें लोकसाहित्य में देखने को मिलती है। पती- पत्नी तथा भाई बहन का जैसा आदर्श प्रेम भारतीय समाज में देखने को मिलता है वैसा अन्य समाज में दुर्लभ है। माता- पुत्री तथा भाई- बहन का विशुद्ध, सात्विक एवं दिव्य प्रेम का वर्णन लोकसाहित्य में उपलब्ध होता है। सास के बहू पर

अत्याचार, ननद के ताने सौत का डाट आदि परस्पर के अरुचिकर सम्बन्धों पर भी प्राकाश पडता है। इसके अतिरिक्त ननद- भावज, देवर- भाभी, स्वसुर- बहु आदि के संबन्ध भी लोकसाहित्य में अनमोल विवाहों का भी चित्र प्रस्तुत किया गया है। बालविवाह, वृद्ध विवाह, पर्दा- प्रथा आदि पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

लोकसाहित्य में आर्थिक एवं राजनैतिक समस्याओं का चित्रण भी किया गया है जिनका लोकजीवन से शाश्वत सम्बन्ध है। ग्रामीण जीवन की श्री समृद्धि के साथ- साथ वहाँ की दीनता, निर्धनता तथा हीनता का चित्रण मिलता है।

रीति रिवाज़

लोकजीवन में रीति- रिवाज़ों की प्रमुख भूमिका होती है। मनुष्य का जीवन क्रम सदा समाज प्रचलित नियमों, प्रथाओं एवं परम्पराओं में बँधा हुआ चलता है। जिन्हें रीति- रिवाज़ की संज्ञा देते हैं। यदि मनुष्य इनसे दूर रहकर जीवन जीना भी चाहे तो उसकेलिए ऐसा करना संभव नहीं है। क्योंकि मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्यु तक की अवधि में पारिवारिक जीवन से लेकर समस्त लोक जीवन तक की व्यावाहारिकताओं में अनेक संस्कारों, आचारों तथा विधि विधानों से सम्पर्क जोडकर चलना पडता है,बिना उसके हमारा कोई सामाजिक अस्तित्व ही नहीं है। ये रीति- रिवाज़ हमें नियमानुकूल जीवन यापन के मार्ग प्रशस्त करते हैं। किसी भी देश के सामाजिक रीति- रिवाज़ ही उसके

आभ्यंतरिक जीवन दर्शन के प्रमाण होते हैं। लोकसाहित्य में साधारण ग्रामीण समाज का खानपान,रहनसहन तथा रीतिरिवाज़ इत्यादि का परिचय मिलता है। रहनसहन का वर्णन इसलिए आवशयक है कि हमारा जिन लोगों के बारे में इतना वर्णन कर जाते हैं उनके व्यक्तित्व का जब तक एक चित्र पाठक के सामने न हो तो पाठक अपने ढंग से हो सकता है, पता नहीं कैसे व्यक्तित्व की कल्पना ले, इस कारण हमारी सभ्यता का सही चित्र उनके समक्ष प्रस्तुत न हो सकेगा।

लोककला

लोककला आदिकाल से लोकजीवन का अभिन्न अंग रही है। इसका सदा से सामूहिक सृजन होता रहा है। लेकिन विगत वर्षों में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप लोककला और लोकजीवन के मध्य पृथकता उत्पन्न होने लगी है। मनुष्य द्वारा किये जानेवाली सभी क्रियाएँ जिनमें सौंन्दर्य अनुभूति और लोकमंगल की भावना है, वो कल की श्रेणी में आते हैं।इस जगत की सृष्टि की रचना ईश्वर की सर्वोत्तम कलाकृति है। एक तरह से कहें तो हर मनुष्य कलाकार होता है। उसके अंतर्मन में कला का रूप सुप्तावस्था में निवास करता है। अवसर मिलते ही वह कला उसके भीतर से उत्स्फूर्त रूप से बाहर आती है और आकार लेती है।

लोकजीवन में कला का जो स्वरूप होता है उसमें मात्र सौन्दर्यानुभूति नहीं होती वरन् उसका सम्बन्ध जनजीवन और विश्वासों से

होता है। इस प्रकार की कला का कोई भी रूप मनोरंजन तथा साजोसज्जा केलिए निर्मित नहीं किया जाता वरन् वह उन सभी लोकानुष्ठानों का अंग होता है जिसमें जादू- टोना, तंत्र- मंत्र तथा धर्म का आश्चर्यजनक मिश्रण होता है।

भारतीय संदर्भ में अधिकांश लोक कलाएँ जीवन के विविध संस्कारों, तिथि, त्योहारों आदि से जुडी हुई हैं। इन अवसरों पर ज़मीन में अथवा दीवारों पर मांगलिक प्रतीक चित्रित किये जाते हैं। जिन केलिए पिसा हुआ चावल गेहूँ का आटा सूखे रंग रोली, हल्दी आदि से काम चल जाता है। उपनयन एवं विवाह संस्कारों के समय स्त्रियाँ इस सामग्री से फूल, पत्तियाँ, लताएँ आदि दीवारों पर अंकित करती हैं। शंख,आम्रपत्र, कलश, सूर्य, चन्द्र, स्वस्तिक मछली, हाथी आदि के मांगलिक प्रतीक इन अवसरों पर उकेरे जाते हैं। लोककला को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है।

भित्ति चित्र

विवाह, पुत्र जन्म, पर्व तथा त्योहारों तथा अन्य शुभ अवसरों पर स्त्रियाँ भाँति- भाँति के चित्र दीवारों पर अंकित करती हैं। प्राय: दीवार को गोबर से लीप कर पिसे हुए चावलों एवं हल्दी द्वारा यह चित्र बनाये जाते हैं। यह चित्र लोकविश्वास तथा लोकमनोवृत्तियों पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। भित्ति चित्रों केलिए बिहार का मधुबनी क्षेत्र बडा प्रसिद्ध है। वहाँ की स्त्रियाँ सींकों से दीवारों पर सुन्दर रंग- बिरंगे चित्र बनाती हैं। अन्यत्र षष्ठी

पूजा, नाग पंचमी आदि के अवसरों पर तत्सम्बन्धी देवी देवताओं के रंग-बिरंगे चित्र दीवारों पर बनाए जाते हैं।

वस्त्र निर्माण कला

आदिम युग से निकलकर मानव ने सर्वप्रथम अपने नग्न शरीर को ढक्कर स्वयं को सभ्यता से आवेष्ठित किया।उसका यह प्रथम प्रयास ही सभ्यता का प्रथम चरण है। इस वस्त्र निर्माण की कला को लोगों ने अत्यंत पवित्र तथा प्रशंसनीय दृष्टि से देखा है।

चित्रकला

चित्रकला के विविध रूप अनुष्ठानिक प्रथाओं से जुडे रहने के कारण उसमें प्राचीन धार्मिक मान्यताओं को प्रस्तुत करते हैं। बंगाल की लोक कला अल्पना गुजरात की राँगोली, राजस्थान की माँडना जैसे प्रमुख हैं। चित्रकला की अभिव्यक्ति रंगों के द्वारा होती है।

नृत्यकला

भावों के अनुरूप शरीर के अंगों का तालबद्ध संचालन करना ही नृत्य कहलाता है।नृत्यकला दो हैं-शास्त्रीय नृत्य और लोकनृत्य। शास्त्रीय नृत्य किसी विशेषज्ञ के पास से सीखना पडता है। जबकि लोकनृत्य परम्परागत संस्कृति के अनुरूप सहज ही सीखा जा सकता है। लोकनृत्य में शास्त्रीय ताल बद्धता नहीं होती। किसी पर्व, उत्सव या विवाह आदि संस्कारों के अवसर पर ढोल,मृदंग तथा करताल के ताल पर जो नृत्य किये

जाते हैं उन्हें लोकनृत्य में स्थान दिया जाता है। भारत विविध प्रांतों, भाषाओं, संप्रदायों एवं जातियों में बँटा देश है। इसलिए हर एक प्रांत की हर एक जाति की अपनी अलग विशेषता रही है। जैसे आसाम में सम्मुख नाग नृत्य किया जाता है। इसके अलावा कुर्की खडग नृत्य, रण नृत्य आदि करते हैं। बिहार और उडीसा के संथालों के विवाह नृत्य, संपत्ति कलह नृत्य आदि प्रसिद्ध है। मध्यप्रदेश के भील नृत्य, वीर अथवा रण नृत्य प्रसिद्ध है। उत्तर प्रदेश की अहीर, कहार, धोबी, चमार आदि जातियों में अनेक सामूहिक लोकनृत्य प्रचलित है। लखनऊ का भाँड नृत्य और मथुरा का रास नृत्य प्रसिद्ध है। गुजरात का नृत्य गरबा कहलाता है। दक्षिण भारत के लोक नृत्य प्राय: धार्मिक कृत्यों से संबन्धित होते हैं। जिसमें घट नृत्य प्रसिद्ध है। इसके अलावा कुछ भयानक नृत्य भी किये जाते हैं, जिसे पिशाच नृत्य कहते हैं। इन नृत्यों के अलावा होली, वसंत,बैसाखी जैसे विविध ऋतु- उत्सवों पर भी नृत्य किये जाते हैं, जिसे लोक नृत्य में स्थान दिया जाता है।

लोककलाओं का दूसरा रूप मूर्तियों के रूप प्राप्त होता है। ये मूर्तियाँ पौराणिक देवी- देवताओं, तथा विशिष्ट नारी-पुरुषों से सम्बन्ध रखती हैं। राजस्थान में केसरिया कँवर जी के रूप में नाग देवता की जो प्रतिमाएँ बनी हैं,उनमें नाग देवता कुंडलिनी के आकार में प्रस्तुत होते हैं।

लोकदेवता भैरव, खेतपाल तथा भूमियाँ की प्रतिमाएँ तो गाँव-गाँव में मिलती हैं। देवता प्राय: जामा पहने हुए दिखाए जाते हैं। उनके

एक हाथ में भाला अथवा तलवार और दूसरे में ढाल प्रदर्शित की जाती है। विशिष्ट प्रतिमाओं में सती स्तंभों पर उनके पतियों की अश्वारूढ प्रतिमा रहती है।

मूर्तियों में स्थान- स्थान पर बनने वाली पशु-पक्षियों, देवी-देवताओं तथा अन्य मानव आकृतियों को लिया जा सकता है जो मेलों, पर्वों और त्योहारों के समय बेची जाती हैं। इनके अतिरिकत लोककलाओं में कर्शादाकारी और बुनाई केलिए काश्मीर के लोक कलाकार प्रसिद्ध हैं तो वस्त्रों की रँगाई और छपाई केलिए मारवाड के स्त्री पुरुष प्रसिद्ध हैं। वहाँ तोरण बनाने, घागरा काढने, ओढनी टाँकने आदि स्त्रियों की लोक कला का प्रदर्शन होता है।

सभी प्रकार की लोक कलाओं में त्रिकोण, चतुष्कोण, स्वस्तिक, बिन्दु, वृत्त, कलश जैसे प्रतीकों का बहुल प्रयोग मिलता है जो भारतीय लोक संस्कृति के प्रमुख तत्व हैं। ये विविध लोक कलाएँ भारतीय लोकजीवन का साक्षात् दर्पण हैं, यद्यपि अभी इनकी पर्याप्त छानबीन नहीं हुई है।

लोककथा

लोककथाएँ लोकसंस्कृति की संरक्षिका है। इनमें एक ओर लोक मानस विविध रूपों में प्रतिबिम्बि होता है और दूसरी ओर लोकसंस्कृति के समस्त उपकरण मुखरित हुए हैं। वस्तुत: किसी प्रदेश की सांस्कृतिक चेतना के अध्यनार्थ लोक कथाओं का अनुशीलन अनिवार्य माना गया है। अत: लोक कथा लोक साहित्य का एक प्रमुख अंग है।

जब से मनुष्य इस पृथ्वी पर जन्म हुआ है तभी से कहानी का भी जन्म हुआ होगा। आदिम युग से ही मानव मेनेजर ने अपनी विचित्र अनुभूतियों को कथा का रूप प्रदान किया और इन कथाओं के माध्यम से ही वह अपने अपरिपक्व और अस्पष्ट जीवन दर्शन को अभिव्यक्त करने लगा। इस प्रकार मानव की सृष्टि के साथ ही सहज और स्वाभाविक रूप से लोक कथा का प्रादुर्भाव हुआ। उद्भव के समय लोककथा यथार्थ पर आधारित थी। इसमें प्रत्यक्ष वर्णन था। यह लोककथा का बीज रूप था। धीरे- धीरे इसका विस्तार होता गया।

लोक कथा की विशिष्टता यह है कि यह परम्परागत होती है। क्रमागत होने के कारण लोक कथा क्रमश: एक मानव से दूसरे मानव को उपलब्ध होती है, फलत: इसमें मौलिकता का अभाव रहता है। परम्परा विशुद्ध रूप में मौखिक भी हो सकती है। लोक कहानी सुनी जाती है तथा बार-बार दुहराई जाती है। कभी- कभी कंठस्थ की गई लोक कथा में नूतन कथक्कड के द्वारा कुछ परिवर्द्धन एवं परिवर्तन भी कर दिए जाते है। लोककथा की परिभाषा देते हुए डॉ सत्येन्द्र ने लिखा है- "लोक में प्रचलित और परम्परा से चली आनेवाली मूलत: मौखिक रूप में प्रचलित कहानियाँ लोककहानियाँ कहलाती हैं"[1]।

भारतीय लोककथाओं की परम्परा बहुत प्राचीन है। ऋग्वेद के 'संवाद सूक्त' इसके उद्गम स्थल कहा जा सकता है। वेदों के पश्चात ब्राह्मण

[1] हिन्दी साहित्य कोश(भाग-1), पृ.748

ग्रंथों और उपनिषदों में भी कहानियाँ मिलती हैं। वैसे तो हितोपदेश, बृहत्कथा, कथा सरितासागर, जातक, पउम- चरित्र आदि अनेक ग्रंथ भारतीय कहानियों के आधार माने जाते हैं, पर पंचतंत्र सबसे सशक्त प्रेरणास्रोत है। इसप्रकार सभ्यता और संस्कृति के निवास में लोककथाओं का विशिष्ट स्थान है। आंचलिक क्षेत्रों में ये आज भी अत्यंत लोकप्रिय हैं। वर्षों पूर्व जब मनोरंजन का साधन नहीं थे तो लोककथाएँ ही मनोरंजन का प्रमुख साधन थी। रात्रि के समय माताएँ अपने नन्हें मुन्नों को सुन्दर कहानियाँ सुनाती थीं। बच्चे कौतूहल से भरकर मन में अनूठी उमंग लिए बडे ध्यान से कहानी सुनते थे। हुंकारी भरते- भरते सो जाते थे।

इन कहानियों में जीवन के नैतिक मूल्य आज भी सुरक्षित है। व्यक्ति को सुन्दर संस्कार मिलते हैं। सदपथ बढते हुए अन्याय पर न्याय की विजय और जीवन के न्योचित मूल्यों की तलाश: ही उनका उद्देश्य है। इन लोककथाओं के मध्यम से ज्ञानवर्धन होता है। अतीत की जानकारी मिलती है और मानव स्वयं भी भावपवण, संवेदनशील और कल्पनाजीवी हो जाता है। ये बौद्धिक विकास में सहायक होती है। विषम परिस्थितियों में भी साहस से जूझने की शिक्षा देती हैं। जीवन के आदर्श मूल्यों से अवगत कराती है और लोकमंगल की भावना का बीजारोपण करती है। प्रगति को पथ पर बढते हुए मानव इन कहानियों से प्रेरणा प्राप्त करता है। इनके पात्र आदर्श बनकर आते हैं। लोककथाओं को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया है- धार्मिक कथायें, राजा- रानी संबन्धी कथाएँ,

पशु- पक्षी संबन्धी कथाएँ, नीति या उपदेशात्मक कथाएँ, बालकथाएँ, अलौकिक कथाएँ आदि।

धार्मिक कथाएँ

भारतीय संस्कृति आध्यात्मप्रधान हैं। अत: धर्मभीरू लोगों को देवी देवताओं के प्रति अटूट श्रद्धालू बनाने में सहायक होती हैं। इन कथाओं में ईश्वर की महत्ता, उसका न्याय तथा विभिन्न रूपों में करुण होने का दिग्दर्शन होता है। देवी- देवता करुण होने के साथ- साथ पाप तथा कष्टभजक भी होते हैं। यदि कोई व्यक्ति धर्म के विपरीत चलता है अथवा अनैतिक व्यवहार करता है तो वे उसके दंड भी देते है। धर्म संबन्धी अधिकांश कथाओं का मूल रामायण और महाभारत है। प्रारम्भ में ये कथाएँ अपने मूल रूप में नहीं, कालांतर में शनै: शनै पात्रों के नाम से रहित होकर लोक वातावरण में पलकर स्वाभाविक रूप से लोक कथाएँ बनाया गयीं। समस्त धार्मिक कथाओं का मुख्य उद्धेश्य धर्म का प्रचार प्रसार, लोककल्याण एवं भारतीय संस्कृति की रक्षा करना है।

धार्मिक कथाओं को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है-

1. व्रत एवं अनुष्ठान संबन्धी कथाएँ
2. देवी देवताओं से संबन्धित कथाएँ
3. त्योहार संबन्धी कथाएँ

राजा रानी संबन्धी कथाएँ

संसार में जहाँ- जहाँ लोक कथाएँ मिलती हैं वहाँ राजा-रानी की कथाएँ अवश्य होती हैं। कथा कहते और सुनते वक्त राजा रानी के प्रति विशेष रुचि आ जाती है। एक राजा था, एक रानी थी कहकर जब कथा शुरु होती है तब लोककथा की कल्पना लोगों के सामने आजाती है। पुरुष-स्त्री, छोटे – बडे के भेद के बिना कथाओं का यह प्रयोग लोगों को बहुत भाता है। इसका मूल कारण यही है कि राजा रानी की इन कथाओं में कलात्मकता ज्यादा होती है। आश्चर्य की मात्रा भी बहुत अधिक हो जाती है। लोगों को आकर्षित करने की परिस्थितियों का वर्णन इन कथाओं की एक बहुत बडी विशेषता है।

पशु- पक्षी संबन्धी कथाएँ

लोकसाहित्य में हमेशा प्रकृति मानव के साथ रहती है और मानव प्रकृति के साथ रहता है। वह अपनी समस्याओं का समाधान प्रकृति में खोज लेता है। पशु- पक्षियों से संबन्धित लोककथाओं में यह बात देखने को मिलती है। इन कथाओं में मनुष्य पशु- पक्षियों का सहयोगी रहता है, और पशु- पक्षी मनुष्य के सहायक। चतुर सियार, लोमडी का ह्रदय परिवर्तन, बकरी एवं मधुमक्खी, चालाक बन्दर, शेर और महाशेर, पंखोंवाली परी आदि कथाएँ पशु- पक्षियों से संबन्धित हैं। ये कथाएँ पशु- पक्षियों के सहयोग में मानव के व्यवहार का चित्रण करती हैं। पशु- पक्षियों पर

आधारित इन कथाओं में मनोरंजन के साथ ही कुछ न कुछ शिक्षा तत्व भी निहित होता है। इनमें कुछ पशु- पक्षियों को सीधे और सरल स्वभाव का दिखाया गया है और कुछ को धूर्त और मक्कार। धूर्त और मक्कार पशुओं को उनकी दुष्टता के आधार पर दण्ड भी मिलता है।

नीति या उपदेशात्मक कथाएँ

इन कथाओं के मूल में दृष्टांत रूप में कोई न कोई शिक्षा अवश्य छिपी रहती है। लोक समाज में प्रचलित अनेक नीति वाक्य इन लोक कथाओं के ही सूक्षम रूप है। लोक व्यवहार एवं नीति संबन्धी शिक्षा देना इन कथाओं का प्रमुख उद्धेश्य है,। बिना उद्धेश्य के कोई कार्य नहीं होता, यही लोक कथाओं का प्रमुख उद्धेश्य मनोरंजन करना ही माना गया है, परंतु इन कथाओं में मनोरंजन के साथ ही साथ शिक्षा भी मिलती है। इस वर्ग में आनेवाली अधिकांश कथाओं के पात्र पशु- पक्षी है। ये पात्र बुद्धिमत्ता एवं कार्य व्यापारों की दृष्टि से मनुष्यों से पीछे नहीं है। प्राचीन काल से ही नीति कथाओं में पशु- पक्षियों को माध्यम बनाकर शिक्षा का उपदेश दिया जाता रहा है। पंचतंत्र इन कथाओं का प्रमुख ग्रंथ है। पंचतंत्र की पृष्ठभूमि पर आधारित समाज में अनेक लोककथाओं का प्रचलन है। इन कथाओं के पात्र प्राय: लोमडी, सियार, गथा, बैल. मोर, पुडकिया, कबूतर, सारस आदि पशु- पक्षी है। इन समस्त पात्रों के संबन्ध में प्रचलित लोकविश्वास के आधार पर ही, इन पशु- पक्षियों के व्यवहार एवं स्वभाव

का वर्णन इनमें मिलता है।

बालकथाएँ

बाल कथाओं बाल मानस के अनुरूप ही ढली है। सरलता और रोचकता इनका गुण है। मनोरंजन के साथ ही बच्चों को शिक्षा देना इन कथाओं का मुख्य उद्धेश्य है। इनका कथानक सरल और सामान्य घटनाओं पर आधारित होता है। इन कथाओं के पात्र प्राय: पक्षी ही होते हैं। इन कथाओं को बच्चे बहुत ही चाव से सुनते हैं। साधारण कथानकवाली कथाओं को सामान्य कथाओं का नाम दिया गया है।

इन कथाओं के नानी- दादी की कथाओं,बिल्ली, कुत्ता, सियार, चूहा आदि की कथाओं का विशेष महत्व है। उसी प्रकार आँख मिचौनी, पत्थर मारना, गुडियों का खेल, घरौंदे बनाना आदि का समावेश रहता है। बालकों को शिक्षा एवं उपदेश देने में पशु- पक्षियों की कथाएँ बडे महत्व की रही हैं। इन पशु पक्षियों की कथाओं का बाल मन पर पर बहुत ही प्रभाव पडता है। कौतूहल और मनोरंजन के तत्व से भरी बालकथाएँ कहीं-कहीं वीरतापूर्ण साहसिक कार्यों का विवरण देती हैं। इनसे बालकों के मन में साहसी बनने की इच्छा पैदा होती हैं। ज्ञान, कौतूहल, बुद्धि चातुर्य, हास्य व्यंगयात्मक कहानियाँ भी बालकहानियों में देखी जा सकती है। इन बाल- कथाओं में चतुर बालक, सत्यवादी बालक, पहेली की पहेली, जलदेवता की बलि, मूंग और मोठ,बदला आदि कहानियों प्रसिद्ध है।

अलौकिक कथा

लोक समाज में अलौकिक कथाएँ अत्यंत लोकप्रिय है तथा उनका अपना विशिष्ट स्थान है। मनुष्य अलौकिक तत्वों की कल्पना सदैव से किसी न किसी रूप में अवश्य करता रहा है, जो उसके सब कार्यों का सुगम बना सकें तथा जिसके माध्यम से वह अलभ्य वस्तुओं को भी प्राप्त कर सकें। लोककथाओं में चमत्कार का अलग महत्व है। अक्सर इन कथाओं में सोने का मनुष्य, सोने की चिडियाँ, हँसने पर मोतियाँ बरसनेवाला राजकुमार,चलने पर मिट्टी सोने में परिवर्तित करनेवाली राजकुमारी, इस प्रकार की कई चमत्कारी बातें दिखाई पडती हैं। जो साधारण लोगों में नहीं पायी जाती। इस प्रकार की कल्पनाएँ कथाओं की मनोहारिता और श्रोताओं की रुचि को बढा देती है। साधारण संसार में असंभव इन तत्वों को कल्पना के ज़रिए संसार से परे ले जाने के कारण इसे अलौकिक माना जाता है। ये असत्य रहने पर भी अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति करती रहती हैं और श्रोताओं को आनन्द प्रदान करने वाली होती हैं। इन लोक कथाओं का सीधा संबन्ध बालकों से है। बालकों का मनोरंजन जहाँ एक ओर खेल कूद से होता है वहीं अपनी नानी दादी से प्राप्त परम्परागत लोककथाओं से भी होता है। ऐसी कथाओं में पशु- पक्षियों की कथाएँ, हास्य विनोद संबन्धी कथाएँ तथा भूत चुडैल की कथाएँ प्रमुख हैं।

इस प्रकार देखें तो लोककथाओं में मानव जीवन की सभी समस्याएँ और सामाजिकपरम्पराओं का वास्तविक रूप प्रकट हुआ है।

लोकविश्वास

लोक में अनेक प्रकार के विश्वास प्रचलित होते हैं इन्हें सामान्यतः लोकविश्वास कहा जाता है| लोकविश्वासों की उत्पत्ति उतनी ही प्राचीन है जितना कि मानव का जीवन| वेदों के समय से ही मनुष्य में कुछ ऐसी धारणाएँ देखी गई हैं जिनमें कुछ ऐसी बातों के प्रति विश्वास पाया गया है जिन्हें अविश्वास के धरातल पर भी माना जा सकता है| संसार के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में इस प्रकार के अनेक विश्वास पाये जाते हैं| अर्थववेद को तो जन्त्र-मन्त्र, जादू, टोना, टोटका आदि का कोष ही समझना चाहिए| कुछ जनविश्वास इतना रूढ़ है कि शास्त्रीय प्रामाणिकता के अभाव में भी हमारे जीवन में प्रचलित है| इसके प्रचलन का आधार मात्र लोकविश्वास ही कहा जाएगा, जिसे हम अन्धविश्वास की श्रेणी में रखते हैं|

लोक विश्वास की उत्पत्ति का कारण आदिम मानव की अज्ञता, भय आत्मरक्षा की प्रवृत्ति या देवी शक्ति में विश्वास इत्यादि के कारण है| पर आज के वैज्ञानिक युग में भी जन-साधारण का जीवन इन विश्वासों के सहारे चलता है| वैज्ञानिक युग के प्रभाववश इसमें ह्रास भले ही दृष्टिगोचर होता है| परंतु इसका नाश कदापि नहीं हो सकता| सच तो यह है कि लोक विश्वास लोकजीवन की अंतर्चेतना में इतने गहरे उतर चुके हैं कि हम जाने अनजाने इन से प्रेरित और परिचालित होते रहते हैं|

डॉ सत्येन्द्र ने श्रीमती शार्लट सोफिया बर्न के विचारों के आधार पर अन्धविश्वास के विभिन्न विषय प्रस्तुत किए हैं – "प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के संबंध में, भूतप्रेतों की दुनिया तथा उस के साथ मनुष्यों के संबंध में जादू-टोना, सम्मोहन, वशीकरण, तानीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते है|"[1]

लोकविश्वास का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है| इस विराट सृष्टि में जो भी पदार्थ हमे दृष्टिगोचर होते हैं वे सभी इस क्षेत्र में समाहित हो जाते हैं| आकाश में चमकने वाले सूर्य-चन्द्र नक्षत्र, तारे तथा आकाशीय फनामेना जैसे बादल, बिजली, इन्द्रधनुष, वर्षा इत्यादि सभी इसी परिधि के भीतर आते हैं| इस धरा को अपनी हरित सम्पदा से सुशोभित करने वाली प्रकृति, पेड़-पौधे, लता, पुष्प, फल तथा घास के संबंध में अनेक लोक विश्वास प्रचलित हैं| खेती-बाड़ी संबंधी जलचर जितने भी जीव-जंतु, कीड़े मकौड़े, पशु-पक्षी, सर्प इत्यादि इस धरा पर विचरते हैं, वे सभी इस परिधि में समा जाते हैं| मानव शरीर के जितने अंग उपांग हैं – आँख, कान, नाक, मुख, भुजा, हथेली, पैर, तलवे सभी इस विश्वास से अदुते नहीं हैं| यहाँ तक कि अनेक निर्जीवी वस्तुएं शीशा, दलनी, ओखली, झाड़ू, मूसल. जूता, कपडा, चकला, बेलन, चिमटा, कडाही ,आटे का पेड़, तवा इत्यादि तक भी लोक विश्वास की पहूँच है| संसार के अगोचर पदार्थ स्वप्न, मन की प्रसन्नता, उदासी आदि भी लोकविश्वास के ताने बाने

[1] डॉ. सत्येन्द्र, व्रजलोक साहित्य का अध्ययन, विषय प्रवेश, पृ : 4

में बुने जाते हैं| हमारे विश्वासों में अन्धविश्वास, पुनःजन्म, कर्मफलवाद और भाग्यवाद प्रमुख हैं| इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विश्वास भी हैं जो शकुन-अपशकुन, टोना-टोटका, डिठौना के द्वारा लोकमानस की अभिव्यक्ति होती है| वस्तुतः ये मान्यताएँ एक दूसरे से अविच्छिन्न रूप से संबंद्ध हैं| और बहुत कुछ एक दूसरे की अविनाशी है| जीव अपने कमीनुसार विभिन्न योनियों में अवतरित होता रहता है|

लोक विश्वासों के भी कई वर्ग हैं यथा अनुष्ठान संबंधी, उपचार सम्बन्धी, शकुन अपशकुन और पशु पक्षी संबंधी विश्वास आदि|

अनुष्ठान संबंधी लोकविश्वास

साधारण जन सामान्यतः किसी शुभ फल की प्राप्ति की आशा से धार्मिक कृत्यों को करता है क्योंकि तत्संबंधी लोक विश्वास इस बात के साक्षी है कि ऐसा करने से देवता प्रसन्न होते हैं औरे भक्तों की मनोकामना पूरा करते हैं| शुभ फल की प्राप्ति तथा परिवार और पुत्र की मंगल कामना हेतु सुहागिन स्त्रियाँ संध्या को ड्योढ़ी पर दीप जलाती हैं, तुलसी की आरती सजाती हैं, जा की सांझ संसोंती गाती है, पथ के पीपल पर उजाला करती हैं, पगडण्डी पर दीपक और जल पुष्प रखती हैं, पर ठाकुर जी का चरणामृत लेती हैं| इसी तरह के अन्य अनेक अनुष्ठान किए जाते हैं|

उपचार संबंधी लोकविश्वास

ग्रामीण लोग अपने मंगल और अपने बैरियों के अमंगल की कामना से कुछ कृत्य किए जाते हैं, जिसके पीछे अति प्राचीन काल से चले आ रहे

लोकविश्वासों का हाथ है| यद्यपि इस प्रकार के विश्वास अन्धविश्वास की कोटि में आते हैं और सभ्य तथा शिक्षित लोग इसके समर्थन नहीं कर सकते, तथापि सांस्कृतिक जीवन के यथार्थ चित्रण में इन विश्वासों की उपेक्षा नहीं कर सकते|

शकुन अपशकुन संबंधी लोकविश्वास

लोकविश्वासों में शकुन अपशकुन का भी अपना एक महत्व है| उल्लू का रात में बोलना, कुत्ते का रोना, गिद्द का घर से आँगन में बार-बार बैठना, काले बिल्ली द्वारा रास्ता काटना, बायी ओर कौवें का बोलना, दायें स्वर-स्वर सुनाई पड़ना सब सार्थक हैं और ये क्रियाएँ लोक जीवन में आपत्ति का घोतक मानी गई हैं| कभी-कभी प्रकृति के सामान्य व्यापारों में व्यतिक्रम उपस्थिति होना अपशकुन का सूचक मान लिया जाता है| आँगन में कौवें का बोलकर उड़ जाना प्रियतम के आगमन का अभिव्यंजक है| सुबह-सुबह किसी अच्छे का मुख देखना शकुन माना जाता है तो इसके विपरीत किसी झगडालू व कंजूस का मुँह देखने पर सारे दिन अन्न न मिलने की बात कही हैं| शुभ-शकुनों में अंगों का फडफडाना भी है| भुजा का फडकना, फलक के कारण अंगिया का तडकना तथा मीठे बोल सुनने की कामना करना आदि बातें प्रिय आगमन की घोतक हैं| जाते समय यदि छींक आ जाये तो बहुत अशुभ माना जाता है, परंतु यदि उसके साथ ही दूसरी छींक आ जाये तो पहली छींक का अशुभता दूर हो जाती

है| इसी प्रकार शनिचर के दिन तेल न मंगाना व जाते समय मार्ग में यदि कोई तेल लेकर जाता हुआ दिखाई दे जाय तो बहुत अशुभ मानते हैं|

पशु पक्षी संबंधी लोकविश्वास

पशु पक्षी संबंधी विश्वास प्रायः शकुन और अपशकुन का घोतक माने जाते है सियारिन का रोना, तितली का रोना, छिपकली का गिरना और कौए का सिर पर आकर बैठना आदि अनिष्ट का सूचक हैं| जन साधारण को बहुत से विश्वास पक्षी जगत से संबंध रखते हैं| डाक, तार और आवागमन के साधनों के विकास के पूर्व ग्रामीण जनों को पक्षी ही ऐसा उन्मुक्त प्राणी दिखाई देता था, जिसकी पहूँच प्रत्येक स्थान पर थी| यही कारण है कि परदेश गये प्रियजनों को समाचार पहूँचाने और अतिथियों के आगमन की सूचना देने का साधन पक्षी ही कलिपत कर दिए गए थे| आँगन की मुंडेरों पर बैठकर काग दूत पाहुनों के आने की सूचना देते हैं यह बहुत प्रचलित लोकविश्वास है|

लोक धर्म

धर्म एक शक्ति है और विश्वास भी है| हमारा अतीत काल धार्मिक दृष्टि से गौरवमय रहा है और उसके नियम शाश्वत नियमों की भाँती समाज में मानी रहे हैं| मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त जीवन के विविध सोपानों में धार्मिक मान्यताओं को एक आवश्यकता के रूप में मानता आया है| जो मानव समाज को अपनी पूर्व पीढ़ियों से सामाजिक

विरासत के रूप में प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर वे अपने जीवन क्रम को निर्धारित करते हैं|

लोकसाहित्य में धार्मिक जीवन का चित्रण विशेष रूप से हुआ है, क्योंकि भारतीय जीवन ही पुर्णतः धर्ममय है| भारत की जनता जो भी कार्य करती है उसके मूल में कहीं न कहीं धर्म बीज छिपा रहता है| यह धार्मिक भावना इतनी दृढ़ है कि युगों से परिस्थितियाँ बदलने पर भी अपेक्षाकृत वह कम बदली है| वही मूर्ति-पूजा, बड-पूजा, पीपल-पूजा,सालिगराम-पूजा, गंगा पूजा, सूर्य पूजा, तुलसी पूजा देवी देवताओं की पूजा, भजन, कीर्तन आदि सब कहीं ज्यों का त्यों चला आ रहा है| लोकमानस आज भी वैसा का वैसा ही है| ग्रामीण स्त्रियाँ आज भी उन्हीं पुराने व्रतों तथा अनुष्ठानों का विधान उसी रूप में करती है| पति उसके लिए परमेश्वर है| इस प्रकार लोक साहित्य में धार्मिक जीवन की अभिव्यक्ति सहज एवं स्वाभाविक हुई है|

लोकगाथा

लोकगाथा जो प्रबंधात्मक लोकगीत है वे आकार में महाकाव्य जैसे होता है और जिनमे कथा प्रधान तत्व होते हैं| इसका कथानक बृहद होता है| अधिकांश लोकगाथाओं का कथानक समाज के लिए आदर्शात्मक होता है| कोई उदात्त त्रित्र्वाला नायक कथा का प्रमुख आधार होता है| जिसके शौर्य वर्णन एवं प्रशाकित गान लोकगाथा के मूल में होते हैं| लोकगाथा की विशेषताएँ बृहद कथानक, गीतात्मक कथा, वर्णनात्मक

शैली, संदिग्ध एतिहासिकता, लोक आदर्श की स्थापना, सामिहिक भावना, प्रतिनिधित्व, मंगलाचरण आदि हैं| लोकगाथा के कथानक में म, वीरता और अलौकिक तत्वों का समावेश होता है जो रचना में प्रभावोत्पादकता लाते हैं, लोकगाथाओं को चार हागों में विभाजित किया जाता है|

1. परम्परामुक्त लोकगाथाएँ
2. चारण लोकगाथाएँ
3. प्रकाशित लोकगाथाएँ
4. साहित्यिक लोकगाथाएँ

परम्परामुक्त लोकगाथाएँ वे हैं जो शाताब्दियों से मौलिक एवं मौखिक परंपरा द्वारा प्रचलित हैं| चारणों द्वारा रचित गेय गाथाएँ चारण लोकगाथाएँ हैं| प्रकाशित लोकगाथाएँ हैं जो मुद्रण प्रणाली के आविष्कार के बाद पेशेवर लोकगाथा गायकों द्वारा प्रकाशित कर बेचीं जाती हैं और साहित्यिक लोकगाथाएँ वे हैं जिनकी रचना कवियों ने की हैं| कुछ प्रसिद्ध लोकगाथाओं के नाम हैं – आल्हा, लोरकी, विजयमल की गाथा, ढोला विहुला, भार्तृहरि गाथा, गोपीचंद गाथा आदि|

लोक वाध

भारतीय वाध यंत्रों चार प्रकार के होते हैं|

1. तंत्री वाध
2. चर्म वाध
3. सुषिर अथवा रुध्रगत
4. धन अथवा धातु निर्मित

तंत्री वाद्यो में वीणा, सारंगी, तम्बूर आदि वाद्यों का समावेश होता है| चर्म्बद्द वाद्यों में ढोल, डमरू,भेरा, नगाड़े आदि का स्थान दिया जाता है| सुषिर वाद्यों में हिद्युक्त वाद्य-वंशी, मुरली, तुरही, बीन आदि का समावेश दोता है| धन या धातु से बने वाद्यों को धनवाद्य कहते हैं जिसमे मंजीरा, जयहंटा, झाँझ आदि रखा जाता है| विविध वाद्यों के अद्भुत संगीत का जादू तो हर किसी के मानस पर गहनतम प्रभाव रखता है| वाद्य कोई भी हो पर उसकी मधुर ध्वनि सांप, पशु, पक्षी और मानव पर उद्भूत प्रभुत्व दिखलाती है| ग्रामीण लोगों के लोक नृत्यों के साथ विविध वाद्यों का प्रयोग करते थे| पर्वों, उत्सवों या अन्य किसी शुभ अवसर पर वाद्यों के कर्ण मधुर स्वर सुनाई जाते हैं| होली के अवसर पर विविध वेशभूषा में सजे नर-नारी ढोले, डमरू और अन्य वाद्यों के स्वर पर मदमस्त होलर नाचते, धूम मचाते, शेर गुल करते मुक्त आनंद का आस्वादन लेते हैं| लोक संगीत का अग्रदूत है ढोल जो मानव की पाशविकता को दबाकर उसकी कोमल और उच्च

भावनाओं को प्रोत्साहन देता है| असुंदर के स्थान पर कह सुन्दर की स्थापना करता है| अस्तु हम कह सकते हैं की वाद्य जीवन की प्रत्येक अभिव्यक्ति में मानव का चिर सखा रहा है| वे पर्वो, उत्सवों और लोक नृत्यों जैसे उल्लास पूर्ण वातावरण पर बजने वाले हैं|

लोकनाट्य

भारतीय जन जीवन में लोक नाटकों का प्राचीन काल से इ महत्वपूर्ण स्थान है| धार्मिक पर्वों, सामाजिक उत्सवों तथा मेलों में इनसे निरंतर जन साधारण का मनोरंजन होता रहा| इस कारण धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं का ऐसा चित्र अन्यत्र कहीं नहीं मिलता| लोक जीवन की सभी प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालना इनका उद्देश्य होता है|

लोकनाट्य लोकसाहित्य की वह विधा है जो संवादों के माध्यम से किसी रोचक कथा प्रसंग को, प्रस्तुत करके लोक का मनोरंजन करती है| प्राचीन काल से लोकनाट्य लोक मनोरंजन का से सशक्त माध्यम रहा है| ग्रामीण लोग फुरसत के क्षणों में अपनी थकान मिटाने व मनोरंजन के लिए रूचि एवं उल्लास के ह उन्हें देखते थे| लोकनाट्य में मनोरंजन के अभाव में साधारण वेशभूषा में ही पात्र अभिनय के माध्यम से लोगों का मनोरंजन करते हैं| लोकनाट्य का कथानक लोकधर्मी रुढियों से प्रभावित हैं| तथा धार्मिक मान्यताओं एवं सामाजिक परम्पराओं से संबंध रखता है| धार्मिक कथाओं के नायकों

के चरित्र एवं सामाजिक घटनाएं इस विधा के आधारभूत तत्व हैं| इसके संवाद लोकभाषा में व्यक्त होने के कारण दर्शकों पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं| फलस्वरूप दर्शक शीघ्र ही कथा से साधारणीकृत होकर आनंद का अनुभव करता है| लोकनाट्य के माध्यम से मानव मात्र मनोरंजन नहीं अपितु शिक्षा, उपदेश एवं मानसिक शांति भी अर्जित करता है| लोकनाट्यों में नृत्य, गीत, संगीत का समावेश होता है|

भारत में प्रमुख लोकनाट्य रामलीला, रासलीला, स्वांग नौटंकी, भाण, चमरवा, कहरवा, माँच, भँकई, जात्रा, गंभीर, तमाशा, बहुरूपिया, दशावतार यक्षगान, तरूकूतू, शेखावटी आदि है|

लोक सुभाषित व प्रकीर्ण साहित्य

प्रकीर्ण साहित्य के अंतर्गत लोकसाहित्य की उन विधाओं को शामिल किया जाता है जो लघु एवं फुटकर रूप में लोकजीवन के व्यवहार में बहितायत में प्रचलित हैं| इनमे लोकोक्तियों, मुहावरे तथा पहेलियाँ आदि आती हैं| इनके प्रयोग से जहाँ व्यक्ति की वाक् चातुरी का पता चलता है वहीँ भाव की सटीकता का बोध भी आत्मसात हो जाता है|

लोकोक्ति का अभिप्राय लोक में प्रचलित उक्ति से होता है| जिन सत्य तथ्यों साक्षात्कार मनुष्य अपने जीवन में करता है उसका सार लोकोक्ति को समृद्ध बनाता है| कुछ प्रचलित लोकोक्तियाँ है –

- घर को जोगी जुगिया, आन गाँव को सिद्ध
- अपनी गली में कुत्ता सेर होत|
- करिया वादर जी डर पावै, भूरा बादर पानी लावे|

मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में लोकोक्तियों की भरमार है| इसके माध्यम से व्यक्ति भाव को सटीकता के साथ अभिव्यक्त कर सकता है जिसका श्रोता पर तुरंत ही असर होता हैं|

मुहावरे लोकसाहित्य की भाषा के अभिन्न अंग हैं| ये वाक्यांश होते हैं जो अपनी उपस्थिति से भाषा या वाक्य को सबल, सतेज, रोचक तथा प्रभावशाली बना देते हैं| आम बोलचाल में मुहावरों का बहुतायत से प्रयोग होता है| ये आकार में छोटे तथा गंधात्मक होते हैं जिनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता| मुहावरे वाक्य में प्रयुक्त होकर ही भाव ग्रहण कर सकते हैं| मुहावरे प्रायः एकार्थ अभिव्यंजना से युक्त होते हैं, कुछ उदाहरण हैं –

- नाच न आवै आँगन टेढ़ो
- छाती पै होला भूँजना
- जारै पैं नोंन छिरकनो

पहेलियाँ लोकजीवन के मनोरंजन का हिस्सा होने के कारण लोकसाहित्य का अभिन्न अंग बन गई हैं जब व्यक्ति चाहता है कि उसके कथन को सर्वसाधारण आसानी से न समझ सके तो ऐसी भाषा पहेली का रूप धारण कर लेती है| इनमें लोक मानव के

मनोरंजन के साथ ज्ञानार्जन का भाव निहित होता है| पहेलियाँ वे पद्यमय घुमावदार प्रश्न है| जिनमें उत्तर अस्पष्ट चित्रण के साथ उपस्थित रहता है और लोक जीवन से संबद्ध तत्व ही इनके विषय होते हैं| जैसे –

1. एक संदूक में बारह खाने
   हर खाने में तीस तीस दाने → वर्षा
2. नर बत्तीस हैं एक है नारी
   जग में देखो सबकी प्यारी → जीभ
3. हर डण्डी लाल कमान
   तौबा-तौबा मरै पठान → मिर्च

लोकगीत

लोकगीतों में ही लोकसंस्कृति का वास्तविक प्रतिबिंबित होता है| यह संस्कृति नगर संस्कृति से भिन्न ग्रामीण संस्कृति हैं| लोकगीत ग्रामीण जनता की भावना अनेक संवेगों, अनुभूतियों एवं उनकी सौन्दर्य भावना का प्रतिनिधित्व करता है| लोकजीवन एवं लोक भाषा के मूल रूप को जानने में लोकगीत सहायक हैं| देश के प्रत्येक भाग में प्रचलित इन गीतों की भाषा तो क्षेत्रीय होती है| लेकिन सभी में अनुभूत्यात्मक साम्य निहित होता हैं|

डॉ संतराम अनिल ने लोकगीत की परिभाषा सरल एवं स्पष्ट शब्दों में करते हुए कहा है – "सामान्य जनता के संवेदनशील एवं भावुक हृदयके स्वाभाविक उद्गार, जो त की बलवती धरा के रूप में छान्दोबह होकर प्रवाहित हो उठते हैं, लोकगीतों का नाम धारण कर लेते हैं|"[1] किसी भी देश के राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन में के लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है| लोकगीत मूलरूप में मौखिक साहित्य है| लोकगीत में यथार्थता होती है, जीवन में होगी हुई घटी हुई अनुभूतियों का स्वर होता है, इसलिए ये लोकजीवन की सच्ची तस्वीर पेश करते हैं| इनमे लालित्य है, मिठास है, रस ही रस है और अपने सम्मोहन में बाँध लेने की क्षमता भी है| इनके लिए कोई शास्त्रीय विधान नहीं, ये स्वयं ही रच जाते हैं| मानव मन की इन्द्रधनुषी भावनाएँ इनमे झलक उठती हैं| हर्ष, विषाद, जय पराजय, आशा, निराशा, आस्था, निष्ठा, संवेदना जीवन की हर भावना इसमें मुखरित हो उठती है| ये मानव को एक सूट में बाँध देते हैं|

लोकगीतों में स्वाभाविकता होती है और कृत्रिमता का घोर भाव होता है| वह लोक जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज़ है सच्ची अभिव्यक्ति हैं| लोकगीतों की अपनी एक विशिष्ट परंपरा होती है| इस विशिष्ट परंपरा के माध्यम से एक समुदाय अपने सांस्कृतिक तथा सामाजिक गुणों को बहुत दिनों तक स्थायी बनाकर रख सकता है| वस्तुतः जीवन का संपूर्ण

---

[1] डॉ संतराम अनिल, कनौजी लोकसाहित्य, पृ : 42

सांस्कृतिक पक्ष इन लोकगीतों में सुरक्षित रहता है जिनके अध्ययन से तत्कालीन संस्कृति का बहुत स्पष्ट ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है|

लोकगीतों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह कि उसमें मूल मानव भावों और सहज अनुभूतियों की प्रधानता होती है और दूसरी ओर व्यंग्यात्मकता उर लाक्षणिकता की| लोकगीतों के वण् विषय अत्यधिक व्यापक और विस्तुत है| इन लोकगीतों की उत्पत्ति संभवतः मानव सृष्टि के साथ ही हुई होंगी और सृष्टि के आदि से लेकर आज तक निरंतर यह परंपरा अबाध गति से चली आ रही है| इनका विस्तार जन्म से लेकर मृत्यू तक सभी संस्कारों, विशेष घटनाओं, ऋतू परिवर्तनों से प्राप्त होता है| याने लोक्गीतों का संबंध किसी घटना या विशिष्ट अवसर से जुड़ा रहता है|

लोकगीतों के श्रेणियों में मुख्य रूप हैं संस्कार गीत, पारिवारिक जीवन से सम्बंधित गीत, ऋतू त्यौहार संबंधी गीत, धार्मिक अनुष्ठान गीत, जाति गीत, श्रम गीत, बाल गीत आदि|

संस्कार गीत

संस्कार जीवन के विबिन्न अवसरों को महत्व एवं पवित्रता प्रदान करते हैं| वे मानवीय कार्यकलाप विश्वास तथा दर्शन द्वारा निर्मित है| जिसके द्वारा जीवनधारा प्रवाहित होती रहती है| संस्कार गीत हमारे जीवन का अनिवार्य अंग बन गए हैं| ऐसा लगता है कि कोई संस्कार बिना गीतों के पूरा ही नहीं होता| हर संस्कार पर गाये जाने वाले गीतों

में मन का उल्लास देखने को मिलता हैं| लोक मानस का सबसे अधिक निकटता इन गीतों में मिलती हैं|

संस्कार गीतों में मुख्यतः जन्म. मृत्यु, विवाह के गीत आते हैं| लोकगीतों में गर्भावस्था के नौ महीनों का सांगोपांग वर्णन आता है| जिनमे गर्भिणी की अवस्था,दोहद आदि की चर्चा होती है| जन्म के पश्चात के लौकिक अरों में छठी और दसूटन विशेष है| दसूटन प्राचीन पौरोहित्य नामकरण संस्कार ही है| मुंडन, कनछेदन संस्कार जन्म के पश्चात के है, जो आयु के विशेष वर्ष में मुहूर्त निकालकर किए जाते हैं| सोहर जन्मोत्सव के गीत का नाम है| जो बच्चे के जन्म होने पर गाया जाता है लोकजीवन में पुत्र जन्म के सामान मांगलिक और हर्षपूर्ण अवसर दूसरा नहीं होता| सोहर, बधावे, नेग, न्यौछावर, कुआँ, पूजन गीत, चरुआ, पिपरी जीरा आदि अनगिनत गीत मन को आनंद से अभिभूत कर देते है| पुत्र जन्म के अवसर पर गायिकाओं की कई महफिले उठती हैं| सोहर के नशीले झोंकों से घर आँगन गूँज उठता है| जैसे –

"भोर होत पौत फाटत ललनै जन्म लीन्हा
(होरिलै जन्म लीन्हा)
सात सबद सहनइया ससुर द्वारे बाजै बहुत नीक लागै|
अंगने माँ बजत बधइया भीतर मेरे सोहर रे|"[1]

[1] डॉ कन्हैयालाल अवस्थी, संस्कृति की धरोहर, पृ : 50

इन पंक्तियों में भावों का सुन्दर वर्णन दिया गया है| यह जन्मोत्सव जीवन की सर्वाधिक मंगल घटना है| इस समय गाये जाने वाले गीत मूल रूप से भाव गीत ही होते हैं|

विवाह संस्कार पर जानेवाले गीतों का अनूठा ही आनंद है अलग-अलग परिवारों में जन्मे दो व्यक्ति ब्याह के पावन बंधन में बंधकर एक नया संसार रचाने साने जा रहे है| तब ऐसा जान पड़ता है संसार के सारे सुख सिमट कर मुट्ठी में आ गए हैं| बबूल के नीचे मंडप हवाने का उत्साह, दूध दही की नदी बहाने की कामना, चन्दन और गुलाल के छिडकाव की आकांक्षा, बहुमूल्य वस्त्रों से वर वधु को अलंकृत करने की लालसा रत्नजडित आभूषणों से सजाने की कामना वटरस व्यंजना बनाने का उत्साह थे सब इन गीतों में होती है|

उबटन गीत, हल्दी गीत,तेलगीत आदि विवाह के पहले कन्या के शरीर में हल्दी, तेल व उबटन लगाने के वक्त गाये जाते हैं| ये सब रस्में बाहरी तौर पर विवाह संस्कार को सूक्ष्मता प्रदान करनेवाली होती हैं, लेकिन इन गीतों का सच्चा स्वरूप उस माँ की सोने का कौर खिलानेवाली साध की प्रबलता में मिलता है| अपनी बेटी के सुखमय अविषय की चिंता के कारण वह सर्वथा उपयुक्त घर, बार की खोज करने के लिए अपने पति से कहती है –

“अइस वर ढूढ़यो हो जहाँ बेटी राज करै,

चन्दन की चउकी हो बइठि बेटी असनान करै|

मथुरा के पेड़ा हो बइठि बेटी भोजन करै,

सोने के गेडुबा गंगाजल पानी बइठि बेटी घुँटी रहै|

महोबे के बीरा हो बइठे बेटी यानी रहै,

फूलों की सोजिया हो पड़े बेटी आराम करै|

दस टहल टहलुआ हो सो बेटी के लागी रहै|"[1]

अपनी बेटी को सिंहासन पर बिठाकर बड़ी सम्पन्नता के साथ जो उसने पाला है उसी के अनुसार उसका ससुराल भी उतना ही संपन्न होने की वह मनोकामना करती है| उसकी इच्छा है कि उसकी बेटी ससुराल जाकर फूलों की सेज पर आराम करती रहे| इस प्रकार विभिन्न भावों से भरे हुए वोवाह से सम्बंधित ये गीत नारी मनोविज्ञान को सुन्दर रूप में प्रस्तुत करते हैं|

मृत्यु मानव जीवन का अंतिम संस्कार है| इन गीतों में मृत व्यक्ति के गुणों का तथा उसकी मृत्यु से उत्पन्न कष्टों का अत्यंत ही हृदयविदायक वर्णन होता है| जैसे विवाहिता कन्या की मृत्यु पर गाया जानेवाला गीत –

"हाय हाय बांगा की कोयल

कन तेरी बाँधा पालकी बांगा की कोयल

कन तेरा काथी सिंगार, हाय हाय बांगा की कोयल

देवर जेठा नै बाँधा पालकी

हाय हाय बांगा की कोयल|"[1]

---

[1] डॉ कन्हैयालाल अवस्थी, संस्कृति की धरोहर, पृ : 97

मृत श्व के पास बैठकर रोदन करनेवाली स्थिति को व्यक्त करनेवाला यह गीत, करुणा का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है| करुणा का अगाध सागर ही इस गीत में उभर आया है| मृत्यु शोक और विषाद का समय होता है| अतः इस अवसर के गीतों में शोक्भाव ही भरा रहता है|

पारिवारिक जीवन से सम्बंधित गीत

लोकगीतों में पारिवारिक जीवन का सजीव चित्रण मिलता है| इन गीतों के द्वारा भारतीय समाज के पारिवारिक संगठन, संयुक्त परिवार, सामाजिक व्यवस्था तथा आचार न का पता चलता है और सामाजिक व सामाजिक समस्याओं पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है| माँ, बाप, पुत्र, भाई, बहन, सास, बहु,भाभी, देवर, ननद सभी प्रकार के संबंधो से जुड़े हुए लोकगीत उपलब्ध होते हैं| पारिवारिक संगठन की प्रस्तुत करनेवाला एक लोकगीत इस प्रकार है –

"भैया रे तोर आजी कौसन? मचिया बैठी रानी अइसन
भैया रे तोर बाबा कैसन? सभवां बैठा राजा अइसन
भैया रे तो भाई कैसन? घर घर घूम बिलरिया अइसन
भैया रे तो भाई कैसन? हथवाँगुलेलिया राजा अइसन
भैया रे तोर काकी कैसन? मूड फेंकारे बन मनसिन अइसन
भैया रे तोर फूफा कैसन? हाथ गुडुइया रानी अइसन"[2]

---

[1] डॉ शंकरदयाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य, पृ : 200

[2] लूर,लोरी विशेषांक जनवरी 2005, पृ : 35

इस गीत में संयुक्त परिवार का सुन्दर चित्र प्रश्नोत्तर शैली में चित्रित किया गया है| इसमें आजी, बाबा, भाई, काका, काकी, फूफा का जिक्र करते हुए उनके संपन्न और आनंदमय जीवन का चित्र खींचते हुए संयुक्त परिवार के हर्षोल्लास एवं आनंद की ओर संकेत किया है| पारिवारिक संबंधों के अंतर्गत आनंदमय और दुःखमय दोनों प्रकार के संबंधों का चित्रण लोकगीतों में अभिव्यक्त किया गया है|

ऋतू त्यौहार संबंधी गीत

भारत में ऋतुओं के परिवर्तन के साथ साथ अनेक त्यौहार जुड़े हुए है| यहाँ का लोकजीवन इसी पर आश्रित है| भारत में चार ऋतुएँ प्रमुख है – शिशिर, वसंत, ग्रीष्म और वर्षा| इनसे सम्बंधित अनेक त्यौहार भी हमारे यहाँ मनाये जाते है| इनमे प्रमुख है चैती, चौमासा, बारहमासा, कजरी, सावन, मल्हार राछर, आल्हा, भगत, मामुलिया, बमनुलिया, नौरता, होली, उलारा, फाग, धमार आदि| इन जीतों में तो मन की बहुरंगी आभा बिखर उठती है| यहाँ के नर-नारी, बाल-वृद्ध आत्मविभोर होकर नाच गाकर, उछल कूदकर ये सब मनाते हैं|

चैत आते ही गीतों में प्रकृति का अनूठा श्रृंगार, झूमती बल्लरियाँ,खिलते पुष्प मधु कण, कोयल की कुहुक, आम्रमंजरियों की महक के साथ प्रणय की मधुर भावनाएँ उभर आती हैं| होली गीतों में _____ गुलाल के उड़ते बादल और सतरंगी फुहार के साथ हस-परिहास छेड़-छाड़ की झलक देखने को मिलती है| होली का संबंध

होलिका से माना जाता है| जिसका नाश श्रीकृष्ण ने किया था| इसी दिन को लोग होली के रूप में मनाते हैं| यह रंगों का उत्सव है| स्त्री पुरुष इस समय बिना भेदभाव के मुक्त हृदयसे मनोरंजन करते हैं| स्त्रियों पर विशेष रूप से जो गुलाल फेंका जाता है उसका वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है –

"मुट्ठी भरा गुलाल किन्ने डाल रे
जिनने भी डाला लाल सम्मुख आइयो
नहीं तो दूँगी सहज गाली, गम गम गाली|"[1]

जेठ वैशाख में सरिताओं में स्नान की उमंग और मेले का उत्साह आवास के लोकगीतों में वर्णित प्राकृतिक सौन्दर्य मन के मोह लेता है| हरी चूनर ओढ़े धरती, झूमते वृक्ष, हँसते-मुस्कुराते फूल, लहलहाती मेहंदी, पुरवैया के झोंके कोयल की कुहुक, चानक की पुकार, मयूरों के नृत्य, पावसी घटनाएँ और वर्षा की रिमझिम फुहार आदि|

ववार के गीतों में नवरात्र भर लोकगीतों की कड़ियाँ देवी माँ के प्रति भक्ति में सराबोर कर देती हैं| कार्तिक में गंगा स्नान और तुलसी माता के गीतों में भक्त हृदय की निष्ठा देखते ही बनती है, बगही आकर्षक है इन ऋतू गीतों में| कभी कभी तो ऐसा लगता है कि चातुदिव वातावरण में गूँजते हुए गीत ही मानव को ऋतू परिवर्तन की सूचना देते

[1] डॉ सत्या गुप्त, खड़ी बोली का लोकसाहित्य, पृ : 83

हैं| अन्यथा मानव तो यंत्रचालित सा ही दैनिक क्रिया कलापों में ही निमग्न हो जाता है| ये गीत उसमे अनोखी उमंग भर देते हैं|

धार्मिक अनुष्ठान गीत

लोकगीतों में धार्मिक गीतों का अपना अलग महत्व है| इन गीतों के द्वारा समाज समय समय पर अपनी धार्मिक मान्यताएँ व विश्वास प्रदर्शित कर रहा है| देवी गीत, देवी देवताओं के गीत, निर्गण, भजन, दुर्दुरिया, लचारी, पचरा आदि इस के अंतर्गत आते हैं| इन गीतों के वर्ण्य विषय से स्पष्ट होता है कि जनमानस किस प्रकार आदि युग से गंगा मैया, तुलसीमाता, हनुमान, शिव, सर्प आदि को पूजता आया है| वृक्षों, पत्थरों, पशु पक्षियों का भी पूजा करता रहा है| आज भी वही परंपरा चल रही है| लोकमानस उसी लोकविश्वास को लेकर आगे चल रहा है| इन गीतों में ईश्वर के गुणगान, भक्तिभावना, धार्मिक अनुष्ठान, प्रार्थना आदि मिलते हैं| देवी देवताओं की उपासना से जो आध्यात्मिक आनंद मिलता है, उससे लोकजीवन की परंपरा बहुत परभावि रही है| इसीलिए उपासना गीत प्रचुर मात्र में दिखाई देते हैं| उदाहरण के लिए –

"जिस घर में सै तुलसां का बिड़ला
उड़ै नित उठ आवै भगवान,
सुरसती विद्या दे अर ग्यान|"[1]

[1] डॉ जयनारायण कौशिक, दिल्ली अंचल की लोकसाहित्य, पृ : 56

प्रस्तुत गीत में सरस्वती की महिमा की गई है| लोक में सरस्वती सुरसती या विद्या की देवी हैं| भवानी, वाणी और शारदा नाम भी इनके लिए प्रयुक्त किए जाते हैं| चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को नववर्ष के उपलक्ष्य में विद्या का व्रत रखा जाता है|

जाति गीत

प्राचीन भारतीय समाज में वर्णाश्रम धर्म और जाति प्रथा का बड़ा ही प्रचार था समाज के दो विभाग किए जाते थे| जिनमें उच्च एवं निम्न विभाग का प्रतिनिधत्व रहता था| निम्न वर्ग में जाति भेद के आधार पर भिन्न भिन्न जातियों के गीत उपलब्ध होते हैं| इन् गीतों में अनेक मनोभाव उत्साह और परिवेश का सहज और स्वाभाविक चित्रण होता है| अहोर जाति का निरहा, मल्लाहों के मम्मी गीत, कहारों के कहरवा गीत, टेली, ठिमर, यमार, कोरी, धोबी, आदिवासियों के गीत आदि जाति गीत बड़े ही मोहक होते हैं|

प्राचीन काल में काम करने की सुविधा को दृष्टि में रखकर भारतीय समाज में भिन्न भिन्न जातियों का विभाजन किया गया था| इन विभिन्न जातियों के सम्बंधित गीत भी समाज में प्रचलित थे, जिनमें उनके जीवन से सम्बंधित विभिन्न पक्षों का चित्रण मिलता है| इनमें अहीरों के गीत सबसे प्रमुख हैं| उदाहरण के लिए –

“वने वने गइयां चरावे रे कन्हइया घरे घरे जोरत पिरीत

आनकी विअहिया का सां मारि आवै आखिर त जातिया अहीर|"[1]

गाय चराते समय ये निरहा के गीत अक्सर गाये जाते हैं| प्रस्तुत गीत में घरे घरे जोरत पिरीत में समाज की एकता की ओर संकेत मिलता है| इससे अनुमान किया जा सकता है कि निम्न वर्ग में रहते हुए भी इन जातियों के मानसिक भाव उच्च थे|

श्रमगीत

लोकजीवन में श्रम की बड़ी प्रतिष्ठा है| श्रम देवता सभी देवताओं से बढ़कर होता है| लोक अच्छी तरह जानता है कि बिना श्रम के जीवन सार्थक नहीं होता, इसलिए कर्म का स्वाभाविक रूप में वर्णन लोकगीतों में मिलता हैं| श्रम करते समय उससे विथकित न हो जाये इसी कारण श्रमगीतों की संरचना हुई होगी| इस प्रकार कठिन से कठिन श्रम भी वह गाते हुए हल्का कर देता है| चकिया गीत, जतसार, रामारे रमतेरा, बिलबारी, कटाई, ओसाई, रोपाई, कोल्हू के गीत, सोला बीनने के गीत, धान कूटने के गीत, चरखे के गीत आदि गीत श्रम करते समय शरीर की थकावट दूर करने केलिए लायक है|

चक्की, पनघट, रोपनी आदि के संदर्भ में विशेष रूप से स्त्रियों का योगदान महत्वपूर्ण है| जिस समय श्रम गीत अत्यधिक मनोहर बन जाते हैं| अक्सर चक्की के गीतों में नारी संबंधी प्रताद्ता का यथार्थ चित्रण

---

[1] सरोजनी रोहतगी, अवर्धा का लोकसाहित्य, पृ : 213

मिलता है| इस कारण से लोकजीवन में इसका विशेष महत्व रहा है| निम्नलिखित चक्की गीत बहुत ही महत्वपूर्ण है –

"जपन की जपमाला कठिन है
मात पिता औ अपने की ई तीन्युन की आज्ञा कठिन है
सास ससुर ओपति की ई तीन्युन की सेवा कठिन है|
गंगा जमुना औ तिरबेनी ई तीत्युन की धरा कठिन है
सूरज जोन्हइया नखन औ तारेई चार युनका उक्का कठिन हैं"[1]

पारिवारिक जीवन में आना, धर्म एवं सेवापालन कितना कठिन होता है| उसकी अनूठी अभिव्यक्ति किसी ग्राम वधु द्वारा गाय जाय तो कितनी सुन्दर होती है, इसका परिचय इस गीत में मिलता है| अलंकारों के प्रयोग से भावों को और भी सशक्त बनाने का कार्य इन पंक्तियों में हुआ है| सास, ससुर और पति तीनों की सेवा गंगा, यमुना, सरस्वती की त्रिवेणी से भी बढ़कर गहरी मानी गई है|

बालगीत

पालने के गीतों से लेकर खेल, शिक्षा, मनोरंजन आदि से जुड़े हुए गीत इसके अंतर्गत आते हैं| बच्चा उत्पन्न होने के पश्चात उसके लिए सुन्दर सा पालना बनता है| जिसमे उसे सुलाया जाता है, गीत भी गाये जाते है| यथा –

"अवध में जन्मे राम सलोना

[1] डॉ कन्हैयालाल अवस्थी, संस्कृति की धरोहर, पृ : 246

मात कौसल्या के पुत्र हुए हैं

दशरथ के चारों छौना

चरों पुत्र पालना झूले

माथे दियो डिठौना"[1]

यह गीत जन्मोत्सव पर गाये जानेवाले है| विशेषतः अवध में राम जन्मोत्सव से सम्बंधित है| इस गीत में अवश्य ही शिशु के भविष्य के मांगल्य भरे जीवन का अपार उत्साह व शुभकामनाएँ प्रकट होती है| साथ ही साथ इसमें आनंद ही आनंद रहता है|

त्यौहार

भारत के लोकजीवन में अनेक त्योहारों को मनाने का विधान है| ये त्यौहार किसी देवी देवता से सम्बंधित होते हैं और इन को लेकर अनेक विश्वास भी प्रचलित रहे हैं| इन त्योहारों और उत्सवों का आयोजन युग-युगों से होता चला आया हैं| इन त्योहारों का मूल लोक समाज में पाया जाता है| त्योहार के दिन सभी के मन की कसक और कुढ़न भूलकर भक्ति और आनंद के सम्मिलित भावों से उल्लासित होते हैं| त्यौहार पूरे वर्ष के अलग अलग महीनों में मनाये जाते हैं| हिंदुओं के अधिकतर त्यौहार हिन्दू माह और तिथि के अनुसार आते हैं| कई त्योहारों का नामकरण तिथि के आधार पर ही देखा जाता है| जैसे गणेश चतुर्थी, जन्माष्टमी, रामनवमी आदि| आगे हम उस पर विस्तार से विचार करेंगे|

---

[1] श्रीनिवास प्रभु देसाय, लोकवेद - एक लोक जीव, पृ : 24, 25

होली

होली रंगों का उत्सव है| होली का आरंभ वसंतोत्सव से माना जाता है| यह त्यौहार सारे देश में बहुत ही धूम धाम से मनाया आता है| इस त्यौहार के साथ प्रहलाद की कथा जुडी हुई है| दैत्यराज हिरण्यकश्यपु के प्रहलाद नामक पुत्र था जो प्रभु भक्ति में निमग्न रहता था| हिरण्यकश्यपु ने अपने राज्य में प्रभु भक्ति पर प्रतिबंध लगा दिया था| पर प्रहलाद पर पिता के प्रतिबंध का कोई असर न था| उसे मारने के लिए हिरण्यकश्यपु ने कई प्रयत्न किए पर सभी बेकार साबित हुए| अंत में राजा ने अपनी बहन होलिका की सहायता से प्रहलाद को जलाने की कोशिश की पर इस प्रयत्न में स्वयं होलिका जल गई और प्रहलाद बच गया| होलिका के जलने के बाद प्रति वर्ष फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को होलिका उत्सव मनाया जाता है|

होली का महत्व सारे हिन्दुस्तान में है| लोग बड़े उत्साह से इस पर्व को मनाते हैं| यह त्यौहार फाल्गुन की पूर्णिमा को मनाया जाता है| स्त्री पुरुष इस समय अवस्था के भेद के बिना भेदभाव भूलकर मुक्त हृदय से मनोरंजन करते हैं| वास्तव में होली एक ऐसा त्यौहार है जो सामाजिक स्वीकृति पाकर मानव को उसके अपने वास्तविक रूप में ले आता है और हमारी मर्यादित प्रवृत्तियाँ भी उन्मुक्त हो जाती हैं|

मकर संक्रांति

मकर संक्रांति के दिन से रातें छोटी होने लगती हैं और दिन लम्बे होते जाते हैं| पुष्य माह के कृष्ण पक्ष के अंत में उत्तरायण का त्यौहार मनाया जाता है| इस दिन से सूर्य मकर राशि में से कर्क राशि की ओर प्रयाण करता है| याने कि सूर्य दक्षिण से उत्तर की ओर आने लगता है| इसलिए इस त्यौहार को उत्तरायण भी कहते हैं|

रक्षाबंधन

यह त्यौहार श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है| रक्षा बंधन पर बहनें अपने भाइयों को राखी बाँधती हैं| प्राचीन काल में राजा को युद्ध पर जाने से पुरोहित उसके कल्याणार्थ उसकी कलाई पर रक्षा सूत्र बाँधता था और तभी से यह त्यौहार मुख्य रूप से ब्राह्मणों का माना जाता था| आगे चलकर यवनों के अत्याचारों से विकल बहनों ने भी भाइयों के हाथों पर अपनी रक्षा का त्र बाँधना आरंभ कर दिया| रक्षा बंधन के त्यौहार को भारतीय लोक मानस ने 'सलोने' के नाम से भी जाना जाता हैं| इसे ब्रज में 'फुलरिया' कहते हैं| ब्रज में पुरुष इस अवसर पर बुरा लेकर अपनी ससुराल जाता है और वहाँ उसका खूब स्वागत होता है| इसे 'बूरा खाना' कहते हैं| उत्तर प्रदेश में कजली गाने की भी प्रथा है| कजली में श्रृंगार रस के उभय पक्षों का अत्यंत ही स्वाभाविक एवं सुन्दर वर्णन मिलता है| अक्सर गीत झूला झूलते हुए गाये जाते हैं|

चौथी

भादुपद के कृष्ण पक्ष की चौथ को मनाया जानेवाला है यह त्यौहार| यह शिवपुत्र गणेश के सम्मान में मनाया जाता है| इस दिन से प्रारंभ होकर अगले तीन दिनों तक गाँव में कई समारोह होते हैं| माला और मादिगा की अस्पृश्य जातियों तथा अर्द्द-आदिवासी एश्कला को छोड़कर शेष सभी हिन्दू जातियाँ इस त्यौहार को बड़े उत्साह से मनाती हैं|

इस त्यौहार की दो विशेषताएँ है – प्रथम कुछ व्यवासाहिक जातियाँ अपने उपकरणों की पूजा करती हैं| उदाहरण के लिए, धोनी अपने कपडे उबालनेवाले मिट्टी के अड़े घड़े पर और उस पत्थर पर जिस पर कि वह कपडे फींचता है सिंदूर और हल्दी लगाता है| नाइ अपने उस्तरे और कैंची की इसी प्रकार पूजा करता हैं| जुलाहा भी अपने पारम्परिक व्यवसाय से सम्बंधित अकारणों की पूजा करता है| दूसरी बात, चौथी के दिन चंद्रमा को देखना अशुभ गिना जाता है, ऐसी मान्यता है कि उस दिन चाँद देखनेवाले पर झूठा चोरी का इल्जाम लगता है| पर यदि कोई चाँद देख ले तो उससे होने वाले कुप्रभाव को मिटाना कठिन नहीं है| यदि उसे इसके लिए कोई गाली दे तो चाँद देखने का प्रभाव दूर हो जाता है| लोगों से गालियाँ खाने के लिए चाँद देखनेवाले लोग इस कारण दूसरों से भद्दी मजाकें करते हैं और उन्हें नाराज़ कर देते हैं|

जन्माष्टमी

यह त्यौहार भादुपद कृष्णाष्टमी को मनाया जाता है| उस दिन रात को भजन गाये जाते हैं| क्वार में लड़के टेसू के गीत गाते हैं और लड़कियाँ झाँझी खेलकर झांझी के गीत गाती है| स्त्री पुरुष तथा बच्चे भी जन्माष्टमी पर उपवास रखते हैं| घर में तरह-तरह के पकवान बनाते हैं फलाहार बनाता है| रात्री में कृष्ण संबंधी गीतों को लकडियाँ गाती हैं| अनेक कीर्तन मंडलियाँ भी इस त्यौहार के अवसर पर लोक-वाद्यों के साथ कृष्ण संबंधी भजन गाती हैं| रात्रि में बारह बजे के लगभग कृष्ण जन्म होता है| तत्पश्चात पचामृत पीकर भोजन आदि करके व्रत खोला जाता है| कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर मदिरों एवं घरों में झाकियाँ भी सजायी जाती हैं|

बारहमासा

बारहमासा वर्षा ऋतू में गया जाता है| इसमें प्रेषित पतिका के वियोगजन्य दुःखों का वर्णन मिलता है| बंगाल में इसे बाराह्माशी कहते हैं| मैथिलि लोकगीतों में बारहमासा का प्रधान स्थान है|

गणेश चतुर्थी

यह त्यौहार भादों मास के द्वितीय पक्ष में चतुर्थी को मनाया जाता है| गणेश जी की मूर्ति की स्थापना की जाती है| फिर दस दिन तक प्रतिदिन संध्या को आरती होती है| आरती के पश्चात प्रसाद बाँहा जाता है| पश्चिमी उत्तर प्रदेश में दस दिन गुरु की पूजा की जाती है और गुरु को

भेंट दी जाती है| कुछ स्थानों पर इस दिन मेला लगता है और कुश्तियाँ होती हैं| मध्य प्रदेश के अधिकांश इलाकों में गणेशजी की मूर्ति को नदी या तालाब में विसर्जन किया जाता है|

पैतृमास

भादुपद की अमावस्या को घर के पूर्वजों और मृत सदस्यों को श्राद्द अर्पित किया जाता है| इस दिन समाप्त होनेवाला पूरा पखवाड़ा इसी निमित्त होता है, जबकि मृतक को उसकी तिथि पर जल अर्पित किया जाता है| यदि विगत वर्ग में ही परिवार में कोई मृत्यु हो पैतृमास के पखवाड़े में मृत्यु की तिथि के दिन बड़े पैमाने पर कार्यक्रम आयोजित किया जाता है और मृतक की आत्मा को बुला कर घर के एक कोने इ अन्य पूर्वजों की आत्माओं के साथ स्थापित कर दिया जाता है| इस संस्कार के लिए कुटुम्ब के सभी परिवार एक ही स्थान पर एकत्र होते हैं|

अनंत चतुर्दर्शी

केवल ब्राह्मण लोग भादुपद के कृष्णपक्ष की चतुर्दर्शी को यह त्यौहार मनाते हैं| इस दिन विष्णु की पूजा होती है| विष्णु की मूर्ति के सम्मुख हवन किया जाता है| दो लाल धागे ब्राह्मण पहले विष्णु की भुजा पर बाँधता है और बाद में अपनी भुजा पर बाँध लेता हैं|

गंगा दशहरा

यह एक धार्मिक त्यौहार है| कार्तिक मॉस की पूर्णिमा को गंगास्नान का पर्व होता हैं| गंगास्नान करने के ये महिलाएं और बच्चे

बैलगाड़ी आदि वाहनों से गंगा जाते हैं और महिलायें रास्ते में गंगाजी से सम्बंधित या देवी गीत गाती हैं| इसी प्रकार जेठ मॉस में पड़ने वाले गंगा दशहरा पर गंगास्नान का विशेष महात्म्य है|

नीलगौरी

इस त्यौहार को केवल ब्राह्मण स्त्रियाँ मनाती हैं| वैशाख के कृष्णपक्ष की तृतीय को मिट्टी भरी जाती है – काली मिट्टी, लाल मिट्टी, वाल्मिक की धूलि और खाद और इसमें नौ तरह के अनाज के बीज बोय जाते हैं| इसमें उगनेवाले अंकुर शिव की पत्नी गौरी के प्रतिक गिने जाते हैं और उन्हें एक माह तक जल दिया जाता है और पूजा जाता है| प्रत्येक दिन गुड और भीगे चनों का भोग लगाया जाता है|

नागपंचमी

श्रावण मॉस में नाग देवता की पूजा पंचमी के दिन होती है| नाग को देवता माना जाता है| इस दिन लोग नाग देवता को दूध पिलाया जाता है| नाग पंचमी पर मेला भी लगती है| स्त्रियाँ मेले में जाते समय गीत गाती हैं|

व्यास पूर्णिमा

भगवान व्यास देव के जन्म के अवसर पर व्यास पूर्णिमा का योहार मनाया जाता है|

दशहरा

दशहरा भारत के अनेक प्रान्तों में बहुत धूम-धाम से मनाया जाता है| दु तिथियों के अनुसार यह त्यौहार असोज (क्वार) के दूसरे पक्ष में दसवीं को मनाया जाता है| प्राचीन परंपरा के अनुसार यह हमारा राष्ट्रीय पर्व है| ऐसी किंवदन्ती है कि आज के दिन भगवान् श्री राम ने लंका पर विजय प्राप्त की थी| आज के इन तो हमे मिल कर दृढ़ संकल्प करना चाहिए कि हम बुराइयों से डट कर लोहा लेंगे और उन पर विजय प्राप्त करेंगे| यही इस त्यौहार का वास्तविक उद्देश्य है| इस दिन राम रावण की कथा से सम्बंधित अनेक गीत गाये जाते हैं|

कार्तिक पूर्णिमा

ब्राह्मण, कोमटि और अन्य उच्च जातियों की स्त्रियाँ इस त्यौहार को मनाती है| व्रत रखनेवाली स्त्रियाँ बड़े-सवेरे स्नान कर पीसी हुई हल्दी का लेप अपने शरीर पर लगाती हैं और पीत वस्त्र धारण करती हैं| दिन में वे तुलसी के पौधे की पूजा करती है और इक्कीस धागे, इक्कीस तरह के पुष्प और इक्कीस मालाएँ चढाती हैं| धनी घरों में पूजा कवाने के लिए ब्राह्मण को बुलाया जाता है|

हरियाली तीज

श्रावण मॉस में ही हरियाली तीज का त्यौहार होता है| हरियाली तीज लड़कियों का ही त्यौहार है| इसमें लड़कियाँ सुन्दर वस्त्र एवं

आभूषणों से सुसज्जित होती हैं| वे हाथों में मेहंदी लगाती हैं और झूला झूलती हैं| इस अवसर पर वे गीत भी गाती हैं|

बसंत पंचमी/ सत्तमी

माघ के कृष्ण पक्ष में पाँचवे आर सातवें दिन यह त्यौहार मनाया जाता है| यह त्यौहार केवल ब्राह्मणों के लिए विशेष महत्व है| बसंत पंचमी के अवसर पर लोग पीत वस्त्र धारण करते हैं क्योंकि इस समय खेतों में सरसों फूलने से सर्वत्र पीला रंग छा जाता है| बसंत पंचमी को कुछ लोग विद्या की वि सरस्वती का पूजन भी करते हैं| बसंत पच्मी के दिन मूर्तियों को विशेष स्नान कराया जाता है और नये परिधान से सजाया जाता है| इस दिन मुख्य पूजा शिव की होती है| किंतु रथ सप्तमी के दिन सूर्य की पूजा होती है| सूर्य के साथ साथ विष्णु और तुलसी के पौधे को भी पूजा जाता है|

अमावस्या

जनपद के अनेक देवी मंदिरों पर प्रत्येक अमावस्या का मेला लगती है| चैत की अमाउस (चेत्र अमावस्या) को लगनेवाली मेला बहुत ही महत्वपूर्ण मानी गयी है| इस अवसर पर महिलाएं देवी के गीत एवं छंद गति हुई जाती है, और देवी का पूजन करती हैं|

शिवरात्री

माघ मॉस के कृष्ण पक्ष की चतुर्दर्शी को शिवरात्री का त्यौहार मनाया जाता है| त्यौहार के एक दिन पहले लोग अपने घरों की सफाई करते हैं| शिवरात्री के दिन वे जल्दी उठती हैं| पुरुष स्नान करते हैं, स्त्रियाँ आँगन को बुहारती, लोपति है और उस पर रंगों से अल्पना बनाती हैं यह सब कने के बाद बे भी नहाती हैं| कपडे धोये जाते हैं और बड़े घरों के लोग नये कपडे भी पहनते हैं|

यह बड़ा महत्वपूर्ण व्रत होता है| जो यह व्रत रखते हैं वे पूजा होने तक कुछ भी नहीं खाते-पीते, पूजा अपरान्ह में 4 बजे के लगभग होती हैं| पूजा कने के लिए प्रायः सभी सवर्ग जातियाँ उस देवालय में जाती हैं जहाँ शिवलिंग स्थापित है| प्रत्येक परिवार से स्त्रियाँ तभी जाती हैं जब कि उनके परिवार में कोई पुरुष सदस्य न हो| वे अपने साथ एक थाली में नारियल, ककड़ी, उबले हुए सकरकंद और गुड-चना लेकर जाते हैं| उन्हें देवालय में शिव को चढाया जाता है| लोग अपनी थालियों में प्रसाद लेकर घर लौटते हैं| इसके बाद वे भोजन करते हैं|

दीपावली

हिन्दू त्योहारों में दीपावली अत्यंत महत्वपूर्ण हैं| दीपावली मुख्य रूप से वैश्यों का त्यौहार माना जाता है| 'दीवारी' अथवा 'दिवाली' इसका लोक प्रचलित नाम है| दीपावली कार्तिक मॉस में अमावस्या को मनायी जाती है| इस दिन सब लोग इस बात की ख़ुशी मनाते हैं कि राम

14 वर्ष वनवास के पश्चात अयोध्या लौटे थे| दीपावली दशहरे के बीस दिन बाद अक्तूबर नवम्बर में पड़ती है| इस दिन सब घरों को सफाई कराकर सफेदी कराते हैं, घरों को सजाते हैं, सायंकाल दीपक या मोमबत्ती जलाकर रोशनी करते हैं| एक दूसरे के घर मिठाई बाँटते हैं| घरों में पकवान बनते हैं| दीपावली के त्यौहार पर समाज का हृदयोल्लास अगणित दीपकों, बत्तियों एवं खील-बतासों के रूप में मूर्तिमन्त हो उठता है| यह त्यौहार सारे देश में बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है|

गोवर्धन पूजा

गोवर्धन पूजा का त्यौहार जिसे लोक भाषा में गोधन कहा जाता है| यह त्यौहार दीपावली के दुसरे दिन मनाया जाता है| इस दिन स्त्रियाँ गोबर से गोवर्धन की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करती हैं| कृषक अपनी गायों और भैसों के सजाते हैं तथा कृषि संबंधी उपकरणों की पूजा करते हैं| भारतीय संस्कृति में गो-पशुओं को प्रारंभ से ही बहुत महत्वपूर्ण समझा गया है तथा इस दृष्टि से इनकी पूजा उचित ही है|

भैयादौज

भैयादौज का त्यौहार बड़े महात्म्य से मनाया जाता है| यमुना को यमराज की बहिन माने जाने के कारण उस दिन यम की पूजा की जाती है| इस लोकोत्सव को 'यम द्वितीया' भी कहा जाता है|

तिल-संक्रान्ति

संक्रान्ति के दिन से रातें छोटी होने लगती हैं और दिन लम्बे| इस त्यौहार को गाँव के सभी हिन्दू लोग मनाते हैं| ब्राह्मण, कोमटि और रेड्डी इस दिन व्रत रखते हैं जबकि अन्य जातियों के लोग खूब खाते खिलाते हैं| इस दिन विशेष पूजा करनेवाली उच्च जातीय परिवारों की स्त्रियाँ बड़े सबेरे स्नान करती हैं| अपने शरीर पर हल्दी का लेप करती है और पूजा की तैयारियाँ करती हैं|

नरसिंह जयन्ती

हिंदुओं के वैशाख मॉस की कृष्ण चतुर्दर्शी को भगवान् विष्णु के अवतार नरसिंह – आधे सिंह और आधे मनुष्य के सम्मान में यह त्यौहार मनाया जाता है| परिवार के कुछ सदस्य इस दिन व्रत रखते हैं| दोपहर में नरसिंह की मूर्ति या तस्वीर की पूजा की जाती है और गुड तथा अंकुरित चनों का भोग लगाया जाता हैं|

उगादी

उगादी तेलुगु क्षेत्र में नव वर्ष का महत्वपूर्ण त्यौहार है| यह चौत मास की प्रतिपदा को मनाया जाता है| यद्यपि इसे सभी हिन्दू जातियाँ मनाती हैं फिर भी ब्राह्मण, कोमटि, रेड्डी और पंच ब्रह्म समूह की जातियों के लिए इस का अधिक महत्व है|

उगादी के दिन लोग बड़े सवेरे उठते हैं| औरतें चौक में झाड़ू लगाती हैं, पानी मिश्रित गोबर से आँगन को लिपटी हैं, और आटे या

रंगीन पाउडर से सुन्दर अल्पना बनाती हैं| लोग आम के पेड़ की पट्टियां और नाम की टहनियाँ इकट्ठी करने जाते हैं, उन्हें एक लम्बे धागे में बाँध कर तोरण बनाते हैं और उनसे अपने घर के अगले भाग को सजाते हैं|

शाम को लोग देशमुख के धर के बाहर एकत्र होते हैं| इस अवसर पर गाँव के सभी पंचों से अपेक्षा की जाती है कि वे उपस्थित रहें| सभी कृषक परिवारों से एक-दो व्यक्ति उपस्थित रहते हैं| ब्राह्मण अपना पंचांग देखकर आनेवाले वर्ष का भविष्यफल बताता है|

टोली एकादशी

आषाढ़ कृष्ण एकादशी को ब्राह्मण, कोमटि और कुछ रेड्डी भगवान विष्णु के सम्मान में व्रत रखते हैं| ब्राह्मण परिवार में सभी वयस्क यह व्रत रखते हैं, दूसरे परिवारों में कुछ ही लोग ऐसा करते हैं| यद्यपि व्रत के समय खाये जा सकनेवाले पदार्थ इस दिन भी खाये जा सकते हैं| किंतु कुछ लोग शाम तक कुछ भी नहीं खाते, यहाँ तक कि पानी भी नहीं पीते| विष्णु और उसके अवतार की घर में और देवालयों में पूजा की जाती है| नारियल, खजूर और गुड-चने का भोग लगाया जाता है|

श्रावण सोमवार

ब्राह्मणों और कोमटियों द्वारा श्रावण मास के सोमवारों को आधे दिन का व्रत रखा जाता है| कुछ लोग शनिवार को भी ऐसा ही व्रत रखते हैं| इन दिनों शाम के भोजन में प्रायः सदैव की मिठाई भी रहती है|

कृष्ण अष्टमी

भादुपद नदी अष्टमी के दिन भगवान कृष्ण के जन्म को यह त्यौहार मनाया जाता हैं| इस दिन बहुत से लोग पूरे दिन व्रत रखते हैं और रात को चन्द्र दर्शन करने के बाद ही फलाहार लेरे हैं अर्थात उस समय भी अन्न का प्रयोग नहीं होता हैं|

रामनवमी

चैत शुक्ल नवमी के दिन यह त्यौहार मनाया जाता है| इस दिन मर्यादापुरुषोत्तम राम का जन्म हुआ था| इस त्यौहार के अवसर पर घर घर में पूड़ी और पकवान बनाते हैं| कुछ स्त्रियाँ राम नवमी पर व्रत भी रखती हैं| जन्म के पश्चात पूजन आदि करके व्रत खोलती हैं| ढोलक बजाकर राम संबंधी गीत गाती हैं| शाम को भगवान राम की शोभायात्रा निकालती है, इसमें राम के जीवन से सम्बंधित विभिन्न झाकियाँ तथा अनेक सिंहासन होते हैं, जिनमें भगवान राम और सीता की छोटी-छोटी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित होती हैं|

राखी पूर्णिमा

श्रवण मास की पूर्णिमा को मनाये जानेवाले इस त्यौहार का ब्राह्मण साले और गाओंडला के लिए विशेष महत्व हैं| पहननेवाली सभी जातियाँ, इस दिन अपना बदलती हैं| कुछ व्यवासायिक जातियाँ विशेष रूप से साले और गाओंडला, अपने व्यावसायिक उपकरणों पर कलावे बाँधती हैं| इस दिन काम की छुट्टी रहती है और मिठाइयाँ एवं वां बनाये जाते हैं|

नागुला पंचमी

श्रावण कृष्ण पंचमी को यह योहार ब्राह्मणों, कोमटियों, रेड्डियों और कुछ अन्य जातियों द्वारा मनाया जाता है| इस दिन कोई भी हिन्दू लोटे के तवे पर रोटी नहीं बनाता| जो हिन्दू यह त्यौहार नहीं मनाते वे भी इस निषेध का पालन करते हैं| जिन परिवारों में यह त्यौहार मनाया जाता हैं, परिवार का एक व्यक्ति तब एक व्रत रखता है जब तक कि दोपहर में नाग की पूजा नहीं कर ली जाती| नारियल, चावल के फूले, दूध और चने को एक थाली में सजाकर व्रत रखनेवाला व्यक्ति उसे एक वाल्मिक पर ले जाता है| वाल्मिक को नाग का निवास स्थल माना जाता है| यहाँ वह एक दीप जलाता है और थाली में लाये गए खाद्य पदार्थ का भोग लगाता है| पूजा कर लौटते समय सारे मार्ग में वह चावल के फूले डालता आता है| इस दिन विशेष रूप से खीर बनाई जाती है|

इस त्योहारों में बहुत से त्योहारों ऐसे हैं जिनमें स्त्रियाँ उपवास करती हैं| भारतीय नारी जिसका क्षेत्र घर की चार दीवारी तक ही सीमित था, वह अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों से ग्रसित थी| कुछ व्रत इसी प्रकार के अंधविश्वासों से प्रेरित हैं| पुत्र प्राप्ति, धन प्राप्ति अथवा रोग निवारण अदि के उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमारे देश की स्त्रियाँ, व्रत, उपवास आदि में आस्था रखती हैं| एकादशी, प्रदोष, पूर्णिमा आदि तिथियों को तथा रविवार या शुक्रवार के दिनों को व्रत का अनुष्ठान इसी प्रकार के उद्देश्यों से प्रेरित हैं| इन व्रतों में आत्म शुद्धता और सात्विकता

की वृत्ति ही प्रधान होती है| इस प्रकार के व्रत जीवन में संकल्प की दृढ़ता और आत्मविश्वास उत्पन्न करते हैं| देवी देवताओं की प्रसन्नता के लिए जो व्रत किए जाते हैं उनका अनुष्ठान सामूहिक रूप से होता है|

मुसलमानों के त्यौहार

मुसलमान लोग प्रतिवर्ष सात महत्वपूर्ण त्यौहार मनाते हैं| ये है – मुहरम, मीलाद शरीफ, गथारहवीं शरीफ, शबे मीराज़, शबे बारात, रमजान और ईद-उज़ जुहा| इन त्यौहारों को मुसलमानों के अपने कैलेण्डर के हिसाब से मनाया जाता है और हिन्दू त्यौहार से भिन्न इनकी तिथियाँ प्रतिवर्ष बदलती रहती हैं|

मुहरम

मुहरम महीने के दसवें दिन मुहम्मद के पोते इमाम हुसैन को कर्बला के मैदान में तिन दिन तक भूख और प्यास से तदपा कर मार डाला गया| मुहरम इस शहीद और उसके साथियों की याद में मनाया जाता है| मुहरम के दिन इमाम हुसैन और उसके परिवार के प्रतीकों जिन्हें आलम कहा जाता है, को मुसलमान लोग जुलूस बनाकर पास की नदी या पर ले जाते हैं| सारे रास्ते वे अपनी छाती पीटते हैं और बोलते है या उली अथबा या हसन और इस प्रकार शहीद की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हैं| ताजिये निकालकर जुलुस में ले जाए जाते हैं और नदी में उन्हें डुबोया जाता है| मुसलमान घरों में या तो चीनी और पानी या दूध और चीनी का मीठा पेय बनाया जाता है और मित्रों एवं सम्बन्धियों को पिलाया

जाता है| इस दिन भीख और दान देने से भविष्य सुखी होता है, ऐसा ये लोग मानते हैं|

मिलाद शरीफ

मुहरम में जहाँ क संवेदना प्रकट की जाती है, मीलाद शरीफ के दिन हर्ष और आनंद मानाया जाता है, क्योंकि रबी उल अव्वल महीने के बारहवें दिन हजरत मुहम्मद पैदा हुए थे| इस महीने के ग्यारहवें और बारहवें दिन लोग व्रत रखते हैं| मौलवी लोग घरों पर इ हैं और कुरान की आयतें पढ़ते हैं| मुहम्मद के नाम पर फल और मिठाइयाँ बाँटी जाती हैं| ये कार्यक्रम पूरे महीने चलते रहते हैं हालाकि इन दो दिनों में सबसे अधिक खुशियाँ मनाई जाती है|

ग्यारहवीं शरीफ

मुसलमान सुन्नियों के लिए यह एक महत्वपूर्ण त्यौहार है| यह अब्दुल कादिर गीलानी के सम्मान में मनाया जाता है जो मुहम्मद की पीढ़ी के ही एक संत पुरुष थे| रबी-उस-सानी महीने के ग्यारहवे दिन शामिरपेट के मुसलमान अब्दुल कदीर की झंडी अपने घरों पर फहराते हैं और उसके नाम पर नमाज़े पढ़ते हैं एवं मिठाइयों एवं फूल चढाते है|

शबे मीराज

रज्जुब के छब्बीसवें दिन मुहम्मद एक फरिश्ते के साथ सातों जन्नत और जहन्नुम देखने गए| ऐसा कहा जाता है कि बाद में वे स्वयं अल्लाह से मिले| इस घटना को मनाने के लिए लोग इस दिन नमाज़े पढ़ते हैं|

यदि हो डाके तो वे रात-भर जागकर प्रार्थनाएँ करते है और अल्लाह से दुआएँ माँगते हैं|

शाबे बारात

शबन के चौदहवें दिन की रात को मुसलमान अपने मृत सम्बन्धियों को मिठाई और रोटी का श्राद्द देते हैं| वे उनकी कब्रों पर जाकर फूल चढाते हैं और प्रार्थनाएँ करते हैं| ऐसा कहा जाता है की इस दिन मृत यों की आत्माएँ अपने सम्बन्धियों से मिलने और उनसे भेंट प्राप्त करने के लिए आती हैं| बाद में सभी पुरुष और स्त्रियाँ प्रार्थनाएँ करते हैं और अल्लाह से अपनी लम्बी आयु के लिए दुआएँ माँगती है| वे कुरान भी पढ़ते हैं| यह रत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इस दिन अल्लाह अपने अनुयायियों की अगले साल की जिन्दगी का रास्ता निर्धारित करता है|

रमजान

मुसलमानों के धार्मिक पर्व में रमजान का महत्वपूर्ण स्थान होता है| लोग पूरे महीने रोज़ा रखते हैं| वे सुबह होने से पहले और सूरज ढलने के बाद भोजन कर सकते हैं, पर बीच में आशा की जाती है कि व्यक्ति अपना अधिकाधिक समय नमाज पढने और धार्मिक कार्यों में लगाए| इस महीने का छब्बीसवां दिन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है| क्योंकि इस न हजरत मुहम्मद की अल्लाह से कुरान मिली थी| इस दिन लोग नये कपडे पहनते हैं, कुरान और नमाज पढ़ते हैं| लोगों में बड़ा उत्साह दीख पड़ता हैं, सभी मुसलमान पुरुष स्त्रियाँ और बच्चे नमाज पढ़ते हैं और खुदा से दुआ

माँगते हैं| महीने भर के रोज़े उस दिन समाप्त होते हैं जब नया चाँद दिखाई देता है| दूसरे दिन ईदुल फितर के रूप में उसे मनाया जाता है|

ईद-उज-जुहा

जिल्हिज महीने के दसवें दिन यह त्यौहार मनाया जाता हैं| लोग बड़े सवेरे उठते हैं और बिना नाश्ता किए मस्जिद पर नमाज पढने जाते अं| घर लौटने पर वे खुदा के नाम पर बकरे की बलि देते हैं| नियम यह है कि परिवार के हर सदस्य के लिए एक बकरा काटा जाय, पर यदि यह आर्थिक दृष्टि से संभव न हो तो हरेक बायस्क के लिए एक बकरा काटा जाता है| इसे यह भी कई गरीब परिवारों के लिए कठिन होता है और वे पूरे परिवार की ओर से केवल एक बकरे की ही बलि देते हैं| बलि दिए गए बकरों का मांस पकाया जाता है और लोग तब नाश्ता करते हैं| तब वे अपने मित्रों से मिलने और अभिवादन करने जाते हैं| मांस के अतिरिक्त अन्य पकवान भी काफी मात्रा में आनाये जाते हैं और मित्रो और सम्बन्धियों को खिलाये जाते हैं|

जैनियों के त्यौहार

पर्युषण व्रत

यह भादुपद में प्रथम 15 दिन श्वेताम्बरों में और दूसरे पक्ष के 15 दिनों में दिगम्बरों में मनाया जाता है| इस अब्धि में जैन लोग दिन में केवल एक बार भोजन करते हैं और प्रतिदिन खाने की एक-एक चीज न खाने का संकल्प लेते हैं जैसे इतवार को नामक का प्रयोग नहीं होता| दिन

में कई बार पूजा की जाती है| अनेक सदाचार संबंधी विषयों पर प्रवचन एवं चर्चाएँ होती हैं जैसे सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य अ पालन, चोरी न करना इत्यादि|

सिखों के विविध त्यौहार

गुरु नानक का जन्म दिवस, लोधी आदि सिखों के मुख्य त्यौहार हैं|

ईसायों के त्यौहार

क्रिसमस

25 दिसंबर ईसा मसीहा की पूण्य जयन्ती का पर्व है| ईसाई मतानुयायी लोग इसे बड़ा दिन कहते हैं|

गुड फ्राईड़े

इसी दिन ईसा को फाँसी पर चढाया गया था| जो ईसाई धर्म में सबसे अधिक गंभीर माना जाता है|

ईस्टर

इस दिन ईसा मसीहा तिन दिनों की मृत्यु के बाद उत्थान कर बैठे थे| इन तीन दिनों तक उनका पार्थिव शरीर बिन्कुल निश्चेष्ट पड़ा रहा था| परंतु सारे दिन चैतन्य से सम्पन्न बने तब लोग बड़े प्रसन्न हुए| इसलिए यह त्यौहार ईसाई भाइयों के लिए सबसे महत्वपूर्ण त्यौहार माना जाता है|

किसान संस्कृति

भारत कृषको का देश है| कृषि करनेवाले ग्रामीण लोग किसान कहलाते है| किसान खेती करता है, वही उसकी जिन्दगी हिया| खेती करनेवाले सभी किसान गाँव में रहते है| इसलिए उनकी हालत गाँव की हालत से जुडी हुई है| खेती की फसल उसकी मेहनत का फल है| एक ऐसा कहावत है 'जितना गुड डालो उतना मीठा'| जितना ज्यादा मेहनत करो उतनी फसल अच्छी जाहिर है मेहनत के अ खेती में कुछ हो नहीं सकता| लेकिन आज किसानों की दशा अत्यधिक भयानक एवं चिंतनीय है| खेतों में कड़ी मेहनत करने वाला किसान बरसों से अधिकारों से वंचित ही रह चूका है| अक्सर उसके हिस्से में वेदना एवं उपेक्षा ही आई है| वे हाशियेकृत जिन्दगी जीने के लिए अभिशप्त हैं| कृषि इस देश की रीढ़ की हड्डी है लेकिन वही कमज़ोर है या कहें जोर रखी गई हैं| परिणाम स्वरूप आज भी देश का किसान जर्जर और फटेहाल जीवन जीने को अभीशप्त है|

किसान अपनी योति को बचाने के लिए हर तरह का संघर्ष करता है| लेकिन सूखा जैसी प्राकृतिक विपदाएं और कीड़ों के प्रकोप ने किसान की हालत को बदत्तर बना दिया है| लगातार ऐसी विपदाओं को झेलते हुए किसान टूट जाट है| सरकार कई योजनाओं की घोषणा करके लोगों के मन में उम्मीद जगाती है| लेकिन ब्याज की दरे बढाती जाती है और किस्सनों से बेरहमी से वसूल लिए जाते हैं| ऐसी हालत में लोग अपने

गाय-भैस बेच रहे है और नौजवान लड़के काम की तलाश शहर की ओर जा रहे हैं|

स्वतंत्र पूर्व भारतीय किसान सरकार जमींदार और साहूकार आदि नाना प्रकार के उत्पीडन के कारण परेशां और विपन्न होता जा रहा था| भूमि का स्वामित्व उसके पास नहीं था| तथा क प्रकार के करों के कारण अथवा प्रतिबंधो के कारण उसे खेत से बेदखल किया जा रह था| वह भूमिहीन होता जा रहा था| स्वतंत्रता के ह्चत जमींदारी उन्मूलन के फलस्वरूप भले ही उसे जमीन का मालिक का हक़ मिल गया है पर वह जमीन ही उसके लिए अनेक विपत्तियों और समस्याओं का कारण बन गई हैं| उपजाऊ ज़मीन सरकारी नीतियों के चलते किसान के हाथ से निकलती जा रही है| हरित क्रांति भी किसान विरोधी सिद्ध हुई| शहरों के विस्तार, सरकारी तथा गैर सरकारी और प्राकृतिक प्रकोपों ने किसान की कमर तोड़ दी और उसे दार बना दिया है| इसलिए आज किसान अपनी संतानों को खेती किसानी के काम में नहीं लगाना चाहता| आज सब कुछ बाज़ार द्वारा संचालित हो रहा है और बाज़ार को सत्ता बाज़ार संचालित कर रहा है| इसलिए किस्सनों के बीच भी मुनाफा कमाने के लिए और बाज़ार के अनुरूप अपनी खेती करने के लिए, पैदावार बढाने के लिए कर्ज लेकर खेती करने का एक खतरनाक खेल चल रहा है और बाज़ार किसान की उपज के साथ खिलवाड़ कर रहा है| किसान फसल बर्बाद हो जाने के कारण, उपज का उचित मूल्य न मिलने के कारण और

कर्ज न चूका पाने के कारण आत्महत्या कर रहा है| यह आज के किसान के जीवन का सच है|

प्रकृति

प्रकृति आदिकाल से ही मानव की चिर सहचरी रही हिया| उसकी आँख प्रकृति की गोद ही खुली थी| वही खेल कूद कर वह बड़ा हुआ और अंत में उसी के आलिंगन में आबहु होकर चिर निद्रा में सोता रहा|

प्रकृति के विचित्र क्रिया कलापों से व्यक्ति की भावनाओं, भी, विस्मय, प्रेम आदि का आविभिव हुआ, उसी की नियमित्ता को देखकर उसके मस्तिष्क में ज्ञान विज्ञान एवं बुद्धि का विकास हुआ| प्रकृति और मानव की परस्पर निर्भरता और घनिष्ठता की अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन, साहित्य और कला के आरा 'युग-युगांतर से चली आ रही है| ऋषि मुनियों ने वैदिक काल में ही मारुत, इंद्र, वरुण, सूर्य, चन्द्र, गिरी, रीता, वन, उपवन आदि गतिशील जीवंत प्राकृतिक रूपों का वर्णन किया है|

लोकजीवन का वातावरण पुर्णतः प्रकृति के सत—आनंदमय रूप से बनता है| प्रकृति के हर रूप परिवर्तन पर मन में जो भावनाओं का आरोह होता है, वही इनके वातावरण को रचता है| वसंत में पुष्पों का विकास और उनकी सुगंध, शीतालमंद बयार, यहूँ और वृक्ष लताओं की नवीनता, ग्रीष्म में धरा और आकाश में ज्वाला, पशु पक्षियों तक को छाया की खोज, पावस में घटाओं की छटा और रिमझिम वर्षा, शरद में शीतलता और खंजन पक्षी के दर्शन, हेमंद में तुषार और शीतल बयार एवं शिशिर

में सूर्य की गर्मी और कमी चक्रवाक-चक्रवाकी की पीड़ा तथा शीत की अधिकता प्रेम गाथा की अनुरंजित इतिवृत्तात्मकता में विशेष हृदयगृहिणी हो जाती है| प्रकृति में लोकजीवन के सहज संस्कार पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहते है|

भाषा

लोकजीवन की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है| भाषा वह सूत्र है जो जनता से सम्पर्क बनवाता है| लोक भाषा लोक की गुंजायमान नाद शक्ति है| लोक भाषा लोक की सह धामिनी और लोक संस्कृति की कुशल प्रक्कता होती है| यह लोक भाषा ही तो हम लोक संस्कृति का उज्वल दर्पण कह सकते हैं|

लोक भाषा अभिजात्य, पांडित्य शास्त्रीय आर परजीवी आधुनिकतावाद से अलग लोकचेतना का साक्ष्य देती है| लोकजीवन परिवेश तथा लोक मानस में होनेवाली हलचलों को पकड़ने केलिए लोक भाषा की जरूरत है| लोक भाषा का संबंध सीधा लोक और लोक जीवन से होता है, इसलिए उसमे सहजता होती है|

वास्तव में लोक भाषा केवल ति का ही साधन नहीं है, वह सांस्कृतिक विकास और विस्तार का भी माध्यम होती है| लोक भाषा लोक साहित्य और लोक संस्कृति की त्रयी मिलकर हमारी सभ्यता का सृजन एवं निर्धारण करती है| उसे लोक कल्याणकारी भावों से अभिषेकित कर लोकाचार्ण की शुद्धता की पुष्टि करती है| संक्षेप में

लोकजीवन के सभी अंगों का क्रमबह अवलोकन कटे हुए उसका युग सापेक्ष विश्लेषण करना ही लोकतात्विक अध्ययन का लक्ष्य है|

****

समकालीन कविता में लोकजीवन

वर्तमान उपभोगवादी संस्कृति में पूँजीपतियों द्वारा सर्वहारा वर्ग का शोषण- दमन, बेरोज़गारी, महंगाई, मज़दूरों को उचित तनख्वाह न देना, किसानों का उनकी ज़मीन से बेदखल करना जैसी जीवंत समस्याओं को उभारकर उन ताकतों के विरुद्ध सचेत होकर आवाज़ उठाने का प्रयास समकालीन साहित्य में देखा जा सकता है। समकालीन साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है। इसलिए समकालीन कविता उन लोकों के अनुभव और अनुभूतियों को लोकजीवन में दर्जे कर रही है। विज्ञान के बढते हुए प्रभाव ने लोकजीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन किया है।

लोक जीवन के संदर्भ में समकालीन कविता का अध्ययन करें तो एक महत्वपूर्ण बात हमारे सामने आती है कि समकालीन कविता में लोक का व्यापक संसार है। 'कविता का आज' आलेख में अरविन्द त्रिपाठी ने इस प्रकार कहा है कि- "इधर की कविता में लोकजीवन की कविता का उभार और उसका उत्तरोत्तर विकास कविता के इलके में सबसे बडी घटना है। लोक-संस्कृति आज कविता का सबसे बडा ट्रांसमीटर है। शहरी जीवन की ऊपरी आधुनिकता और उपभोक्तावाद के विरुद्ध लोकसंस्कृति से उपजी कविता इधर की कविता की केंद्रीय थीम बन गयी है"[1]। यह बात सही है कि समकालीन कविता में लोक जीवन व्यापक पैमाने पर उपस्थित है,

[1] नामवर सिंह, आलोचना जनवरी- मार्च 2001

यहाँ लोकजीवन के विभिन्न रूप द्रष्टव्य हैं। लोक जीवन के विभिन्न पक्षों को समकालीन कविता में विस्तार से अंकित किया गया है। भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप आज हमारी स्थानीय संस्कृतियाँ तेज़ी से विलुप्त होती जा रही हैं। इसलिए समकालीन कविता में परम्परागत संस्कृति के प्रति अनुराग एवं उसको सुरक्षित रखने की कोशिश भी दिखाई देती है।

समकालीन कवि विपुल मात्रा में लोक-राग और लोकजीवन की कविताएँ लिख रहे हैं। इन्हें केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, कुँवरनारायण, नागार्जुन, केदारनाथ सिंह की परंपरा में देखा जाना चाहिए। सूक्ष्म विश्लेषण क्षमता और लोकजीवन के प्रति गहरी अनुरक्ति ही इस कवि कर्म की मूल-स्रोत हो सकती हैं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपने कविताओं में अपनी गाँव तथा वहाँ के लोक जीवन का परिचय बखूबी ढंग से किया है, जो उनके लोकजीवन से गहरे लगाव का परिणाम है। 'शरणार्थी' कविता में कवि ने अपने गाँव का स्मरण करते हुए इस प्रकार कहा-

"काली आँधियों
और मूसलधार बरसात में
इन छोलदारियों में पडे

याद करने केलिए हमारे पास
और भी बहुत कुछ है-
एक खेत
एक अमराई
एक नदी
एक नाव
कुछ मछलियाँ
कुछ बच्चे
कुछ बुजुर्ग कुछ धर्मग्रंथ"[1]

यहाँ गाँव के साथ कवि के रीतिरिवाज़ और ग्रामीण सहजता को बहुत अच्छी ढंग से चित्रित किया गया है।

कुमार अंबुज ने भी लोकजीवन को बखूबी ढंग से अपनी कविताओं में चित्रित किया है। कुमार अंबुज की कविता 'इस नश्वर संसार में' सामान्य लोग या लोक किस प्रकार इस नश्वर संसार में बचाए रहते हैं इसकी ओर इशारा करती है।

"तमाम नश्वरता के बावजूद
भंगी अपनी झाड़ू बचा लेता है
धोबी अपने घाट का पत्थर

[1] सर्वेश्वर्दयाल सक्सेना, कुआनो नदी, पृ.74

एक भिस्ती बचा लेता है अपने औजार
और किसान गेहूँ की बाली
लोटा अपना घन
समय की छाती पर पटक देता है"[1]

'त्योहार और स्त्रियाँ' 'कविता में कुमार अंबुज ने त्योहार किस प्रकार लोकजीवन में खुशियाँ लाता है इसकी ओर इशारा करता है।

"त्योहार लाते हैं
रेशम-गाटे की कढी हुई साडियाँ
और बक्से में रखे आभूषण
स्त्रियों की देह पर
त्योहार जगाते है रात भर
कथा- कीर्तन के साथ उपवास कराते हैं
दिन भर काम करनेवाली स्त्रियों से"[2]

यहाँ लोकजीवन का यथार्थ रूप लोकराग में बदलने लगता है। व्रत, उपवास और त्योहार से संबन्धित अनेक विश्वास ,आस्थाएँ व परम्पराएँ लोकजीवन में हैं वे पूरे लोक जीवन के संचालक हैं।

---

[1] कुमार अंबुज, किवाड, पृ. 34

[2] कुमार अंबुज, किवाड, पृ. 82

कवि लीलाधर मंडलोई की अंदामान पर लिखी कविताओं में अछूते, अनपढ लोकों के जीवन का यथार्थ की कलात्मक परिणति और कठिन साधना तो है। मंडलोई अंदामान के लोक जीवन को समुद्र के साथ प्रस्तुत करते हैं। समुद्र की फंतासी अंदामान के लोकजीवन का समानंतर सच बन जाती है। अंदामान को समुद्र से काटकर नहीं देखा जा सकता, इनका पारस्परिक आदिम सम्बन्ध मंडलोई की कविता की एक प्रमुख विशेषता है। 'समुद्र की प्राथना' कविता में इस प्रकार नज़र आते हैं -

"हम गाते हैं
समुद्र की प्रार्थनाएँ
कि सलामत रहे 'केनो'
हम गाते हैं
समुद्र की प्रार्थनाएँ
कि सलामत रहे 'क्रालांडा'
हम गाते हैं
समुद्र की प्रार्थनाएँ
कि सलामत रहे 'चमेरे- बेर'
हम गाते हैं
समुद्र की प्रार्थनाएँ
कि सलामत रहे 'ता- चोई- चा-लोक'
हम गाते हैं

समुद्र की प्रार्थनाएँ

कि सलामत रहे समुद्र"[1]

द्वीपों, समुद्रों और समुद्र के किनारे रहनेवाले लोगों केलिए तो समुद्र ही उनकी आजीविका और जीवन का मुख्य आधार होता है। इसलिए उनकी दिनचर्या, खानपान, वेशभूषा, बोली बानी, सपनों, मान्यताओं और प्राथनाओं से समुद्र का गहरा रिश्ता है।

हिन्दी के समकालीन युवा कवि बोधिसत्व की अधिकांश कविताओं में ग्रामीण लोक जीवन के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं। बोधिसत्व ने 'माँ को पत्र' कविता में लोक की त्याग भावना को व्यक्त किया गया है।

"मैंने सपना देखा माँ!

तुम धान कूट रही हो

तुम आटा पीस रही हो

तुम उपरी पाथ रही हो

तुम बासन माँज रही हो

तुम सानी- पानी कर रही हो

तुम रहर दर रही हो

तुम उधरी फटी धोती सी रही हो

---

[1] लीलाधर मंडलोई, देखा- अदेखा, पृ. 88

तुम मुझे डाक से
कपडे सिलाने केलिए
रूपये भेज रही हो"[1]

कविता परम्परा, लोकाचार एवं संवेदना की प्रतिछाया है। इसलिए कवि की लोक निरीक्षण दृष्टि भी काफी नुकीली है। वह लोक जीवन के आँखों में झाँक- झाँक कर कविता लिख रहा है।'कविता मेरी नहीं' कविता में कवि आशा करते हैं कि-

"वे मेरी गहरी आँखों को
त्रिशूल से और मेरे मन को नेज़े से
नापना चाहते हैं
वे कह रहे हैं
मेरे प्यार न करूँ और
अपने घर को दिये की तरह जलाकर
उनकी आरती उतारूँ
और अपने बीबी- बच्चों को
उन पर कुर्बान कर
उनके गुन गाउँ"[2]।

---

[1] बोधिसत्व, सिर्फ कवि नहीं, पृ. 64

[2] बोधिसत्व, हम जो नदियों का संगम है, पृ.28

बोधिसत्व ने लोकजीवन के छोटा या बडा किसी भी प्रकार का संघर्ष ही कविता का विषय बनाया है। वे 'गाँव की बात' कविता में इस प्रकार कहते हैं-

"वह बहुत पुरानी एक रात
जिसमें संभव हर एक बात,
जिसमें अन्धड में छुपी बात,
सोई चूल्हे में जली रात,
वह बहुत सलोनी विकट रात।
जिसमें हाथों के पास हाथ
जिसमें माथे को छुए माथ,
जिसमें सोया वह वृद्ध ग्राम,
महुआ, बर्गद,पीपल व आम,
इक्का दुक्का जलते चिराग
पत्तल पर परसे भोग भाग"[1]।

हेमन्त कुकरेती समकालीन हिन्दी कविता के प्रतिनिधि कवियों में एक हैं। उनकी कवितायें लोककथात्मक वातावरण के साथ हमारे वर्तमान जीवन पर एक गहरी टिप्पणी बन जाती है। पहाड और शहर हेमंत कुकरेती की कविता की पृष्ठभूमि बनती है जो मानव जीवन की सिम्तें देख

[1] बोधिसत्व,खत्म नहीं होती बात,पृ.19

पाने की उत्कंठा रखने में सक्षम है।'चट्टान पर बकरियाँ', 'पहाड का बेटा मैं', 'पहाड की कथा', 'पहाड पर भूकम्प' आदि कविताओं में पहाड के लोकजीवन के कई रूप द्रष्टव्य है। 'चट्टान पर बकरियाँ' कविता में बकरियों को हाँकता हुआ आदमी को देखकर कवि अनुभव करता है-

"उसकी हाँक से
बकरियों की आँखों में
चाकू नहीं चमकता
न उन्हें दिखता है
खून से लथपथ पत्थर" [1]

यहाँ लोक जीवन में लहूलुहान समय झाँकता नजर आता है, पर टिक नहीं पाता। पहाड- सम्बन्धी कविताएँ पहाड की संघर्ष – कथा ही अधिक कहती हैं, पहाड के कठिन जीवन को उद्घाटित करती हैं। यहाँ कवि ने पहाड का जीवन किसी पर्यटक की दृष्टि से नहीं, पहाडवासियों की दृष्टि से देखा है।

"पहाड किताब नहीं पडता
बंजर को खून दे कर
जितना उपजाता है

[1] हेमंत कुकरेती, चलने से पहले, पृ. 31

उसकी पीता है टिंचरी

और अपने अधेड बालों से डर कर" [1]

पहाड के लोग परंपराप्रिय है। लेकिन वे जीवन में अकाल, बाढ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के बीच जीने केलिए विवश होते है। मंगलेश डबराल ने उनके जीवन की यथार्थ स्थिति को इस प्रकार व्यक्त किया है-

"दूर एक लालटेन जलती है पहाड पर

एक तेज आँख की तरह

टिमटिमाती धीरे-धीरे आग बनती हुई

देखो अपने गिरवी रखे हुए खेत

बिलखाती स्त्रियों के उतारे गये गहने

देखा भूख से बाढ से महामारी से मरे हुए

सारे लोग उभर आये हैं चट्टानों से

दोनों हाथों से बेशुमार बर्फ झाडकर

अपनी भूख को देखो

जो एक मुस्तैद पंजे में बदल रही है

और इच्छाएँ दाँत पैने कर रही हैं पत्थरों पर"[2]

कुमार विकल ने 'एक पहाडी यात्रा' कविता में पहाडी लोकजीवन का परिचय देता है-

---

[1] हेमंत कुकरेती, चलने से पहले, पृ.93

[2] मंगलेश डबराल,पहाड पर लालटेन, पृ. 65

"शहर को लौटूँगा तो
ले जाऊँगा
पलकों के बटुओं में सुरमई आकाश
थर्मस में झरने का जल
और जिस्म में एक पहाडी कस्बे की गंध"[1]

केदारनाथ सिंह 'एक लम्बे अंतराल के बाद गंगा को देखकर' कविता में कवि मछुआरे के संघर्षशील जीवन की सादगी को इस प्रकार व्यक्त किया है-

"अब बूढा ज़रा हिला
उसने अपना जाल उठाया
कन्धे पर रखा
चलने से पहले एक बार फिर
गंगा की ओर देखा
और मुस्कुराया
यह एक थके हुए बूढे मल्लाह की मुस्कान थी
जिसमें कोई पछतावा नहीं था

[1] कुमार विकल, संपूर्ण कविताएँ , पृ. 24

अगर थी तो एक सच्ची

और गहरी कृतज्ञता

बहते हुए चंचल जल के प्रति" [1]

'एक छोटा सा अनुरोध' कविता में कवि यों चिंतित हैं-

" चावल ज़रूरी हैं

ज़रूरी है आटा दाल नमक पुदीना

पर क्यों न ऐसा हो कि आज शाम

हम सीधे वहीं पहूँचें

एकदम वहीं

जहाँ चावल

दाना बनने से पहले

सुगन्ध की पीडा से छटपटा रहा हो"[2]

यहाँ कवि केदारनाथ सिंह अपनी व्यस्तताओं से घिरे नगर में रहनेवाले लोगों से अनुरोध करता है कि वे धान की मंजरियों की तरफ चलें। श्रम के प्रति सम्मान का भाव रखनेवाले कवि की यह प्रस्तावना है कि बाज़ार को हम बीच में न आने दें और सीधे, बिना किसी मध्यस्थ के उस सुगन्ध तक पहूँचे जो गंवई परिवेश की आत्मा है।

---

[1] केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, पृ. 37

[2] केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, पृ. 13

गाँववाले हमेशा आस्थावान है। आज नहीं तो कल या परसों मानवीय संस्कारों की जीत होगी और बार- बार धोखा खाने के बाद भी उनके इस विश्वास में कमी नहीं होती, 'सूर्यास्त के बाद एक अँधेरी बस्ती से गुज़रते हुए' कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए-

"भर लो
ताकती हुई आँखों का
अथाह सन्नाटा
सिवानों पर स्यारों के
फेंकरने की आवाज़ें
बिच्छुओं के
उठे हुए डंकों की
सारी बेचैनी
आत्मा में भर लो"[1]

यहाँ भी एक बेचैनी के बोध के साथ यह बात स्पष्ट होती है कि गाँव का जीवन कितना संघर्षपूर्ण एवं दुख भरा है। लोक जीवन के ऐश्वर्य के साथ उसकी पीडा का स्वीकार कवि के प्रशस्त सरोकारों का प्रमाण है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का धीरे- धीरे अप्रासंगिक होना और शहर में समस्त सुविधाओं को केन्द्रित होते जाना भारतीय समाज की अप्रिय सचाई है। गाँव से शहर की ओर लोगों का पलायन इसी प्रक्रिया से जुडा

[1] केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, पृ. 16

हुआ है।इस मजबूरी के कारण जीवन में बहुत अर्थवान चीज़ें पीछे छूट जाती हैं लेकिन स्मृतियों में से साथ- साथ चलती हैं-

"कि इतने दिनों बाद भी
मुझे क्यों याद है
एक बूढे उदास गडरिये का चेहरा
जिसे मैंने एक दिन नदि में
पडा हुआ देखा था
जहाँ उसकी भेडें पानी पी रही थीं
मैंने देखा
उस चेहरे की झुर्रियों में
अब भी जगह थी
जहाँ एक चिडिया
घोंसला बना सकती थी"[1]

एकांत श्रीवास्तव ने 'मेले में' कविता में भीड में अपनेपन के खोने की पीडा है। क्योंकि इसमें वह व्यावसायिकता चल रहा है। जिसमें जीवन नहीं है। भीड जन्य मेले में सामानें हैं। आदमी नहीं है। धूल है, लेकिन मिट्टी नहीं हैं। इसलिए कवि कहता है-

[1] केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, पृ. 100

"न मैं भटका न खोया
अगर कुछ खोया तो बस एक घर
इस मेले में
जिसे मैं आज तक ढूँढ नहीं पाया"[1]

एकांत श्रीवास्तव के 'घर' कविता में कवि ने घर के प्रति अपना प्यार व्यक्त किया है।

"यह घर
हमारा सबसे आत्मीय परिजन
हर दु:ख हर सुख में जो रहा हरदम हमारे साथ
क्या इतनी आसानी से गिर जायेगा
जो घर
मैं तुझे गिरने नहीं दूँगा"[2]

जिन लोगों के दिल में अपने ग्रामीण जीवन का अनुभव हो वो गाँव से शहर जाते हुए भी उनके दिल से यही विचार कभी नष्ट नहीं होगा। कवि कुमार कृष्ण अपने गाँव की ज़िन्दगी को अच्छी तरह पहचानता है। कवि कहता है-

"कुमार कृष्ण अच्छी तरह जानता है

---

[1] एकांत श्रीवास्तव, अन्न हैं मेरे शब्द, पृ. 29

[2] एकांतश्रीवास्तव, अन्न हैं मेरे शब्द, पृ. 44,45

बर्फ का बीजगणित,पट्टू का इतिहास
पुआल का ताप, देवदारू के जीवनानुभव की गरमाहट
खेत-खलिहान, पगडण्डियों का व्याकरण
बैलों के कन्धों की सूजन
घराट का पसीना, कठफोडे की भूख"[1]

वैशाली नामक एक कॉलनी में कवि विजेन्द्र रहता है। वहाँ के लोक जीवन का परिचय कवि 'भला नगर है' कविता में इस प्रकार किया है-

" नहीं हो कुछ भी, हर रोज नए भवन उठ रहे
चरती भेडें, बकरी गाएँ, खेत नहीं हैं
दूर-दूर तक कहीं आकडे, बबूल कहीं हैं
उगते जो बिन देखे भाले, ठाठ ठठ रहे
पैसे वालों के, श्रमिक ठंड में नित ठिठुरे हैं
नहीं पौष्टिक भोजन उनको सूखे गुठरे हैं"[2]

चाँदपोल जयपुर के एक ऐतिहासिक द्वार है और सोडाला वहाँ की एक प्रसिद्ध कॉलनी है। वहाँ के श्रमिक लोगों के जीवन का परिचय विजेन्द्र ने 'दिन ढला' कविता में इस प्रकार किया है-

---

[1] कुमार कृष्ण, गाँव का बीजगणित,पृ.35

[2] विजेन्द्र, उदित क्षितिज पर, पृ. 108

"टैम्पो लदकर चाँदपोल से सोडाला है
मुझे असुविधा होती, औजार सने हैं
उनके। गंदे कपडे हैं। पडा अब पाला है
सच से। भद्र महिलाएँ अलकस में घने हैं
उनके बाल खुले गोडों पर। मन इंठता है
नहीं कहा कुछ। चेहरे तपे हुए हैं अथक
विश्वासी हैं। लोहा फुकता है, बजता है
टीन कनस्तर टूटा खड- खड। नहीं निरथक"[1]

कूपलेन नामक बस्ती कुएँ की गहराई में बसी है। कवि मदन कश्यप ने 'कूपलेन में अँधेरा' कविता में वहाँ के लोक जीवन का परिचय यहाँ व्यक्त किया है-

"यहाँ बिजली हमेशा गायब रहती है
(जबकि अधिकांश घरों में
बिजली लगी भी नहीं है)
यहाँ पीने के पानी का ट्रक
सप्ताह में सिर्फ एक बार आता है
यहाँ मकानों की मरम्मत
कभी नहीं की जाती

[1] विजेन्द्र, उदित क्षितिज पर,पृ.112

यहाँ सफेद कपडों में सिर्फ

सूदखोर आते हैं

यहाँ सिर्फ मज्दूर रहते हैं

भूख केलिए रोटियाँ जुटाने

और रोटियों केलिए

खदानों में हड्डियाँ तुडाने को मजबूर

यहाँ सिर्फ मजदूर रहते हैं"[1]

कुमार विकल के 'स्मृति और सुगन्ध के बीच' कविता में -

"खेतों में तीतर - बटेरों को पकडना

बेरियों पर चढना- उतरना

तोतों की तरह

खट्टे- मीठे बेरों को चखना

बरीमाम के मेले से लौट रहे

गबरू जवानों की लोकतानों को सुनना

और बहुत दूर – दूर तक

उनकी करांचियों के अंडे चुराना"[2]

---

[1] मदन कश्यप, लेकिन उदास है पृथ्वी,पृ. 92

[2] कुमार विकल, संपूर्ण कविताएँ, पृ. 237

ज्ञानेन्द्रपति की कविता ग्रामीणोन्मुख लोक- जीवन की कविता है। अपने गाँव के प्रति कवि की दृष्टि यथार्थपरक है। बदलते समय के साथ गाँव भी बदलता जा रहा है, ग्रामीण जीवन बदलता जा रहा है, यह तथ्य कवि की दृष्टि से ओझल नहीं है। 'गाँव का घर' कविता में कवि देखता है -

" गाँव का वह घर
अपना गाँव खो चुका है
पंचायती राज में जैसे खो गए पंच परमेश्वर
बिजली- बत्तीआ गई कब की, बनी रहने से अधिक गई रहनेवाली" [1]

यह बदलता हुआ गाँव है। जहाँ विशुद्ध प्राकृतिक जीवन अब नहीं रहा। ग्रामीण लोक जीवन में परिवर्तन हुआ है।

रीतिरिवाज़

लोक मानस में नाना प्रकार के परम्परा- प्रथित रीति- रिवाज़ प्रचलित हैं। इनके प्रति लोगों की धारणा भी प्रगाढ है। वे समझते हैं कि समाज में इनसे अलग रहकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व की कोई कल्पना नहीं कर सकता। उनका जीवन भिन्न- भिन्न प्रकार के लोकाचारों और लोकसंस्कारों से गढता चला जाता है। दैनिक जीवन में अनेक लोक रूढिग्रस्त रीति- रिवाज़ देखने को मिलते हैं। लोक मानस को अपने जन्म

[1] ज्ञानेन्द्रपति, संशयात्मा, पृ. 16

से लेकर मृत्यु तक अनेक रीति-रिवाज़ों, संस्कारों और अचारों के मध्य से गुज़रना पडता है

पाकिस्तान के कबाएली समाज का एक रिवाज़ है, जिसमें बाप भाई चचा किसी का कत्ल कर दे तो उसको माफ कराने केलिए कातिल के घर की बेटी बहन या भतीजी मकतूल के किसी करीबी रिश्तेदारों को ब्याह दी जाती है। पवन करण ने 'सवारा' नामक कविता में यों व्यक्त किया है-

"तेरी ये कैसी वीरता मेरे वीरन
अपने नाम केलिए
ले लेता तू किसी की जान
और जान बचाने केलिए अपनी
सवारा में मुझे सौंप देता
ज़िन्दगी भर दुश्मन के यहाँ खपने"[1]

पवनकरण के 'गुल्लक' शीर्षक कविता में एक बिटिया के बचपन से लेकर शादी तक की ज़िन्दगी के बारे में बताया गया है।

"बिटिया बडे जतन से सिक्के जोड़ती
कान से सटाकर देखती बजाकर
गुल्लक में सिक्के खन-खन करते" [2]

---

[1] पवन करण, कहना नहीं आता,पृ.43

[2] पवन करण, एस तरह मैं', पृ.75

गुल्लक शब्द पुरानी बातों को याद दिलानेवाला श्ब्द है। आजकल गुल्लक भरनेवाली लडकियाँ बहुत कम हैं। सभी आधुनिक सुविधाओं का इस्तेमाल करती है । इस तरह नष्ट होती प्रथाओं का जिक्र इस कविता में किया है।

लोक संस्कृति

ग्रामीणों का घुल मिलना और परंपरागत जीवन की ओर इशारा करना पवन करण की कविताओं की एक प्रमुख विशेषता है। 'त्योहार मनाने घर जाता आदमी' कविता विशेष अवसर पर घर आना, घर व अपने घरवालों से जा मिलने केलिए बेताब आदमी का जिक्र किया गया है। विशेष अवसर पर घर वालों के बिना मनाना उस केलिए असंभव है।

"लगता है त्योहार के बाद
उसका मन काम में लगेगा,
महसूस होता है
त्योहार का मजा घर पर ही है
घर के बिना कैसा त्योहार"[1]

कवि के अनुसार पढे लिखे होने और खुद की कमाई शुरुआत करने पर भी आदमी को घर परिवार जैसी संकल्पनाओं से मुक्ति नहीं है।

हमारी संस्कृति का परिचय मिलता है इन पंक्तियों में-

---

[1] पवन करण, इस तरह मैं, पृ. 66

"बरामदे भीतर रसोई तक
पर पहचानना मुश्किल है अपना ही घर
अपना ही मुहल्ला लगेगा अनजान
खुदाई में निकली किसी लुप्त सभ्यता का ध्वंसावशेष"[1]

ग्रामीण जीवन में पीढा का बहुत बडा स्थान है। जितेन्द्र श्रीवास्तव ने इस का जिक्र इस प्रकार किया है-

"पीढा प्रतीक था सम्मान का
घर आये मेहमान को ऊँचा पीढा मिलता था
दुश्मन को भी"[2]

अरुण कमल ने अपनी कविता 'इक्कीसवीं शताब्दी की ओर' में निकट भविष्य में जो होना नहीं है उन सबके होने की सूचना दी है।

"हर नदी का घाट श्मशान
हर बगीचा कब्रिस्तान बन रहा है
और हम इक्कीसवीं शताब्दी की ओर जा रहे हैं"[3]

केदारनाथ सिंह ने पानी में घिरे हुए लोग में इस प्रकार कहा है-

"पानी में घिरे हुए लोग
अपने साथ ले आते हैं पुआल की गन्ध

---

[1] अरुण कमल, नये इलाके में, पृ.17

[2] जितेन्द्र श्रीवास्तव, असुन्दर सुन्दर, पृ. 33

[3] अरुण कमल, सबूत, पृ. 76

वे ले आते हैं आम की गुठलियाँ

खाली टिन

भुने हुए चने

वे ले आतेहैं चिलम और आग"[1]

खोडला गाँव से संबन्धित एक श्रुति है ऐसा दुर्भाग्यशाली गाँव जिसका नाम लेने से अपसगुन होता है।

"इस इलाके का सबसे अच्छा आलू होता था वहाँ

वहाँ मोटे सूत की दरियाँ बनाई जाती थीं

जिन्हें डोरिया कहा जाता था

और दूर दूर तक उसकी माँग थी

अच्छी ज़मीन थी और कुओं में पानी था

रात गये बाज़ार में सट्टा खेलते लोगों को देखो

तो पता चलता था कि लोगों की अंटी में पैसा है

पर उस गाँव का नाम मत पूछो

उस गाँव का नाम नहीं लिया जाता"[2]

लोकविश्वास

प्रत्येक समाज में कुछ चिरंतन लोकविश्वास और मान्यताएँ प्रचलित होती हैं जो उस समाज की संस्कृति का अभिन्न अंग मानी जाती

---

[1] केदारनाथ सिंह, यहाँ से देखो,पृ.17

[2] राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच, पृ.64

है। इन लोकविश्वासों की जडें जन मानस में बहुत गहरे फैली हुई हैं। वास्तव में लोकविश्वास तथ्यात्मक नहीं हो सकता। वह हमें आगे की ओर बढाने से रोकता है। उसमें गतिशीलता नहीं होती। उसके ज़रिए समाज में जीना मुश्किल है।

विमल कुमार ने 'तारे और मनुष्य' कविता में हमारे लोकजीवन में प्रचलित एक लोकविश्वास को इस प्रकार व्यक्त किया है-

"बस इतना भर जानते हैं कि मनुष्य मरने के बाद
कोई तारा बन जाता है
और तारे मरने के बाद
धरती पर मनुष्य के रूप में जन्म लेते हैं"[1]

कुकरेतीजी ने 'हत्या' नामक कविता में उत्तराखंड में व्याप्त जनविश्वास को व्यक्त किया है।

"देवता क्रोध की तरह आते हैं छा जाते हैं मुसीबत की तरह
जिस पर कृपा करते हैं उसका कपाल फोडकर
सौभाग्य उतरता है
और सब उसकी आँच से हो जाती हैं ऊष्मित"[2]

यहाँ अतृप्त पूर्वज 'हत्या' नामक एक विशिष्ट नृत्यगान के माध्यम से अपना रोष कवि व्यक्त करते हैं।

लोक विश्वास यह भी है कि सामान्य दिनों में पशु- पक्षियों

---

[1] विमल कुमार,पानी का दुखडा, पृ.19
[2] हेमंत कुकरेती, चाँद पर नाव, पृ. 40

केलिए पानी की व्यवस्था रखनी चाहिए, एक प्राकृतिक परिवेशगत विकास केलिए और दूसरे आध्यात्मिक पुण्य लाभ केलिए। अकाल के दिनों में यह व्यवस्था और भी जायज हो जाती है। 'अकाल में सारस' का दृश्यलोक है कि दिन के तीन बजे वे सारस आए। एक के बाद धीरे-धीरे सारा आसमान उनकी क्रेंकार से भर गया। वे देर तक शहर की परिक्रमा करते रहे। अचानक एक बुढिया ने उन्हें देखा और सोचा कि वे जरूर पानी की तलाश में आए हैं। विगत पीढी के लोग प्रकृति और परिवेश से पशु और प्राणी जगत के आपसी सम्बन्धों के कायल रहे हैं। लोकचेतना और लोकविश्वास के अनुकूल प्यासे पक्षियों कीए तृष्णा शांत करने वह रसोई में जाकर आँगन के बीचोंबीचों एक जल भरा कटोरा रख देती है।

"लेकिन सारस
उसी तरह करते रहे
शहर की परिक्रमा
न तो उन्होंने बुढिया को देखा
न जल भर कटोरे को"[1]

कुमार विकल ने 'एक बूढी औरत से संवाद' नामक कविता में उनके गाँव में प्रचलित एक प्रकार का विश्वास को व्यक्त किया है। बचपन में जो बच्चे जुगुनुओं को दियासलाई की डिबियों में बंद कर लेता था तो वे बडे होकर अपने जीवन में कभी सुख नहीं पाते ।

---

[1] केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, पृ. 23

"जो बच्चे जुगुनुओं को इस तरह सताते हैं
वे बडे होकर
ज़िन्दगी में कभी सुख नहीं पाते हैं
केवल सुखों की सूचियाँ बनाते हैं"[1]

वास्तव में यह एक खेल है बच्चों का। लेकिन लोग इसको उसी प्रकार स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं हैं।

त्योहार

भारतीय संस्कृति विभिन्न त्योहारों से जुडा हुआ है। हिन्दू-मुसलमान,सिख,इसाई को अपने धार्मिक त्योहार होते हैं। इस में यज्ञ, पर्व, और उत्सव सब शामिल हैं। खासतौर पर लोकजीवन में उत्सवों की अभिव्यक्ति छोटे- छोटे तीज - त्योहारों में अब भी देखी जा सकती है। त्योहारों से आध्यात्मिक सरसता बलवत होती है।"त्योहार केलिए सामान्यत: 'पर्व' शब्द का प्रयोग भी होता है। पर्व श्ब्द का संबन्ध शुभ मुहूर्तों, लग्नों अथवा क्षणों के योग से है। मिलन के उन मुहूर्तों में अथवा संक्रांतियों में धर्म, पुण्य अथवा दान का विशेष महत्व माना गया है"।[2] विशेष रूप से ये त्योहार ऋतु परिवर्तन के द्योतक हैं। जैसे कि दीपावली वर्षांत की तथा शरदागमन की सूचना देती है तो होली ग्रीष्म की ओर संकेत है। इस प्रकार की बहुत सारे त्योहार प्रकृति की सानुकूलता पाने

---

[1] कुमार विकल, संपूर्ण कविताएँ, पृ. 226

[2] डॉ जयनारायण कोशिक, हमारे तीज- त्योहार और मेल, पृ. 2

केलिए निरंतर मनाए जाते हैं। हर त्योहार का अपना महत्व है। त्योहार एकता, भाईचारा, हेल-मेल आदि का प्रतीक है। साथ ही हमारी संस्कृति का परिचायक भी है।

कार्तिक पूर्णिमा

इस दिन भगवान शंकर ने त्रिपुरासुर नामक राक्षस को मारा था। इसीलिए इसे त्रिपुरी पूर्णिमा भी कहते हैं। उस दिन गंगा स्नान और सायंकाल के समय दीपदान का बडा महत्व माना जाता है।

"आज सिरा रहे हैं लोग
दोने में धरकर अपने- अपने दिये
अपने- अपने फूल
और मन्नतों की पीली रोशनी में
चमक रही है नदी" [1]

त्योहारों में नारी का जो संबन्ध है वह तीज हो, गनगैर हो, करवाचौथ हो,अहोई अष्टमी हो या कार्तिक पूर्णिमा हो। परिवार के सदस्यों केलिए मंगल भावनाएँ भी जुडी रहती है। एकांत श्रीवास्तव ने 'कार्तिक स्नान करनेवाली लडकियाँ' कविता में इस प्रकार कहा है-

---

[1] एकांत श्रीवास्तव- अन्न है मेरा शब्द-पृ. 15

"तालाब के गुनगुने जल में
नहाती हुई लडकियाँ हँसती हैं
छेडती हैं एक – दूसरे को
मारती हैं छींटे
और लेती हैं सबके मन की थाह
इतना- इतना सोना चढाकर मुँह अँधेरे
अपने भोले बाबा से
क्या माँगती हैं लडकियाँ?"[1]

बारहमासा

बारहमासा का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है-

"तुम हो
कि चैत-बैशाख की धूल भरी यात्रा में
मीठे जल की कोई नदी
या जेठ की दोपहरी में
नस- नस जुडाती आम्रवन की ठंडक" [2]

---

[1] एकांत श्रीवास्तव, अन्न है मेरे शब्द, पृ.19

[2] एकांत श्रीवास्तव, अन्न है मेरे शब्द, पृ.58

आखातीज

घोर आर्थिक संकट और बीमारियों से जूझती प्रसिद्ध गुड्डे –गुडिया बनानेवाली अंतार्राष्ट्रीय कलाकार है बत्तो बाई। आज गुड्डे –गुडिया बनानेवाले कलाकारों की स्थिति बहुत दयनीय है। बत्तो भाई सिर्फ एक गुड्डे –गुडिया ही नहीं बनाती बल्कि एक परम्परा रचती है।यह बनाने का तरीका उसको अपनी माँ से मिला है। आखातीज जो बत्तो से शुरु हुआ एक त्योहार है।

"एक त्योहार जिसे
अखातीज के नाम से
जाना जाता है
जान पड्ता है
बत्तो से शुरू हुआ"[1]

कवि पवन करण ग्वालियर प्रदेश से है, इसी कारण वहाँ की प्रादेशिक त्योहार की झलक उनकी कविताओं में देखने को मिलती है। अखातीज के समय लोग गुड्डे –गुडियों की शकलें पहने हुए घर- घर में पहूँचते है। इसमें बत्तो के बूढा चेहरा झाँकता हुआ दिखाई देता है।

भादो एकादशी

भादो एकादशी के दिन का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है।

---

[1] पवनकरण,इस तरह मैं, पृ.44

"चाँदनी में हिलती है परछाईं
कन्धों से कन्धों पर बँधते हैं हाथ
बँधती है पंखुडी से पंखुडी
जल की धार-सा फूट्ता है
एक साथ कण्ठों से राग"[1]

धनतेरस

कार्तिक कृष्णपक्षत्रयोदशी का दिन है। उस दिन लोग लक्षमी पूजा करती हैं। इस दिन वर्णन अरुण कमल ने यों दिया है-

"आज धनतेरस है
नये- नये बर्तन खरीदने का दिन
और आज ही हमारा अपने आखिरी बर्तन लिये
धूम रहे हैं दुकान- दुकान"[2]

ईद

ईद मुसलमानों का धार्मिक त्योहार है। इस त्योहार का असली नाम ईद-उल फितर है। यह पर्व मुसलमानों के हिजरी वर्ष के रमज़ान के महीने की समाप्ति पर मनाया जाता है। रमज़ान के दिनों में मुसलमान उपवास रहते है। महीने भर के उपवास के बाद ईद का चाँद नज़र आते ही लोगों में खुशी की लहर दौड आती है। सचमुच यह त्योहार भाईचारे का संदेश देता

---

[1] अरुण कमल, अपनी केवल धार , पृ.58
[2] अरुण कमल, सबूत, पृ. 35

है। ईद हर्ष और उल्लास का त्योहार है।

"वो जो कल रात-रात तक बैलूनों का पेड लिए बेचते फिर
वो जो बाँसुरी पिपिहरी कंधे पर लादे गली- गली घूमे
वो बेवा का बेटा मोअज्जिन जिसकी अजान पर नमाजी
टोपियाँ सँभालते मस्जिदों को दौडे
और वो खुश लड्कियाँ औरतें जिन्होंने देर रात तक
चूडियों की दूकानें गुलजार कीं, बहुत देर बुरका हटाए रहीं
और वो रिक्शा वाले जिन्होंने ईद की सेवएयाँ जुटाने में
रोजा भी छोडा-
सब को ईद मुबारक"[1]

करवा चौथ

उदय प्रकाश ने 'औरतें' कविता में करवाचौथ का व्रत लेने वाली एक औरत का वर्णन किया है-

"वह औरत जो सुहागन बने रहने केलिए रखे हुए है करवा चौध का निर्जल
व्रत"[2]

हेमंत कुकरेती ने इसका जिक्र इस प्रकार किया-

"अग्नि और चन्द्रमा और जाने किस-किसको

---

[1] अरुण कमल, सबूत, पृ. 14

[2] उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम पृ. 31

खुश होती हैं कि आकाश तक पहूँचता होगा उनका हाहाकार

जिसे सोख लेंगे बादल" [1]

रमज़ान

यह मुसलमानों का एक धार्मिक त्योहार है। राजेश जोशी ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है-

"रमज़ान मियाँ

रमज़ान मियाँ

'भोत दिनों में दिखे रमज़ान मियाँ'

'इत्ते दिन काँ रिये रमज़ान मियाँ'

'किया दुश्मनों की तबिअत नासाज थी'

'किया कोई खास बातथी!'

'सब खेरिअत तो हे....?

.....

.....

'अल्लाह का फज़ल है'

सबके जवाब में

हर बार यही कहते हैं

रमज़ान मियाँ"[2]

---

[1] हेमंत कुकरेती, चाँद पर नाव, पृ. 37

[2] राजेश जोशी, एक दिन बोलेंगे पेड, पृ. 85

मकर संक्रांति

संक्रांति का अर्थ है एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना। सूर्य एक राशि से दूसरी राशि पर जाता है तो उस दिन संक्रांति आती है। सूर्य जब धनराशि से मकर राशि पर पहूँचता तो मकरसंक्रांति होती है। मकरसंक्रांति के दिन का वर्णन विजेन्द्र ने 'मकर संक्रान्ति' कविता में यों व्यक्त किया है-

"मकर संक्रांति का पर्व अजब है, जाडा है
भारी, बँधी किटकिटी दाँतों की, ठिठुरी
है अंगुली, हवा कडाके की है, निठुरी
धूप क्जिलकनी मध्यम लगती, ठंडा है"[1]

खान- पान

कुमार विकल ने पंजाबी लोगों के खान पान का वर्णन इस प्रकार किया है।

"आलू- मटर की सब्जी
गरीब पंजाबी की सबसे अमीर सब्जी
गरीब आदमी
जब सफर पे जाता है
चार परांठे
और आलू- मटर की अब्जी

[1] विजेन्द्र, उदित क्षितिज पर,पृ.128

ज़रूर साथ मेंले जाता है

लेकिन जब घर वापस आता है

किसी धर्मशाला

या सराय में खाई हुई

आलू- मटर की सब्जी का स्वाद

अपने साथ ज़रूर वापस लाता है"[1]

वेशभूषा

फटे-पुराने वस्त्रों से सोने केलिए बनाये गये तलाई और रजाईनुमा वस्त्र को लेवा कहते हैं।

"लेवा

दादा-दादी, माँ-बाप,भाई-बहन, पत्नी और बच्चों के

फटे- पुराने चीथडों का अजायबघर है"[2]

लोककथा

लोक जीवन में लोककथाओं का बडा महत्व होता है।पंचतंत्र और हितोपदेश के देश भारत में शिष्ट परंपरा और लोकपरंपरा के समन्वय से सामाजिक संस्कृति का निर्माण हुआ है।अरुण कमल की लोककथा नामक कविता में ऐसा होता है कि किसान का बेटा अपने घर में रात के तीसरे पहर डकैतों से जूझता मारा जाता है। सुबह अर्थी उठाते समय खुद

---

[1] कुमार विकल, संपूर्ण कविताएँ, पृ. 206

[2] कुमार कृष्ण, गाँव का बीजगणित,पृ.16

किसान और बूढा बाप तथा छोटा बेटा ही था।

"फिर भी एक कन्धा कम पड रहा था
पर गाँव का एक भी आद्मी नहीं आया
सबने सोचा डकैत बुरा मान जायेंगे" [1]

सोनचिरई सामंती एवं रूढिवादी व्यवस्था को छिन्न- भिन्न करती एक ऐसा औरत है जो हमारी लोक परंपरा में सन्निहित प्रगतिगामी चेतना को सामने ले आती है। वह भारतीय समाज में व्याप्त रूढियों को तोडनेवाली औरत है। संतान या कुलदीपक पुत्र के मोह में दुख आज के स्त्रियों का भी सचाई है।कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव लोक परंपरा से सोनचिरई नामक औरत को लेकर सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करता है।

"बहुत पुरानी कथा है
एक भरे पूरे घर में एक लडकी थी सोनचिरई
वह हँसती थी
तो धूप होती थी
फूल खिलते थे
वह चलती थी
तो वसंती हवा चलती थी" [2]

---

[1] अरुण कमल, नये इलाके में, पृ.

[2] जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा, पृ. 31

बाघ संग्रह में केदारनाथ सिंह ने लोककथाओं और बाघ के मिथ को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। बाघ का लोकजीवन से बेहद विशिष्ट संबन्ध है। स्वयं कवि के शब्दों में – "दरअसल बाघ का बिम्ब आया हो लोकजीवन से है, जिसका एक रूप पंचतंत्र में मिलता है। बाघ की जगह उसका वाचक कोई और श्ब्द वहाँ हो भी नहीं सकता था। जैसे- 'शेर' या 'चीता' या और कुछ।बागह लोकमानस से जुडा शब्द है और ऐसे रूप में मैंने उसे लिया भी है। इसलिए यदि पढते हुए किसी को लोककथा जैसा कुछ मिलता है तो इसे आकस्मिक या अकारण नहीं मानना चाहिए। यह मेरी पूरी रचना प्रक्रिया का एक बुनियादि तत्व था जिसे मैंने आरंभ से अंत तक निबाहने की कोशिश की है"[1]।इससे स्पष्ट है कि केदारजी की काव्य संवेदना में जो लोकतत्व उपस्थित है वह बाघ कविता में सर्वाधिक केन्द्रित एवं मुखर ढंग से उपस्थित है। बाघ शहर आता है, उसे शहर की पारम्परिक संवेदना दरकी हुई दिखती है। यह उसकी लोकचेतना ही हैकि वह शहर में प्रतिकूल स्थिति देखकर गहरे तिरस्कार और घृणा से भर जाता है। पर उसकी क्षणिक उपस्थिति भी इतना अर्थ सघन है कि चुप्पी टूटती है और सम्वाद का सिल्सिला चल पडता है-

"यह कितना अजीब है
कि वह आया
उस्ने पूरे शहर को

[1] केदारनातह सिंह,मेरे साक्षात्कार, पृ.131,132

एक गहरे तिरस्कार
और घृणा से देखा
और जो चीज़ जहाँ थी
उसे वहीं छोडकर
चुप और विरक्त
चला गया बाहर!
सुबह की धूप में
अपनी- अपनी चौखट पर
अब चुप हैं
पर मैं सुन रहा हूँ
कि सब बोल रहे हैं
पैरों से पूछ रहे हैं जूते
गरदन से पूछ रहे हैं बाल
नखों से पूछ रहे हैं कंधे
बदन से पूछ रही है खाल
कि कब आएगा
फिर कब आएगा बाघ?"[1]

यहाँ बाघ वास्तव में वर्तमान समय के विध्वंसों के खिलाफ मनुष्य के संघर्षों की कथा है। जो एक जंगली जानवर के माध्यम से केदारनाथ

[1] केदारनातह सिंह, बाघ, पृ. 13,14

सिंह ने बखूबी ढंग से अभिव्यक्त किया है। बाघ जो शहर का तिरस्कार करता है क्योंकि शहर एक मायावी दुनिया है। वहाँ भोलापन, प्रेम, आत्मीयता का अभाव है।इस कविता में एक प्राचीन नगर के खण्डहर का उल्लेख किया है जहाँ एक लोककथा प्रचलित है।

"इस तरह चलता रहा
महान जीवन उस छोटे-से नगर का
बुद्ध की करुणा
और बाघ के आतंक की
एक- दूसरे को काटती हुई
दोहरी छाया में"[1]

यहाँ परस्पर विरोधी दिशाओं से आते बाघ और बुद्ध का कभी-कभी सामना हो जाता था। बुद्ध की करुणा और बाघ के आतंक का परस्पर सामना जैसे एकदूसरे को काटता है। लोकजीवन अपने परिवेश के प्रति बेहद संजीदा होता है। वृक्ष, पक्षी और मनुष्य इन सबकी समंवित उपस्थिति देखकर, बाघ के सौंन्दर्यबोध में परिवर्तन होता है। वह मुग्ध और अवाक हो जाता है। लोकचेतना के इस रूप का चित्रण करते हुए केदारनातह सिंह कहते हैं-

"एक जलती दोपहरी में
बाघ ने देखा एक अद्‌भुत दृश्य

[1] केदारनातह सिंह, बाघ, पृ. 18,19

उसने देखा कि एक विशाल वटवृक्ष के नीचे
एक पक्षी और मनुष्य
अपने डैन और कुल्हाडी
अलग- बगल रखकर
निर्भय सुस्ता रहे हैं
पहले वह गुर्राया
फिर हो गया चुप
क्योंकि उसने सुना
वह बूढा बटवृक्ष आदमी के कानों के पास झुककर
धीरे- धीरे गा रहा था
एक बहुत पुराना गीत
जो शायद किसी राजा के बारे में था
जिसकी रानी जंगल में खो गयी थी
फिर बाघ
हिला न गुर्राया
बस उसी तरफ मुँह किए
देर तक खडा रहा
मुग्ध
अवाक् !"[1]

[1] केदारनातह सिंह, बाघ, पृ. 25

अंत में बाघ नीरस और निरंतर वर्तमान में रहते रहते ऊब जाता है। फिर वह एक खरगोश को अपने पास बुलाता है और वह उसकी छोटी-सी देह पर उभरे मुलायम और सफेद रोयों को छूने लगता है। कवि उसके खूंखरापन की सौंन्दर्य भावना में रूपांतरित होने की प्रक्रिया का वर्णन करता है। बाघ अपनी जीभ से खरगोश के खून और माँस का नहीं बल्कि अद्‌भुत कोमलता का अहसास लेता है।

"फिर उसी तरह उन नरम- नरम रोंओं में
अपने नखों को फिराता रहा
और उस मुलायम- सी देह को
इस तरह सहलाता रहा
जैसे उसकी जीभ
उस अद्‌भुत कोमलता का
स्वाद ले रही हो"[1]।

अपने परिवेश के आत्मीय जुडाव और परिवर्तन की आकांक्षा से जिस सौंन्दय्र्बोध का निर्माण होता है, वह केदार्जी की कविता के लोकरंग के सरोकारों के स्वरूप को प्रकट करता है।

---

[1] केदारनातह सिंह, बाघ, पृ. 36

पक्षियों की कथा

इसमें शिक्षा भी निहित है।

"राजा का महल था

महल से कुछ दूर ताड का पेड था

पेड पर खोता था

खोते में रहता था चिडियों का जोडा

नन्ही-सी जान

और सामने पूरा आसमान

पर थीं बडी सयानी चिडियाँ

दूर- दूर तक चक्कर लगातीं

सातो लोग से दाना- दुनका चुग आतीं"[1]

नीति कथा

नीति कथा में कोई न कोई शिक्षा छिपी रहती है। लोक व्यवहार एवं नीति संबन्धी शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है।

"चीन की एक नीति कथा कहती है

कि दाँत इसलिए गिर जाते हैं

कि वो सख्त होते हैं

कि जीभ नरम होती है इसलिए

---

[1] मदन कश्यप, कुरूज,पृ. 92

बनी रहती है उम्र भर”[1]

परियों की कथा

बच्चे आज भी इस कथा को बडे चाव से पढते हैं। इसमें भी एक लडकी ने यह कथा कही-

“जानते हो, लडकी ने कहा, एक सुनार से गहने गढवाने केलिए
परियों ने अपने उडने वाले जूते गिरवी रख दिए हैं और
तितलियों ने फूलों के रस केलिए अपने पंख बेंच डाले हैं!”[2]

लोकगीत

लोकजीवन में लोकगीतों का अपना एक अलग ही स्थान है। साधारण जीवन जीने वाले मनुष्य की भावनाओं की रागमय अभिव्यक्ति लोकगीत में होती है। उसमें लोकजीवन की सरल अभिव्यक्ति मिलती है, जिसमें कृत्रिमता नहीं है।

“ऐ चाँद

ऐ चौथी का चाँद

एक हँसुआ देना

हँसुए का क्या करूँगा

---

[1] राजेश जोशी, चाँद की वर्तनी,पृ.74

[2] राजेश जोशी, नेपथ्य में हँसी , पृ. 72

हँसुए से खर काटूँगा"[1]

यह बज्जिकांचल के एक लोकगीत पर आधारित है।

पहाड के लोकगीतों से प्रेरित मंगलेश डबराल की 'पुनरर्चनाएँ' कविता में लोकजीवन की सरल अभिव्यक्ति मिलती है।

"तुम्हारे लिए आता हूँ मैं इस रास्ते
मेरे रास्ते में है तुम्हारे खेत
मेरे खेत में उगी है तुम्हारी हरियाली
मेरी हरियाली पर उगे हैं तुम्हारे फूल
मेरे फूलों पर मँडराती हैं तुम्हारी आँखें
मेरी आँखों में ठहरी हुई तुम"[2]

अकाल और पानी कविता मदन कश्यप की संताली लोकगीतों पर आधारित कविता है-

" और कितने दिनों तक
और कितने दिनों तक रहेगा यह अकाल
तुम्हें और हमें तो
अभी बहुत दिनों तक रहना है
रे दीनू!
हाँ रे दीनू!

---

[1] मदन कश्यप, लेकिन उदास है पृथ्वी, पृ. 72

[2] मंगलेश डबराल,हम जो देखते हैं, पृ.88

अब और कितने दिनों तक रहेंगे हम

पत्ते चबाकर

कंद – मूल खाकर

हमें और तुम्हें हो

अभी बहुत दिनों तक रहना है रे!"[1]

संस्कार गीत

केदारनाथ सिंह ने भिखारी ठाकुर नामक कविता में लोकगीत, लोकप्रतीक और लोकगाथा के अनुषंक रूप में रचना की है।भिखारी ठाकुर भोजपुरी के प्रसिद्ध लोक कवि हैं जिनका रचनाकाल तीसरे दशक के छठवें दशक तक बिदेसिया नृत्य के रचयिता के रूप में विख्यात है। कविता में भिखारी ठाकुर का वर्णन है, कभी वह घोर पियक्कड का अभिनय करते, कभी वर की खामोशी अपनाते, कभी पृथ्वी का सबसे सुन्दर मूर्ख वाला मुखौटा अपनाते। पर सारे चेहरे हँसते थे अक्सर एक गहरी यातना में युगीन परिवेश का बानक भी है।

"पर क्या आप विश्वास करेंगे

एक रात जब किसी खलिहान में चल रहा था

भिखारी ठाकुर का नाच

तो दर्शकों की पाँत में

[1] मदन कश्यप, लेकिन उदास है पृथ्वी, पृ. 74

एक शख्स ऐसा भी बैठा था

जिसकी शकल बेहद मिलती थी

महात्मा गाँधी से"[1]

जन्मोत्सव

जन्म के समय तो गाये जानेवाले गीतों में मन का आह्लाद देखने को मिलता है।

"पुत्रोत्सव क्षण कैसा अद्भुत होता है

अंधकार में फूटी है आलोक किरण

जो चीर वक्ष को लगती है। चित्र हिरण

देख रहा- जीवन आपा खोता है"[2]

विवाह संस्कार गीत

विवाह सूत्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल की सूक्त संख्या जिसमें 47 मंत्र हैं। इन मंत्रों की रचना सूर्या सावित्री नामक एक किशोरी ने अपनी शादी केलिए की। सूर्या नाम की यह कन्या सविता मुनि की बेटी होने की वजह से सूर्या सावित्री कहलाई।

"क्यों छुपाई गयी स्त्रियों से हमेशा

सूर्या सावित्री की पहचान

क्यों नहीं बताया गया उन्हें,

---

[1] केदारनाथसिंह, उत्तरकबीर और अन्य कविताएँ, प्र. 29

[2] विजेन्द्र, उदित क्षितिज पर, पृ. 81

तब से उसकी लिखी ऋचाएँ अब तक
विवाह मण्डप में गाई जातीं लगातार"[1]

मृत्युगीत

मृत्यु शोक और विषाद का समय होता है। इस अवसर के गीतों में शोकभाव ही भरा रहता है। कवि ने इस दुख भरे वातावरण का चित्रण इस प्रकार किया है-

"गीला सफेद कपडा लपेट कर
जिसे हम सौंप आए हैं अग्नि को
इतनी नहीं जाएगा वह
गडी रहेगी महीनों तक उसकी याद
पाँव में बबूल के काँटे की तरह
और धीरे-धीरे बहता रहेगा दु:ख"[2]

लोक वाद्य

पर्वों,त्योहारों या अन्य किसी शुभ अवसर पर लोक वाद्यों का प्रयोग करना अनिवार्य है। ये वाद्य हमारे कर्णों को मधुर स्वरों से सुन्दर अनुसंधान भी करते हैं। लोकवाद्य कोई भी हो उसका अद्‌भुत संगेत का जादू तो हर किसी के मानस पर गहनतम प्रभाव रखता है।

---

[1] पवनकाण, कहना नहीं आता, पृ. 29

[2] एकांत श्रीवास्तव, मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद, पृ. 23

ढपली

लोकवाद्यों में प्रमुख है।

"फिर भी सब बडे बाजों के

बीच...ढपली बज रही है....

न गूँजनेवाली

कमज़ोर... पिटी सी आवाज़ में.....

अपनी ही तरह...

महिफल से बाहर...."[1]।

नगाडा

नगाडे की आवाज़ पूरे गाँव में सुनाई जाती है।

"पूरी ताकत के साथ बजाता रहा वह नगाडा

अपने आँगन में

एक-एक करके जमा होते गये लोग

बच्चे-बूढे, आद्मी-औरतें

पूरा आँगन भर जाने पर

उसने अपने-आप से कहा-

अभी शेष है मेरे नगाडे की ताकत

नहीं भूला पूरा गाँव

---

[1] बोधिसत्व, खत्म नहींहोती बात, पृ. 84

आवाज़ की भाषा”[1]

बाँसुरी

बाँसुरी तो मोहक है, और प्यारी भी। उसके स्वर सुरों में अजीब सा जादू है जहाँ भी बजती है, वहाँ बजनेवाला और सुननेवाला भाव विभोर होकर बेसुध हो जाता है। बाँसुरी के जादू का वर्णन एकांत श्रीवास्तव के ‘नागकेसर का देश यह’ में दृष्टव्य है-

“प्राण को खींचकर
केवल फूँकने से नहीं बजती
बाँसुरी यह बाँस की
फूँकने की कला भी यहाँ
कला साँस लेने की
धीमी
कहाँ तेज़
उँगलियाँ बन्द करतीं
खोलतीं छेद बाँसुरी के
कभी आधे
कभी पूरे
साँस और उँगलियों का खेल यह

[1] कुमार कृष्ण, गाँव का बीजगणित,पृ.24

संतुलित

और फूटते सप्त स्वर

प्राणों की आवाज़ बन”[1]

लोक कला

अरुण कमल ने ‘मानुष गन्ध’ कविता में हमारे जीवन से नष्ट होती हुई लोक कला का स्मरण दिलाता है-

“कहीं कोई मीनार झुक रही है

नोनी लग रही है दीवारों में

भसक रही हैं ईंटें

अन्धड पानी में नष्ट हो रहे हैं

हज़ारों साल पुरानी सभ्यता के अंतिम अवशेष-

किसी भाँडे का टुकडा

कोई भित्तिचित्र

किसी यक्षिणी की मूर्ति:

प्रागैतिहासिक मनुष्य की गुफाओं की लकीरें

मिट्टी में मिल रही है एक बहुत पुरानी कब्र”[2]

---

[1] एकांत श्रीवास्तव , नागकेसर का देश यह, पृ.70,71

[2] अरुण कमल, सबूत, पृ.30

लोकधर्म

भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है। इसलिए यहाँ के लोग मोक्ष की कामना करते हैं। हम अपने आप से, बाल- बच्चों से,धन दौलत से माया मोह से हारे जाते है। यहाँ जीतने की बात नामुमकिन है। हमारे पूर्वजों को यह मुक्ति नहीं मिली है।

पवन करण ने अपनी कविता 'मुमुक्षु भवन' में मोक्ष केलिए मृत्यु की प्रतीक्षा करते करते प्रतीक्षा की यंत्रणा से पीडित मोक्षार्थियों का चित्रण है। वाराणसी के अस्सी घाट पर स्थित विशाल भवन है मुमुक्षु भवन। जिसमें रहकर लोग मोक्ष या मृत्यु की प्रतीक्षा करते हैं। वे कब से प्रतीक्षारत हैं लेकिन मोक्ष कोसों दूर पर। कवि यह जानना चाहते हैं कि वहाँ से कितने लोगों को मोक्ष मिला, कितने प्रतीक्षा करके निराशा लौटे चले, कितने जीने की इच्छा से लौट चले। लेकिन कवि जानते हैं कि ये प्रश्न प्रतिबन्धित प्रश्न है। क्योंकि धर्म के अधर्म को ढूँढनेवाला केवल उस भवन से नहीं धर्म से भी खदेड दिया जाएगा।

"हम मोक्ष की चाह में रह रहे हैं यहाँ बरसों से
हम जब आए थे हमें लगता था
बहुत नज़दीक हैं हम मोक्ष के
फिर लगातार फैलाकर बडी होती गई यह प्रतीक्षा

अब तो लगता है प्रतीक्षा यंत्रणा है कठिन
जिसकी तुलना में जीवन सरल है अधिक"[1]

कवि ने मोक्ष और मृत्यु के छद्म का अनावरण करते हुए सिद्ध किया है कि उस भवन से अनेक लोग जीवन की ओर लौट चले होंगे क्योंकि मृत्यु की प्रतीक्षा की यातना से जीवन की तरल कठिनाइयाँ सरल हैं। मुमुक्षु भवन में मोक्ष की प्रतीक्षा करनेवाले नियतिवादियों को व्यंग्यात्मक ढंग से चित्रण करनेवाले कवि सबसे यही बताना चाहते हैं कि अपने कर्तव्यों को, मानवीय मूल्यों को भूलते जाना हमारी संस्कृति का ह्रास ही है।

राजेश्जोशी ने 'पत्ता तुलसी का' कविता में
"बिन्दा कैसी पीली पीली पड गई हो तुम
बिन्दा मुँह अँधेरे उठकर क्यों जाती हो नदी पर फिरने
क्या एक पखाना नहीं है तुम्हारे धर्म में
बिन्दा कैसी हड्डियाँ उभर आई हैं तुम्हारी
बिन्दा दूर- दूर जंगल तक क्यों जाती हो गोबर बीनने
क्या गैयें बछियें नहीं हैं तुम्हारे धर्म के पास
या धर्म की गायें गोबर नहीं करतीं"[2]

नागार्जुन ने 'शनीचर भगवान' कविता में इस प्रकार कहा है-

---

[1] पवन करण, अस्पताल के बाहर टेलीफोण, पृ. 28

[2] राजेश जोशी, एक दिन बोलेंगे पेड, पृ. 73

"आज शनीचर है
महीने की दूसरी तारीख
पुल के उस पार
कश्मीरी गेट के इर्द- गिर्द
फैली हुई गलियों में
सुबह से आठ बजे शाम तक
किस्म-किस्म की चीज़- वस्तु आपको मिलेगी....
और, पुल के इस पार
आते ही आप
शनीचर भगवान का दर्शन पाते हो..."[1]

स्त्री कविता में लोकजीवन

एक ज़माना था जब पुरुष कवितायें लिखते थे और स्त्रियाँ उन कविताओं को पढती थीं। उनका एकमात्र लक्ष्य अपने प्रिय को प्रेरणा देना ही था। लेकिन ज़माना बदल गया आज स्त्री पुरुष के साथ कविताएँ लिखती है । स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक भावुक, सहनशील तथा संघर्षों को शालीनता पूर्वक सामना करने वाली है। पुरुष कविता से ज़्यादा आत्मीयता स्त्री कविता में है। क्योंकि स्त्री अपने परिवेश से ज्यादा परिचित है। स्त्री हमेशा घर, परिवार और जाति के झंगुल में फसी हुई है। इसलिए स्त्रियों को परिवार के साथ अधिक भावात्मक लगाव होता है। वह हमेशा

[1] नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. 11

ऐसे समाज का सपना देखती है जिसमें सबको आत्मसम्मान के साथ जीने का मौका मिले। लोकतत्वों का सम्बन्ध एक विशाल चिंतन परम्परा से जुडा हुआ है। स्त्री के प्रति सम्मान हमारी लोकसंस्कृति होती है।

आज औरतें अपने अस्तित्व को ढूँढ रही हैं। सम्मान के साथ जीने केलिए तरस- नरस कर रही है। सम्मान वास्तव में घर से शुरू होता है। अनामिका के 'सेफ्टी पिन' कविता में सावित्री पाठक नामक एक औरत की पूरी ज़िन्दगी आ जाती है। आजकल स्त्री असुरक्षित महौल में जी रही हैं। लेकिन सेफ्टी पिन जैसे साधारण चीज़ औरत को सुरक्षा का भाव देता है।

"श्रीमती सावित्री पाठक की लाल काँच की चूडियों से
पेण्डुलम की तरह लटका
लगातार डोलता ही रहता था
एक जंगाया-सा सेफ्टी पिन!"[1]

अनामिकाजी की 'चिट्ठी लिखती हुई औरत' कविता में एक औरत की ताकत को व्यक्त करती है-

"औरतों को डर नहीं लगता
कुछ भी कह जाने में ,
उनको नहीं होती शर्मिन्दगी
मानने में
कि उनमें

[1] अनामिका, अनुष्टुप,पृ. 60

पानी है, मिट्टी भी।
पानी और मिट्टी: इन दोनों में से
किसी का
कोई ओर- छोर नहीं होता।
लिखती हैं औरतें
खुद एक धारावाहिक चिट्ठी हो तो है
ईश्वर की-
हम सबके नाम!"[1]

औरतों को घर में सबसे निकटतम रिश्ता चौके के साथ है। अनामिकाजी ने 'चौका' नामक कविता में इस प्रकार कहा है-

"बुझ चुकी है आखिरी चूल्हे की राख भी,
और वह
अपने ही वजूद की आँच के आगे
औचक हडबडी में
खुद को ही सानती,
खुद को ही गूँधती हुई बार- बार
खुश है कि रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी"[2]

---

[1] अनामिका, अनुष्टुप,पृ. 48

[2] अनामिका, अनुष्टुप,पृ. 40

अनामिकाजी 'लोरी की चिडिया' नामक कविता में गाँव में प्रचलित खेल के बारे में कहा गया है। लोकजीवन के साथ इस का महत्वपूर्ण स्थान है।

"बच्चे कमरे में
खेल रहे थे कबड्डी।
फर्श पर खिंची थी जो खडिया की रेखा-
कभी, किसी क्षण मिट सकती थी।
लकडी के धुएँ की तरह
उठ रहा था धीरे- धीरे
चिरायंध- सा शोर
चुप्पी के अदहन के नीचे से"। [1]

कात्यायनी की कविता 'सात भाईयों के बीच चम्पा' में चम्पा सिर्फ एक युवती होकर भी संवेदनात्मक धरातल पर नारी दृष्टि का प्रतीक बन जाती है। यह पुरुषवर्चस्ववादी समाज में नारी की स्थिति को व्यक्त करती है। कोई भी स्त्री जब पुरुष के अधीनस्त रहने में तैयार नहीं होती तब उसकी अस्मिता नहीं रह जाती चम्पा उस प्रकार की एक युवती थी इसलिए उसको कई मुसीबतें झेलनी पडी।

"सात बाइयों के बीच
चम्पा सयानी हुई।

---

[1] अनामिका, बीजाक्षर, पृ. 30

बाँस की टहनी-सी लचक वाली,

बाप की छाती पर साँप –सी लोटती

सपनों में

काली छाया-सी डोलती

सात भाइयों के बीच

चम्पा सयानी हुई"[1]

लोकतत्वों का सम्बन्ध एक विशाल चिंतन परम्परा से जुडा हुआ है। नारी वर्ग के प्रति सम्मान हमारी लोकसंस्कृति रही है। लेकिन वर्तमान जीवन संदर्भ में नारी पर आरोप लगाते है। इसके विरुद्ध राजी सेठ अवाज़ उठाती है-

"मैं स्त्री हूँ

जानती हूँ

मुझे बहुत-सा गुस्सा सहना पडा था

जो वस्तुत: मेरे लिए नहीं था

बहुत- सा अपमान

जिसे मुझ पर थूकता हुआ इंसान

पगलाए होने के बावजूद

मुझपर नहीं

कहीं और फेंकना चाहता था"[1]

[1] कात्यायनी, सात भाइयों के बीच चम्पा, पृ. 21

घर में औरत को बहुत बडा हाथ है। घर के सारे काम उसके कन्धे पर है। घर के साथ उसकी आत्मीयता होती है। इसलिए घर का सारा काम वह संभालती है। खाना पकाने से लेकर वंश को कोख में लेने तक बहुत सारे ज़िम्मेदारियाँ हर स्त्री में है। इसलिए राजी सेठ कहती है हर स्त्री के पास एक जादू की पिटारी है जो सदियों पहले स्त्री के पास ही थी।

"सदा साथ
दो-दो हाथ
हाथों में जादू-रांधता पकाता
जीमता जिमाना
जोडना संवारना
फटे को थिगडी
तपे को तरावट
रूठे को मनुहार
ढहते को दीवार
भूखे को पकवा
अलसाए को बिचौना
वंश को कोख
बिलखते को गोद" [2]

---

[1] राजी सेठ , परम्परा ,पृ.27,युद्धरत आम आदमी 2011,सम्पादक,रमणिका गुप्ता

[2] राजी सेठ , परम्परा ,पृ.27,युद्धरत आम आदमी 2011,सम्पादक,रमणिका गुप्ता

अपने घर की याद करते हुए सुषमा सिन्हा कहती है-

"मुझे याद आती है
अपने उस पुराने घर की,
बाहर के बरामदे में खुलते
दरवाज़े और खिड्कियों की।
मुझे याद आती है
बाबूजी के दफ़्तर जाने के बाद
आँगन में फैले धूप की चढन देख,
वक्त का अन्दाज लगाती माँ की"[1]।

पितृ सत्तात्मक नियमों को ढोते- ढोते वह इतनी आदी हो गयी है, यानी वह इस सांचे में इतनी ढाल दी गई है कि उससे बाहर नहीं निकल पा रही है। उसे उन्हें निभाना ही अच्छा लगता है। उसके विरुद्ध जाकर उसे लगता है कि वह एक आदर्श नारी नहीं रह जायेगी। यानी उसने पितृसत्तात्मक मूल्यों को आत्मसात् किया हुआ है। माहवारी के समय पर न होने से तथा भाई की शादी पास होने से दुविधा में पडी घरेलू स्त्री की मनोदशा का चित्रण ममता कालिया ने 'उंगलियों पर गिन रही' कविता में इस प्रकार व्यक्त किया है-

"सोनू और मुनिया पूछते हैं
'क्या मिलाती रहती हो मां

[1] सुषमा सिन्हा, मिट्टी का घर, पृ. 23

उंगलियों की पोरों पर'
वह कहती है- 'तुम्हारे मामा की शादी का दिन
विचार रही हूँ
कब की है घुडचढी कब की बरात!'
घर का मुखिया वहीं सवाल करता है
तो आरक्त हो जाते हैं उसके गाल
कैसे बताए कि इस बार
ठीक नहीं बैठ रहा
माहवारी का हिसाब!"[1]

माहवारी के समय पर न आने की वजह से घरेलू स्त्री चिंतित है कि कहीं उसे भाई की शादी के समय न आए। ऐसा होने पर वह शादी में शामिल नहीं हो पायेगी। कितने बन्धन है एक स्त्री केलिए। एक स्वस्थ महिला केलिए माहवारी का होना ज़रूरी है यह सभी जानते हैं। यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है ऐसा न होने पर वंश वृद्धि में भी बाधा हो सकती है। एक ओर इसका होना ज़रूरी है तो दूसरी ओर उसे ऐसी दशा में अछूत माना जाता है, यहाँ तक कि वह ऐसे में भाई की शादी में भी शामिल नहीं हो सकती। इसे जीवन की विडंबना ही कहा जायेगा।

---

[1] ममता कालिया , उंगलियों के पोरों पर दिन गिनती,पृ.31,युद्धरत आम आदमी 2011,सम्पादक,रमणिका गुप्ता

दलित कविता में लोकजीवन

विश्व के विभिन्न देशों में अमीर- गरीब, मज़दूर- मालिक, काले-गोरे जैसे भेद है। उसी प्रकार भारत में शताब्धियों से धर्म के नाम पर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक दृष्टि से दबे पिछडे,समाज से बहिष्कृत, तिरस्कृत और अपमान झेलते जो मनुष्य है वे दलित के अंतर्गत आते हैं। ऐसे में गाँव की सीमा के बाहर रहनेवाली सभी अछूत जातियाँ, यायावर जातियाँ सभी दलित के अंतर्गत आते है। जाति की जडें समाज में इतनी गहरे तक जमी हैं कि व्यक्ति की पहचान उसकी जाति के साथ होती है। इसलिए लोकजीवन में पात्रों के नाम साथ उनकी जातियाँ जुडी हैं। जैसे- ब्राह्मण, बनिया, चमार, तेली, धोबी, नाई,सुनार, जाट, जुलाहा, चंडाल आदि। दलितों का लोकजीवन देखे तो वह भोगा हुआ यथार्थ है। उन्होंने अपने जीवन का एक हिस्सा गाँवों या कस्बों में बीता है। उनका जीवन संघर्षरत है। इन संघर्षों के होते हुए भी वे अपने लोकसंस्कृति की सहज वाहक बन रहा है।

दलित संघर्ष के उन्नायक एन.सिंह की कविताओं में लोकोन्मुखी चेतना पद-पद पर निहारी जा सकती है। 'सतह से ऊपर उठते हुए' कविता में वे लिखते हैं-

"अब मैं समझ गया हूँ
उस अंकगणित को
जिसके कारण

मेरे श्रमकण
मिट्टी में मिलकर
दूसरों की झोली को
मोतियों से भर देते हैं और
मेरी झोली में होती है
भूख बेबसी और लाचारी
इसलिए अब/ मेरे हाथ की कुदाल
धरती पर कोई नींव खोदने से पहले
कब्र खोदेगी
उस व्यवस्था की
जिसके संविधान में लिखा है-
तेरा अधिकार सिर्फ कर्म में है
श्रम में है
फल पर तेरा अधिकार नहीं"[1]

दलित संस्कृति

लोकजीवन में अनेक तत्व मिलते हैं जिसमें दलित संस्कृति के चिह्न भी दिखाई देते हैं। अशिक्षा के कारण दलित सदियों से अपनी आत्म- पहचान नष्ट कर रहे थे। उनके ऊपर होनेवाले शोषण को वे पहचानते नहीं । उनकी यातनाओं का इतिहास लम्बा है। उनकी यातनाओं

[1] रमणिका गुप्ता, हिन्दी- साहित्य में दलित संघर्ष के उन्नायक, पृ.60

की तीव्रता का अहसास ओमप्रकाश वाल्मीकि के 'मुट्ठी भर चावल' कविता में नज़र आता है-

"सख्त हाथों पर पडी खरोंचें
रिसते लहू के साथ
विरासत में दी गयी हैं
ढेर- सी यातनाएँ
जो उगानी हैं मुझे इस धर्ती पर
हरे- नीले – लाल फूलों में"[1]

'वे भूखे हैं ' कविता में दलित जीवन का वर्णन है। वे दूसरों केलिए सब कुछ न्योछावर करने केलिए तैयार होते है। भूखे, प्यासे होने पर भी दूसरों से कुछ छीनने केलिए तैयार नहीं है।

" वे भूखे हैं
पर आदमी का मांस नहीं खाते
प्यासे हैं
पर लहू नहीं पीते
नंगे हैं
पर दूसरों को नंगा नहीं करते
उनके सिर पर

[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका, पृ.14

छत नहीं है
पर दूसरों केलिए
छत बनाते हैं"[1]

दलित उस दिन की प्रतीक्षा में है समाज में समानता, बन्धुत्व, स्वतंत्रता आ जायेगी। मनुष्य मनुष्य के नाम से जानते हैं, जाति के नाम से नहीं-

"वह दिन कब आयेगा
जब बामनी नहीं जनेगी बामन
चमारी नहीं जनेगी चमार
भंगिन भी नहीं जनेगी भंगी।
तब नहीं चुभेंगे
जातीय हीनता के दंश"[2]

दलितों का जीवन यातनाओं से भरा हुआ है। झाड़ू , बाल्टी और कनस्तर उनके जीवन हिस्से हैं। कवि एहसास करता है कि कितना कष्टदायक है उनका जीवन।

---

[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका, पृ.77

[2] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका, पृ.103

"जब भी देखता हूँ मैं
झाड़ू या गन्दगी से भरी बाल्टी- कनस्तर
किसी हाथ में मेरी रगों में दहकने लगते हैं
यातनाओं के कई हज़ार वर्ष एक साथ
जो फैले हैं इस धरती पर
ठण्डे रेतकणों की तरह"[1]

छोटे बच्चे भी विद्रोह प्रकट नहीं करते। अपने जाति के स्थिति को वे भी जानता है। 'वे नहीं जानते' कविता में कवि उनकी ज़िन्दगी का यथार्थ चित्रण करते हैं-

"हाथ में लिये झाड़ू
और टूटा-फूटा कनस्तर
सुबह मुँह अँधेरे
घर से निकलती माँ को देखकर
कभी नहीं रोया बच्चा
डरा नहीं अकेले घर में
अँधेरे कोने से
या गली में गुर्राते कुत्ते से"[2]

---

[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका, पृ.79

[2] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका, पृ.81

जाति के नाम पर दलित वर्ग सदियों से उच्चवर्ग के उपहास चुपचाप सहते आ रहे हैं। 'धन्यवाद शहर' कविता में सूरजपाल चौहान ने दलित समाज के विभिन्न रूपों के बारे में इस प्रकार कहा है -

"गाँवों में
मैं होता हूँ
दलित समाज के विभिन्न रूपों में
टुकडे- टुकडे
अलग-थलग।
शहरों में
हम होते हैं,
सिर्फ हम 'शड्यूल्ड कास्ट'"[1]

दलित लोग सोचता है कि वे अनपढ होने के कारण सफाई-मज़दूर का काम करना पडता है। लेकिन यह सही नहीं है। उच्चवर्ग के लोग अनपढ होने पर भी अच्छे स्थानों पर काम करते है।

"पिता,
सदा यही समझाते रहे
कि-
अनपढ होने के कारण

[1] सूरजपाल चौहान, कब होगी वह भोर,पृ. 21

करना पडता है

सफाई- मज़दूर का काम"[1]

'अजब चमत्कार' कविता में कवि पढे लिखे लोगों को जाति के नाम से पुकारते है। समाज की इस स्थिति को देखकर कवि ने अपना विद्रोह इस प्रकार व्यक्त किया है-

"और मैं-

पढ- लिखकर

बन गया-

मजिस्ट्रेट ,डॉक्टर,इंजीनियर

फिर भी

कहलाता हूँ भंगी-चमार

वाह रे, हिन्दू-धर्म

तेरा-अजब चमत्कार!"[2]

'मेरी माँ' कविता में अपनी माँ की याद करते हुए कवि ने इस प्रकार कहा है-

"भोर होने से पहले

सडक पर

---

[1] सूरजपाल चौहान, कब होगी वह भोर,पृ. 22

[2] सूरजपाल चौहान, कब होगी वह भोर,पृ. 43

झाड़ू लगाती मेरी माँ,

जैसे खरोंच रही हो

चुपचाप सीने को फौलादी व्यवस्था के अपने नाखूनों से"[1]।

'तेरे धर्म की ऐसी की तैसी' कविता में कवि समाज में धर्म के नाम पर दलितों के ऊपर होने वाले अत्याचार को व्यक्त करती है। यदि दलित अपने परंपरागत पेशे को छोडता है तो वे अधर्म हो जायेगा।

"एक धोबी

धोता रहे

सदा-

दूसरों के कपडे

चमार बनाता रहे जूते

और उठाता रहे मरा जानवर

यदि-

पढा- लिखा भंगी

अपने पेशे को छोड़ता है

तो वह-

अधर्म करता है।"[1]

---

[1] सूरजपाल चौहान, कब होगी वह भोर,पृ. 56

[1] सूरजपाल चौहान, कब होगी वह भोर,पृ. 67

जयप्रकाश कर्दम ने अपनी कविता 'लाठी' में दलित जीवन में होनेवाली उत्पीडन पर एक साधारण दलित युवक का आक्रोश इस प्रकार व्यक्त किया है।

"पिताजी को मरे
अब बीस बरस हो गये हैं
इन बीस वर्षों में
जिन्दगी को मिले बहुत से
जख्प भी अब भर गए हैं
पर, आज भी
जब-जब पुरवाई चलती है
मेरे पिता की कमर में लगी
बदनी जाट की वह लाठी
मेरे सीने में कसकती है"[1]

कर्दम जी दलित की पराधीनता को आधार बनाकर 'बेमानी है आज़ादी' कविता में लिखते हैं-

"गाँव की पंचायत है जिसकी सुप्रीम कोर्ट
सिपाही, अमीन और पटवारी हैं
जिसकी सरकार

---

[1] जयप्रकाश कर्दम, गूँगा नहीं था मैं, पृ. 44

जी रहा है जो स्वाराज्य में भी
गुलामों सी जिन्दगी
झेल रहा है हिंसा और
वर्जनाओं के प्रहार"[1]

सुशीला टाकभौरे की कविताओं में दलित जीवन की विशिष्ट पहचान है। दलित पीडा के साथ वे स्त्री की पीडा को भी सशक्त ढंग से प्रस्तुत करती हैं। अपने ऊपर होनेवाले अत्याचार के खिलाफ संघर्ष करनेवाली दलित स्त्री का चित्रण सुशीलाजी की स्त्री कविता में शामिल है-

"लोग
भूकम्प की बात को
सहज मानते हैं
स्त्री
ज्वालामुखी हो सकती है
यह भी तो
सहज बात है"[2]

---

[1] जयप्रकाश कर्दम, गूँगा नहीं था मैं, पृ. 25

[2] सुशीला टाकभौरे, यह तुम भी जानो, पृ. 32

आदिवासी लोकजीवन

आदिवासियों को लोक ज्ञान का अनुभव है। जो मानवता के विकास में सहायक हो सकता है। अत: परम्परागत ज्ञान एवं लोक- बुद्धि को समझने का प्रयास किया जाना चाहिए, न कि आधुनिक ज्ञान के दम्भ पर इतराना। समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी लोकजीवन को व्यक्त करनेवाले कवियों में प्रमुख हैं- महादेव टोप्पो, हरिराम मीणा, रामदयाल मुण्डा, ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल, रणेन्द्र, अनुज लुगुन आदि। व्यवसाय या काम के आधार पर मनुष्य को अनेक वर्गों में रखा गया है। इनमें सबसे नीचे आते हैं आदिवासी लोग। उन्हें समाज हमेशा हाशिये के बाहर रखना चाहता है। मानव सभ्यता के शुरुआती विकास में आदिवासी लोग सबसे अग्रणी रहे हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम अपने समीप के जीवन को पहचाना और अन्य जीवों के साथ सह-अस्तित्व का सहयोगी वातावरण निर्मित किया, आज उन्हीं के अस्तित्व पर खतरा मँडरा रहा है। जो समूचे भारत के अधुनातन एवं अद्यतन साहित्यिक सांस्कृतिक विरासत के साथ आदिम लोकजीवन और संस्कृति को भी एक कडी के रूप में जोड देता है। इन कविताओं में एक आदिम लोकसंस्कृति की पुनर्रचना है। प्रकृति से मिल जुलकर रहनेवाली भारतीय सभ्यता का शुद्ध रूप आदिवासी जीवन में देखा जा सकता है। अनुज लुगुन ने आदिवासी लोगों की वर्तमान स्थिति को देखकर इस प्रकार कहा-

"हमारे सपनों में रहा है
एक जोडी बैल से हल जोतते हुए
खेतों के सम्मान को बनाए रखना
हमारे सपनों में रहा है
कोइल नदी के किनारे एक घर
जहाँ हमसे ज़्यादा हमारे सपने हों
हमारे सपनों में रहा है
कारो नदी की एक छुअन
जो हमारे आलिंगनबद्ध बाजुओं को और गाडा करे
हमारे सपनों में रहा है
मान्दर और नगाडों की ताल में उन्मत्त बियाह
हमने कभी सल्तनत की कामना नहीं की
हमने नहीं चाहा कि हमारा राज्याभिषेक हो
हमारे शाही होने की कामना में रहा है
अंजुरी भर सपनों का सच होना
दम तोडते वक्त बाहों की अटूट जकडन
और रक्तिम होठों की अंतिम प्रगाढ मुहर" [1]

आदिवासी लोग अपनी बस्तियों को शहर की आबो- हवा से बचाने की सख्त ज़रूरत समझते हैं। ताकि भाषा को गायब होने से बचाया जा

[1] अनुज लुगुन, हमारी अर्थी शाही हो नहीं सकती

सके। यह तभी सम्भव होगा जब हम निम्नलिखित चीज़ों को बचाने की कोशिश करेंगे।

"अपने चेहरे पर
संताल परगना की माटी का रंग
भाषा में झारखण्डीपन
ठंडी होती दिनचर्या में
जीवन की गर्माहट
मन का हरापन
भोलापन दिल का
अक्खडपन, जुझारूपन भी"[1]

यही नहीं शहर की आबो हवा से कवयित्री निर्मला पुतुल पुराने अस्त्र शस्त्रों को भी बचाना चाहती हैं जो बदलते समय के साथ धीरे- धीरे संग्रहालय पहूँच रहे हैं। तभी तो पुतुलजी कहती है कि बचायी जानी चाहिए।

"धनुष की डोरी
तीर का नुकीलापन
कुल्हाडी की धार"[1]

---

[1] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में ,पृ. 26

[1] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में ,पृ. 26

अस्त्र- शस्त्रों की तरह ही वे बचाना चाहती हैं-

"जंगल की ताजा हवा
नदियों की निर्मलता
पहाडों का मौन
गीतों की धुन मिट्टी का सौंधापन
फसलों की लहलहाहट" [1]

कोई भी आदिवासी लडकी किसी शहरी लडके से व्याहना पसंद नहीं करती, इसके कई कारण है- जैसे वह शहरों में बसता है, बाँसुरी की धुन से अपरिचित है, घर के सामने आँगन नहीं आदि कई कारण है। इसलिए वह कहती है-

"बाबा!
मुझे उतनी दूर मत ब्याहना
जहाँ मुझसे मिलने जाने की खातिर
घर की बकरियाँ बेचनी पडे तुम्हें"[2]

भोले-भाले ग्रामीणों के जीवन का चित्रण 'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा' कविता में है। वह लडकी अपने जैसे परिवेश में ही शादी करने की इच्छुक है । मुझे अपने ही इलाके में व्याहना जहाँ तुम सुबह जाकर शाम

---

[1] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में ,पृ. 26

[2] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में ,पृ. 34

तक पैदल लौट सको और मेरे सुख- दुख में शरीक हो सको। यही नहीं मैं भी तुम्हारे लिए वहाँ से आने-जाने वालों के पास सन्देश और प्यार भरी भेंट भेज सकूँ। मेले, हाट- बाज़ार आते- जाते अपने लोग मिलते रहें और उन से घर- गाँव की खबर का पता चलता रहे। इसलिए मुझे ऐसी जगह व्याहना जो नजदीक ही हो और जहाँ सब प्रेमपूर्वक अपना जीवन बिताते हों और किसी का कोई दुश्मन न हो। एक ग्रामीण लडकी की सोच को पुतुल ने इन पंक्तियों में शब्दबद्ध किया है।

अनुज की कविताओं में आदिवासी जीवन के प्रति गहरी आत्मीयता और आदिवासी समाज के बुनियादी मूल्यों पर सहज आस्था बेहद स्वाभाविक ढंग से प्रकट होती है। वर्तमान समय में आदिवासियों पर पडे अमानवीय और भयावह दबावों को प्रकट करना, जिनसे आदिवासी अपने जल, जंगल, ज़मीन और जनों को छोडने को विवश हैं, जिनसे कि उनका अस्तित्व ही खतरे में पड गया है। अनुज लुगुन की 'एकलव्य से संवाद' कविता में पुराण के एक प्रसिद्ध पात्र एकलव्य को आज के आदिवासी समाज में प्रचलित धनुष- विद्या के आधार पर प्राय: पुन: खोजा गया है। उच्चवर्गीय रुचि बोध और विचारधारा वाली कथा का यह आदिवासी प्रत्याख्यान है। आदिवासी समाज की जिजीविषा और संघर्ष शक्ति को उचित महत्व के साथ इस कविता में रेखांकित किया गया है।

"घुमंतू जीवन जीते
उनका जत्था आ पहूँचा था

घने जंगलों के बीच
तेज बहती अनाम
पहाडी नदी के पास
और उस पार की कौतूहलता में
कुछ लोग नदी पार कर गए थे
और कुछ इधर ही रह गये थे
तेज प्रवाह के समक्ष अक्षम
तब तीर छोडे गए थे
उस पार से इस पार
आखरी विदाई के
सरकंडों में आग लगाकर
और एक समुदाय बँट गया था
नदी के दोनों ओर"[1]

आज वैश्विक पूँजी का प्रेत बेरोकटोक सारी दुनिया में मानव के दमन में भूमिका अदा कर रहा है। आदिवासी जो परम्परागत जीवन शैली जी रहे थे, उनके विस्थापन का नया संजाल नव- साम्राज्यवाद बुन रहा है। अत: मनुष्य के अस्तित्व केलिए भी यह संकट का समय है। नव-मध्यवर्ग और नव- धनाढ्य वर्ग दोनों ही तटस्थता की नीति एवं उपभोग

[1] प्रगतिशील वसुधा,181

की जीवन- पद्धति में मशगूल है। उन्हें कवि हरिराम मीणा सचेत करने की कोशिश करता है और प्रकाश की ओर उन्मुख दृष्टि से देखता है। जैसे-

"वे ऐश्वर्य ओढकर सोते हैं निश्चित
हम संघर्ष की सूली पर चढकर
भविष्य के आकाश में तलाशते हैं-
स्वयं का परिचय और स्थान-
तनिक सोचो,
इस निर्जन एकाकी कारा में भी
मैं कहाँ हुआ निरुसाहित"[1]

आदिवासियों की भाषा को जंगली बताकर उसे सभ्य लोग वर्जित करता है और साथ ही साथ यह सोचता है कि आदिवासी सभ्य समाज द्वारा इस्तेमाल की जा रही भाषा को नहीं समझ पा रहा है। इसलिए उसे अपरिष्कृत भी घोषित कर देता है। भाषा पर जतायी जानेवाली इसी वर्चस्व के खिलाफ निर्मलापुतुल आवाज़ उठाती है-

"अबूझ भाषा में
बुझाओ मत पहेलियां
मैं समझती हूं भाषा की कपट
इसलिए तुम्हारी मायावी दुनिया से बाहर

[1] हरिराममीणा, रोया नहीं था यक्ष, पृ. 40,41

सीधे- सीधे अपनी भाषा में
बात करना चाहती हूं
वैसे भी तुम्हारे गढे मुहावरे
और शब्दों के जादुई इन्द्रजाल ने
बहुत नुकसान किया है हमारा"[1]

आदिवासी लोग अपरिष्कृत है लेकिन वह अपनी भाषा को छोडना नहीं चाहता। लेकिन परिष्कृत लोग कपटी है, वे अपनी भाषा को छिपाकर अनजाने भाषा में बातें करता है। वो ठीक नहीं है। इसी मायावी दुनिया में सब लोग अपना जो कुछ है उसको छिपाकर और कुछ का परदाफाश करना चाहता है। लेकिन आदिवासी लोग सीधे बातें करते है, उसमें आत्मीयता होती है। वह सच तो होगा। इसलिए वे लोग हमेशा परिष्कृत लोगों से प्रश्न करते हैं।

आदिवासी लोगों को अपना जो कुछ है वे सब नष्ट हो गये हैं। चाहे वो पेड- पौधे हो या फल और बीज हो सब कुछ नष्ट हो गये हैं। इसलिए कवि कहता है-

"कहाँ गई वह सुगन्ध
महुआ और डोरी की
गूलर और केयोंद की
कहां खो गया बांसों का संगीत

[1] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में ,पृ. 98

और जाने कहां उड गई

'संधना' की सुगंध?"[1]

ग्रामीण पहाडी स्त्री का चित्रण करती हुई निर्मला पुतुल कहती है कि पहाडी स्त्री का जीवन पहाड की तरह ही गरीबी, दुख और संघर्ष से भरा होता है। पहाडी स्त्री के क्रिया कलाप को प्रस्तुत करती 'पहाडी स्त्री' कविता में पहाडी परिवेश जीवंत हो उठा है। पहाड की गरीबी, संघर्षपूर्ण जीवन तथा पहाडी परिवेश को मूर्त करती ये पंक्तियाँ देखिए-

"वह जो सर पे सूखी लकडियों का गट्ठर लादे

पहाड से उतर रही है

पहाडी स्त्री

अभी- अभी जायेगी बाजार

और बेचकर सारी लकडियां

बुझायेगी घर भर के पेट की आग"[2]

सुखपूर्ण जीवन की उम्मीद में वह कामरतोड मेहनत कर रही है। उसकी कठोर ज़िन्दगी से पुतुल ने इन पंक्तियों में रू- ब- रू करवाया है।

"चादर में बच्चे को

पीठ पर लटकाये

---

[1] रमणिका गुप्ता,आदिवासी स्वर और नई शताब्दी,पृ.21

[2] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में ,पृ. 28

धान रोपती पहाडी स्त्री
रोप रही है अपना पहाड- सा दुख
सुख की एक लहलहाती फसल
केलिए"[1]

पहाडी लोगों का मुख्य धन्धा खेती- बाडी है। पहाडी- स्त्री कभी जंगल से लकडी लाने में व्यस्त है तो कभी धान रोपने में। कभी चटाइयाँ बुन रही है तो कभी झाडू बना रही है । कवयित्री ने पहाडी स्त्री के क्रिया कलापों और उसके परिवेश को बखूबी पहचाना है तभी तो इसकी स्पष्ट झलक इन पंक्तियों में देखने को मिलता है।

"गाय- बकरियों के पीछे भागते उसके पांव
रच रहे हैं धरती पर
सैकडों कुँवारे गीत"[2]

ग्रामीण परिवेश से वाकिफ पुतुल ने पहाडी स्त्री की ही तरह पहाडी पुरुष के तन मन को को भी बखूबी पहचाना है। पहाडी पुरुष के तन से परिचित करवाती पुतुल कहती हैं-

"पहाड सी देह
पहाड- सी छाती

---

[1] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में ,पृ. 28
[2] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में ,पृ. 28

पहाड- सा रंग

पहाड पर गुमसुम बैठे

पहाडी आदमी के चेहरे पर दिख रहा है

पहाड का भूगोल"[1]

पुतुल उसके तन से ही नहीं उसके मन को भी अच्छी तरह पहचानती है। तभी तो

कहती है-

"जब पहाड पर लगती है आग तब उसकी बाँसुरी से फूट्ता है

पहाडों का दर्द.....

टूटता है जब कहीं कोई पहाड

तब दहल उठती है

उसकी पहाड- सी छाती"[2]

उसकी दुनिया पहाडों तक ही सीमित है। वह बाहरी दुनिया से यानी विकास और प्रगति की दुनिया , सुख- सुविधाओं की दुनिया से अनजान है। इसी सच को बयान करती ये पंक्तियाँ देखिए-

"वह पहाडी भाषा में बोलता पहाड से

बतियाता है अपना सुख- दुख

---

[1] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में ,पृ. 30

[2] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में ,पृ. 30

गाता है पहाड पर बैठ पहाडों के गीत
पहाडी लिपी में, पहाड पर लिखता है
'प' से पहाड
पहाड पर अपनी कुल्हाडी की धार पजाती
पजा रहा है वह
अपने भीतर का भोथरापन"[1]

'पहाडी बच्चा' में वहाँ की बच्चों के जीवन का परिचय मिलता है।

"पहाड की गोद में
पहाड के छोटे- छोटे टुकडों सा
खेलता है पहाडी बच्चा"[2]

ग्रेस कुजूर ने 'एक और जनी- शिकार' कविता में आदिवासी लोक जीवन का परिचय इस प्रकार किया है-

"संगी रे-
न जाने कौन से देश उडे
क्षितिज के पार वे
हरे खेतों में विचरने बगुले
नहीं खेलती झूमर अब

[1] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में ,पृ. 30
[2] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में ,पृ. 29

'डोभा' के पानी में
'गीतू' और 'बुदु' मछलियां
फंसने लगे हैं क्यों/ 'कुमनी' में
ढोंढ दुमुंहे?
और बार- बार फिसलने लगी है क्यों
हथेलियों से जिन्दगी यहां
मांसुर की तरह?
हे संगी!
क्यों घूमते हो
झुलाते हुए खाली गुलेल
जंगल- पहाड, नदी-ढेढा
तुम्हारी गुलेल का गोढा
डूबते हुए लाल सूरज की तरह
अटक गया है"[1]

ससन दिरी मुण्डाओं की सांस्कृतिक विरासत वाला पत्थर है। अपने पुरखों की स्मृति में , उनके सम्मान में उनके कब्र पर गाडा जानेवाला यह पत्थर मुण्डाओं के गाँव का मालिकाना चिह्न भी है।

"हम बेघर हैं सरकारी पट्टों पर,
हमारी विरासत पर दखल हुई

[1] रमणिका गुप्ता,आदिवासी स्वर और नई शताब्दी,पृ.22

सरकारी पट्टों की
एक बार फिर
हम लडें
अपनी तदाद से"[1]

वेशभूषा

आदिवासी हमारे देश के अति प्राचीन लोगों में से हैं। इनका रंग अधिकतर काला होता है। इनकी वेशभूषा की तरफ देखें तो ये वस्त्रों का बहुत कम उपयोग करते हैं। शहरों के संपर्क में आकर अब ये लोग वस्त्रों का उपयोग करने लगे हैं।

"संगी रे-
कितने चमकते थे
पटवा में खोंसे हुए तुम्हारे
उजले पंख- बगुले के
और कितना लहराता था
अखरा में नाचते वक्त
तुम्हारी तोलोंग का फुदना
कितना सुकून पैदा करती थी"[1]

---

[1] अनुज लुगुन, ससन दिरी
[1] रमणिका गुप्ता,आदिवासी स्वर और नई शताब्दी,पृ.21

ग्रेस कुजूर ने 'एक और जनी- शिकार' कविता में आदिवासी बच्चों के वेशभूषा के बारे में इस प्रकार कहा है -

"बांधूंगी फेटा
और कसेगी फिर से
'बेतरा' की गांठ" [1]

यहाँ बेतरा बच्चे को पीठ पर बांधने वाला कपडा है।

त्योहार

वसंत आगमन के समय मनाने वाला एक त्योहार है करम। यह झारखंड क्षेत्र के एक प्रमुख त्योहार है। कवि मोती लाल ने 'जंगल में बस्तियां' कविता में इसका वर्णन इस प्रकार किया है-

"वसंत का आगमन
कि कैसे पेडों को पैर
दे देते हैं वे
तभी तो 'करम' में
वे हमारे संग
नाचते हैं"[1]

[1] रमणिका गुप्ता,आदिवासी स्वर और नई शताब्दी,पृ.21

[1] रमणिका गुप्ता,आदिवासी स्वर और नई शताब्दी,पृ.60

लोकवाद्य

ग्रेस कुजूर ने 'एक और जनी- शिकार' कविता में आदिवासी लोगों के वाद्यों का जिक्र किया है। मांदर और बांसुरी उनके जीवन का अभिन्न अंग है। क्योंकि जिसके ज़रिए वे सब त्योहार मनाते हैं।

"जाने किधर है
कोमल पत्तियों वाला
कोयनार का गाछ
जिसके नीचे तुम
बजाया करते थे/ मांदर और बांसुरी?"[1]

लोक देवता

ग्रामीण लोगों के लोक- देवताओं के प्रति आस्था और विश्वास को माँझी-थान कविता में निर्मला पुतुल ने व्यक्त किया है। लोग इनके डर की वजह से कुमार्ग को छोडकर सन्मार्ग पर चलने को सोचते हैं। खुशी और गम मेंइन्हें याद करते हैं। इस आस्था और विश्वास को ज़िन्दा रखने की उस सोच को इस कविता में देखा जा सकता है,जिसकी वजह से लोग गलत काम करने से डरते हैं। पुतुल कहती हैं कि माँझी-थान में देवता बैठते हैं या नहीं यह मुझे मालूम नहीं है। मैंने वहाँ अन्य लोगों को तो

[1] रमणिका गुप्ता,आदिवासी स्वर और नई शताब्दी,पृ.21

जरूर देखा हिअ परंतु कभी उस देवता को नहीं देखा-

"जिसके हजारों गढे किस्से सुना- सुनाकर
कदम- कदम पर रोकते- टोकते
डराते रहे हैं लोग
पर कभी-कभी सोचती हूँ
चलो अच्छा है
उसके होने के एहसास से
बचा तो है कुछ न कुछ डर
सबके अंदर"[1]

कवयित्री का मानना है कि देवता के प्रति विश्वास और आस्था जिन्दा रहे तो लोग अच्छे रास्ते पर चलेंगे। यह लोककल्याण केलिए सहायक बन जाएगा।

लोक जीवन की निश्चल और निर्दोष चीज़ें छोडी नहीं जा सकती, इन्हें शताब्दियों से अर्जित परंपरा की विरासत के रूप में अक्षुण्य रखना है। इन चीज़ों के प्रति हमारे युवा कवियों की अनुरक्ति स्वाभाविक है। लोक जीवन कोई ग्लैमर की चीज़ नहीं –यह धूसर और बदरंग है। बाह्य सुन्दरता देखने वालों को यह आकर्षित नहीं करता। इसकेलिए विशिष्ता

[1] निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में ,पृ. 69

सौन्दर्य दृष्टि अपेक्षित है जो सतह के नीचे प्रवाहमान ऊर्जा के अजस्र स्रोत से अपना संबन्ध स्थापित कर सके।

****

समकालीन कविता में कृषक संस्कृति

हमारा देश भारत किसानों का देश है। यहाँ के 75% लोग गाँवों में बसनेवाले किसान हैं। हमारे गाँवों में रहनेवले किसान खेती- बारी करके अपनी आजीविका चलाते हैं। खेती हमारे देश की प्राण और संस्कृति के सरोकार भी रही है। किसान हर परिस्थिति से हार न मानकर उदास और निराश न होकर भूखे रहने पर भी अपनी भुजाओं पर अटूट विश्वास करते हैं। किसानी संस्कृति भारत की परंपरागत संस्कृति है। वह लोकसंस्कृति का एक प्रमुख अंग भी है। समकालीन कवि हमारी संस्कृति की गरिमा को बनाए रखने की ज़रूरत की ओर हमारा ध्यान खींच लेते हैं। इसलिए वे कृषि के प्रति चेतना जागृत करने केलिए प्रयासरत हैं।

कृषक शब्द का अर्थ किसान, खेतिहर, काश्तकार और हल का फाल आदि हैं। कृषि करने वाले ग्रामीण लोग किसान कहलाते हैं। इसलिए विरासत के रूप में जो मिली और अपने अधिकार की कृषि को जोतने, बोने तथा उनमें अनाज उपजाने वाला व्यक्ति कृषक कहलाता है। प्राचीन पाषाण काल में लोगों को खेती का ज्ञान नहीं था। नए पाषाण काल में लोगों ने भूमि को जोतना और बीज बोना सीखे थे। उन्होंने पेट भरने केलिए जीव जंतु का मांस खाया और जंगल में मिलनेवाले फल – फूल आदि खाये। इनका बीज मिट्टी में पडकर नये नये पौधे उगे। आगे खाने की चीज़ों की अनुपलब्धि का सामना करना पडा। इस समय वे

लोग खेती करने लगे। तब से लेकर आज तक मनुष्य अपनी आजीविका चलाने केलिए खेती करने लगे। इसलिए खेती परंपरागत संपत्ति के रूप में मिलती है। कृषक का उस पर पूरा अधिकार होता है। कृषक खरीप, रबी और गर्मी की फसल मानव शक्ति, मवेशी और यंत्रों की सहायता से कर लेता है। कृषि कर्म केलिए कृषक को बढई और लुहार जैसे पारंपरिक अन्य व्यवसायियों की सहायता लेनी पडती है। कृषक का काम केवल खेत जोतकर उसमें फसल निकालने तक सीमित नहीं है। अन्न, वस्त्र, आदि आवश्यकताओं की पूर्ति फसल, वृक्ष और प्राणियों से होती है। परिणामत: फसल के साथ पशु- भेड, बकरी, मुर्गिया, मधुमक्खी पालन, रेशम के कीडों की पैदावार और बागवानी आदि कृषक का काम होता है। खेती से संबन्धित ज्ञान कृषक के अनुभव और परंपरा से प्राप्त होता है। बीज छाँटने और बोने के उचित समय का नियोजन कृषक करता है।

किसानों का जीवन यथार्थ

समकालीन हिन्दी कविता में किसानों के जीवन का यथार्थ एवं सूक्ष्म चित्रण हुआ है। कृषकों के खून - पसीना बहाने से ही लोगों को अन्न नसीब होता है। देश में किसान नहीं है तो अन्न नहीं मिलेगा, ऐसी दशा हो गई है। अन्न धरती की उपज है। किसान और धरती के बीच के घनिष्ठ सम्बन्ध दर्शाती है एकांत श्रीवास्तव की अन्न-1 की ये पंक्तियाँ-

"अन्न
धरती की ऊष्मा में पकते हैं
और कटने से बहुत पहले
पहुँच जाते हैं चुपके से
किसान की नींद में"[1]

अन्न किसान की बहुत बडी तपस्या और परिश्रम का फल है। प्रत्येक अनाज के कण में जो तत्व एवं शक्ति समाहित रहती है, अन्न में वह शक्ति एवं तत्व किसान के परिश्रम से प्राप्त होता है।

किसान का जीवन ज़मीन पर आश्रित है। दोनों के बीच अटूट रिश्ता है। इसलिए किसान और ज़मीन के बीच छिपी हुई सुखद एवं दुखद स्मृतियों आदि के विभिन्न रंग मौजूद है एकांत श्रीवास्तव के ज़मीन -2 कविता में ।

"एक अटूट रिशते की तरह
कभी नहीं टूटना चाहती थी ज़मीन
बिक जाने के बाद भी"[1]।

आज किसानों की स्थिति बहुत दयनीय है। पहले किसानों का घर धान से भरा हुआ था । लेकिन आज वे खाली होते जा रहे हैं। कोठार में भी आज अन्न नहीं है। इसका उल्लेख 'कन्हार' में इस प्रकार किया गया है-

---

[1] एकांत श्रीवास्तव, अन्न है मेरे शब्द ,पृ.26

[1] एकांत श्रीवास्तव, अन्न है मेरा शब्द, पृ.23

"मगर आज कठोर में अन्न नहीं
और कोठी में धान
कितना खाली- खाली यह धान का कटोरा
मण्डी जाती बैलगाडियों में
आखिरी बोरे धान के" [1]

किसानों के इस देश में , जहाँ खेत सोना उगलते थे, उसकी वर्तमान स्थिति क्या है? इसकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है पवन करण की 'गेहूँ' नामक कविता ।

"एक घर में पत्नी ने पति को टोका
क्यों अपने घर गेहूँ कब आएँगे
क्या उनका भाव बढ जाएगा तब
अभी सस्ते चल रहे हैं, ले क्यों नहीं लेते
घर में भी एक दो कनस्तर ही बचे हैं"[2]

इस कविता में एक किसान की व्यथा वर्णित है जो गेहूँ की खेती करता है और भूख मिटाने गेहूँ केलिए तृषित है। वह फसल काटने के बाद गेहूँ के बोरे लेकर घर पहँच जाता है। कुछ लोग गेहूँ खरीदते हैं क्योंकि वह सस्ता मिलता है, और कुछ खरीदना नहीं चाहते क्योंकि उनके घर गेहूँ के बोरे से भरे पडे हैं। लेकिन यहाँ एक घर ऐसा था जिसे याद नहीं कि पिछली बार कब गेहूँ उतरा है। दरअसल वहाँ पूरी एक बोरी गेहूँ अभी

[1] एकांत श्रीवास्तव,बीज से फूल तक,पृ. 124
[2] पवन करण, अस्पताल के बाहर टेलीफोण, पृ.31

तक नहीं उतरा था। यह घर उस किसान का घर है जो घर गेहूँ बेचता है। अपने घर उतरे गेहूँ के अंतिम दाने तक अमीरों के घर बेचने को विवश उस किसान के ज़रिए कवि ने अभाव एवं गरीबी से त्रस्त भारतीय किसानों की त्रासदी का चित्रण किया है। किसानों की इस दयनीय स्थिति को एकांत श्रीवास्तव ने 'कन्हार' में खींचा है।

"गाँव के किसान
शहर की मिलों और फैक्ट्रियों में मजूर हुए
गाँव की बहू- बेटियाँ
शहर जाकर चौका- बर्तन करनेवाली
नौकरानियाँ हुई
गाँव के नौजवान पढ लिखकर
न किसान बन सके न कर्मचारी
एक अधकचरी-सी संस्कृति में फँसकर
फूलती रही उनकी साँस
जमीन,जाति- धरम के झगडे हुए
थानों और कोर्ट कचहरियों में खो गया"[1]

किसानों को अपनी खेती का फल कभी नहीं मिलता है। अगले साल खेती करने केलिए उनको महाजनों से ऋण लेना पडता है। अंत में ऋण के बोझ से जीवन बिताना पडता है। अगले बार भी फसल अच्छा न

[1] एकांत श्रीवास्तव,बीज से फूल तक,पृ. 130

होने के कारण वे लोग अपने गाय- बैल सब महाजनों को बेचते हैं।अंत में उन्हें अपना खेत भी बेच देना पडता है। किसानों की यही नियति है। किसानों की इस विवशता को एकांत श्रीवास्तव ने 'कन्हार' में यों बयान किया है-

" कभी देखो, महाजनी की महीन पैंतरेबाजियाँ
जलती हुई फसलें
नीलाम होते गाय- बैल
बिकते हुए खेत
और उसकी मिट्टी से लिपटकर रोता हुआ किसान" [1]

धान-गेहूँ के पौधों से समृद्ध खेतों, गाय- बैल- भैंस के साथ किसान का प्रगाढ सम्बन्ध का चित्रण अरुण कमल के 'फिर वही आवाज़' कविता में है।

"अब आ रहे हैं कटनी के दिन
और छाती तक बढ आये धान के पौधे
फिर खोजेंगे उन हाथों को जिन्होंने कीचड में धँसकर रोपा था उनको"[1]

भारत की अधिकांश जनता खेतों, खलिहानों ,बगीचों खानों एवं कारखानों में खटती है। ये लोग श्रम सौंदर्य के संघर्ष का बराबर निदर्शन मौखिक स्तर पर करेंगे। बोधिसत्व के 'दुख-तंत्र' कविता देखिए-

"हम जो जल रहे खेत हैं

[1] एकांत श्रीवास्तव,बीज से फूल तक,पृ. 134
[1] अरुण कमल, अपनी केवल धार , पृ.28

भस्म हो चुके खलिहानों केलिए बेचैन
हम जो क्रांति खो रही बहनों के भाई हैं
मुहब्बत केलिए लालायित
हम जो धैर्य खो रही माताओं के लाल हैं
अनंत चीज़ों के मुहताज
हम जो देश का विदीर्ण मन हैं आज
हम जो नदियों का संगम हैं फिर भी"[1]

बोधिसत्व की कविता 'तुम गाओ' में ग्रामीण लोकजीवन के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं। कवि ने किसानी जीवन के विस्तार कर किसानी संस्कृति को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

"तुम गाओ मल्हार
'ढुरि- ढुरि खेलो कजरी'
(गाओ जँतसर)
गाओ जितना मन हो
फूट रहे हैं धान
पक रही है मिट्टी
अभी नमी बाकी है
तुम जो चाहे गाओ" [1]

---

[1] बोधिसत्व, हम जो नदियों का संगम है, पृ.16

[1] बोधिसत्व, सिर्फ कवि नहीं, पृ.45

इस प्रकार 'चुप्पै- चुप्पै', 'अग्नि जनयित्री', 'दीया- बाती' कविताओं में भी किसानी संस्कृति का विस्तार है।

किसान कभी हार मानने केलिए तैयार नहीं है। जितेन्द्र श्रीवास्तव ने 'जो जानते हैं कछार को' कविता में इस प्रकार किसानों के उम्मीद को इस प्रकार व्यक्त किया है-

"ये वही किसान हैं कछर के
जो कभी – कभी ही काट पाते हैं
आषाढ में बोई फसल
इनकी खरीफ की फसल
समा जाती है नदी के पेट में
फिर भी ये नहीं हारते मन
तन- मन- धन से
धरती की कोख भरने में जुटे
ये किसान
हर बार बीज के साथ बोते हैं उम्मीद भी।"[1]

किसानों को अपने खेत के बारे में आशंका है। नागार्जुन ने 'अपने खेत में.....' कविता में किसानों की इस आशंका का बखूबी वर्णन है-

---

[1] जितेन्द्र श्रीवास्तव, असुन्दर सुन्दर, पृ. 64

3 जितेन्द्र श्रीवास्तव, असुन्दर सुन्दर, पृ. 91

"अपने खेत में हल चला रहा हूँ
इन दिनों बुआई चल रही है
इर्द-गिर्द की घटनाएँ ही
मेरे लिए बीज जुटाती हैं
हाँ, बीज में घुन लगा हो तो
अंकुर कैसे निकलेंगे" [1]

नागार्जुन ने 'वो तो परमेसुर के अउतार रहे.....' कविता में एक ऐसे पात्र का विवरण दिया है जो गिरिजाशंकर नाम है उसका। उसने खेती केलिए अपना जीवन समर्पित किया है। हमेशा खेत के बारे में चिंतित है चाहे दिन में हो या रात में हो।

"किसी को बिच्छू काटे तो आप
फूटी धुआँही लालटेन लेकर
फैरन ओझा-गुनी को
जाकर जगाते थे, दो बजे रात में
जेठ की उस गर्मी में
गाँव-बस्ती के कुएँ तक सोये रहते थे....."[1]

किसान अपने खेती तथा मिट्टी से आत्मीय संबन्ध रखने के कारण बाज़ार के छल कपट से हमेशा दूर रहते हैं। सब चीज़ों के फाव व्यापारी

---

[1] नागार्जुन, अपने खेत में, पृ.9

[1] नागार्जुन, अपने खेत में, पृ.59,60

लोग अपने हिसाब से तय करते हैं। खेत में काम करने वाले किसानों को अपने उत्पादन का मूल्य भी स्वयं तय करने का अधिकार भी नहीं है। इसलिए मदन कश्यप ने 'थोडा सा फाव' कविता में इस प्रकार कहा है-

"अक्सर फाव देते हैं वैसे लोग
जो महज़ बीच के विक्रेता नहीं होते
वे खेतों में स्वयं उगाते हैं फल-सब्जियाँ
तालाब से निकाते हैं सिंघाडे- मखाने
और बाज़ार की गलाकाट संस्कृति से एकदम अलग
जब उन्हें सौंपते हैं किसी क्रेता को
तो किसी वस्तु के बेचने का नहीं
श्रम और पसीने की रचना का विदा करने का भाव होता है
वे डाल देते हैं झेले में थोडा- सा फाव"[1]

औद्योगीकरण के फलस्वरूप आजकल गाँव नगरों में तब्दील हो जा रहे हैं। खेती नष्ट होती है। किसान अपने जीविकोपार्जन केलिए किसान मज़दूर हो गये। इस प्रकार किसानों का जीवन बदल गया। इसका यथार्थ चित्र लखनलाल पाल ने 'बादल' कविता में यों दिया है-

"जर्जर किसान मज़दूर की चटपटाती हड्डियाँ
बेआवाज़ विलीन हो रही हैं।
विकास के लावे में"[2]

---

[1] मदन कश्यप, कुरूज,पृ. 39,40

भारत कृषि प्रधान देश होते हुए भी भारत में किसानों की स्थिति बहुत दयनीय हो गई है। आज गरीब किसान लागातार ऋण लेता रहता है और किसान ऋणजाल में फँसकर आत्महत्या कर रहे हैं। उमाशंकर चौधरी ने भूमिहीन किसानों की दर्दनाक वास्तविकता को 'कहते हैं तब शहंशाह सो रहे थे' कविता में अभिव्यक्त किया है-

"वह बूढा किसान
जिसके खेत में पड चुका है सूखा
जिसके जवान बेटे ने अपने पीछे
पत्नी और दो बेटियों को छोड लगा दिया है
गले में फन्दा" [1]

यह आज के किसानों के जीवन का भीषण यथार्थ है। अंत में किसान बेबस होकर आत्महत्या करते हैं। 'किसानों की आत्महत्या भी मृत्यु है' कविता में वर्तमान समय की इस भीषण स्थिति को उमाशंकर चौधरी ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

" इतिहास के यह समय
जितना विकास केलिए दर्ज होगा
उससे अधिक होगा अपनी विडम्बनाओं की पडताल की आएगी
तब जो सबसे ऊपर आएगा, उसमें होगा

---

[1] लखनलाल पाल,बादल,पृ.115,समकालीन भारतीय साहित्य,जनवरी-फरवरी,2008

[1] उमाशंकर चौधरी, कहते हैं तब शाहंशाह सो रहे थे, पृ. 97

अखबार में छपी किसानों की आत्महत्या की खबर

और यह कृषि प्रधान देश" [1]

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में किसानों की आत्महत्या स्वयं भारत की आत्महत्या है।आज किसान आत्महत्याएँ कर रहे हैं, गरीबों की फौज खडी हो रही है, धनिकों का वर्चस्व कायम हो रहा है, मुनाफा कमाने और दौलत जमा करने की लिप्सा बढ रही है। इस अवसर पर राजेश जोशी की 'इस आत्महत्या को अब कहाँ जोड़ूँ' कविता इसका एक अच्छा दृष्टांत है-

" देश के बारे में लिखे गये हज़ारों निबन्धों में लिखा गया

पहला अमर वाक्य एक बार फिर दोहराता हूँ

भारत एक कृषि प्रधान देश है

दुबारा उसे पढने को जैसे ही आँखें झुकाता हूँ

तो लिखा हुआ पाता हूँ

कि पिछले कुछ बरसों में डेढ लाख से अधिक किसानों ने

आत्महत्या की है इस देश में "[1]

अपने मिट्टी से जुडाव

अरुण कमल ने 'निवृत्त' कविता में अपनी मिट्टी से किसानों के जुडाव कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है।

---

[1] उमाशंकर चौधरी, कहते हैं तब शाहंशाह सो रहे थे, पृ. 43

[1] राजेश जोशी, इस आत्महत्या को अब कहाँ जोड़ूँ, पृ. 130, कथादेश मई 2012

"फूटने के बाद भी मिट्टी की सुराही
जाडे में बोरसी बन जाती है
वैसे ही मैं भी तो काम आ सकता हूँ
अन्न उगा न सकूँ तो क्या
सूखते धान के पास बैठ कौआ तो हाँकूँगा"[1]

कवि अरुण कमल ने जिस परिवेश में रहकर जीवन बिताया है उसी से जुडकर उसकी कविता फूटती है। कवि किसान जीवन से अपने सरोकारों को जोड्ते हुए कहता है कि उसके गीत तो मैदानों, खेतों, बाग- बगीचों से जुडे हुए हैं क्योंकि यही उनका मूल स्रोत है। यही उनकी पूँजी है।

"मैं तो मैदानों खेतों का रहनवार
थोडे से बोल थे बगीचे बघारों के"[1]।

इस प्रकार कवि ने स्थानीय रंग को विशेष महत्व दिया है क्योंकि देश का एक बडा वर्ग ग्रामीण जीवन से जुडा है। अरुण कमल किसान जीवन की सच्चाई को सामने लाने की कोशिश करते हैं। किसान की सबसे बडी पूँजी है उसका खेत, उसकी ज़मीन और इनसे जुडी हुई चीज़ें। यही उसका जीवन है।

---

[1] अरुण कमल, नये इलाके में, पृ.30
[1] अरुण कमल, पुतली में संसार, पृ.15`

वातावरण

भारतीय किसानों का परिवेश विविधाताओं से भरा हुआ है। किसानों के रहन- सहन, आचार- विचार ,रीति- नीतियाँ , मान्यताएँ- परम्पराएँ, उनकी रोज़ी रोटी कमाने के तौर आदि सब कुछ तो भिन्न है। ग्रामीण वातावरण अत्यंत सहज तथा उन्मुक्तता से परिपूर्ण होता है। आपसी सद्भाव और भाई चारा ही इनका मूल स्वर है। कुमार कृष्ण 'मोटर अड्डे पर गुलमुहम्मद' कविता में गाँव का यह वातावरण सदैव स्मरण रहता है-

"गाय-बैल,भेड-बकरी,खेत-किसान-खलिहान
मैं हर रोज सुनता हूँ
बैल के गले की घण्डियों का स्वर"[1]

नागार्जुन ने 'रातोरात भिगो गए बादल' कविता में कवि ने खेत का विवरण इस प्रकार दिया है-

"सोंधी भाफ छोड रहे हैं
ज्यामितिक आकृतियों में
फैले हुए खेत
दूर-दूर , ऊँच- नीच
ऊँच- नीच, दूर- दूर

[1] कुमार कृष्ण, गाँव का बीजगणित,पृ.30

दीख रहे इधर-उधर
डांडे के दोनों ओर
फैले हुए खेत, पसरे हुए खेत
ज्यामितिक आकारों में
दीख रहे खेत!" [1]

कुमार कृष्ण ने 'पानी के पत्थर' कविता में उस ग्रामीण वातावरण का चित्रण किया है-

"मैं लिखना चाहता हूँ
खेतों का ताप
मिट्टी की बौखलाहट
बीज की बेचैनी
ज़मीन का उन्माद
सभी कुछ एक साथ"[1]

एकांत श्रीवास्तव ने 'नागकेसर का देश यह' कविता में छत्तीसगढी वातावरण का चित्रण किया है।

"लुवाई का बखत है
हवा में
यह कैसी महक है

---

[1] नागार्जुन,आखिर ऐसे क्या कह दिया मैंने, पृ.33

[1] कुमार कृष्ण, गाँव का बीजगणित,पृ.69

जो बैलों के नथुनों में भरकर
उन्हें अधीर कर देती है
छानी में लौकी की नार है
और खेतों में
धान की
कटी हुई जडें चमकती हैं
जडें जो पौधों को धारण करती हैं" [1]

पवन करण ने 'बैलगाडी' कविता में एक किसान के घर के वातावरण को बखूबी ढंग से चित्रित किया है-

"कच्चे पक्के रास्ते के
दचके खा- खाकर
लौटा हुआ किसान सो चुका है
घर में ब्यालू कर
गाडी खींचकर आए
जुगाली करते बैल भी
आँगन में सो रहे हैं
बँधे- बँधे खूँटे पर"[1]

---

[1] एकांत श्रीवास्तव , नागकेसर का देश यह, पृ.9

[1] पवन करण, इस तरह मैं, पृ. 28

रहन सहन

किसानों का रहन – सहन उनकी संस्कृति के अनुकूल होता है। इन ग्रामीणों का रहन सहन अत्यंत निम्न स्तर का है। क्योंकि शताब्दियों की गुलामी ने इनकी उन्नति के मार्ग अवरुद्ध कर दिये और अब अशिक्षा, प्राकृतिक आपदाएँ, महंगाई आदि इनकी कमर तोड दी है। आज के गाँवों का चित्रण एकांत श्रीवास्तव ने 'नागकेसर का देश यह' में यों चित्रित किया है-

"कभी देवारों की बस्ती में जाना
देखना पुरानी साडियों
और पुरानी चादरों से बने
उनके तम्बुओं को
एल्युमीनियम की डेकचियों में
जहाँ खदबदाता रहता है अन्न
तीन पत्थरों के चूल्हों पर
यही है इनका घर"[1]

खानपान

किसानों का भोजन और उनके खाने का, परोसने का ढंग कुछ निजी विशेषता लिये हुए होता है। गाँवों में खाद्य पदार्थ अन्य अनेक रूपों

[1] एकांत श्रीवास्तव , नागकेसर का देश यह, पृ.10

में उपलब्द्ध होते हैं। एकांत श्रीवास्तव ने छत्तीसगढी लोगों के खाने की तरीके को व्यक्त किया है-

"आग जलाते हैं
आटा माढते हैं
लकडियाँ चुनते हैं
और उजाड बंजरों में उगे
जंगली करेले
डोंडका, भसकटिया साग के लिए
हमारी इस सभ्यता में
वे फेंक दिए गये
संतरों के छिलके हैं"[1]

रीतिरिवाज़

कृषक जीवन में बच्चे का जन्म, शादी- विवाह, मृत्यु आदि संबन्धी विभिन्न प्रकार के रीति-रिवाज़ देखने को मिलते हैं ,जिन्में कृषक जीवन का दर्शन मिलते हैं।ये रीति-रिवाज़ परंपरागत रूप से चले आते हैं। रीतिरिवाज़ के द्वारा कृषक अपनी परंपरा को जीवित रखता है । कुमार कृष्ण ने 'वह सोचता है' कविता में एक मामूली किसान के सोच विचार को इस प्रकार व्यक्त किया है-

---

[1] एकांत श्रीवास्तव , नागकेसर का देश यह, पृ.16

"खेत से लौटा हुआ किसान
बीज और पृथ्वी के रिश्ते के बारे में सोचता है और
हल के फाल को आग के हवाले कर देता है"[1]

इस प्रकार कृषक समाज के रीतिरिवाज़ कृषक-संस्कृति एवम् कृषक – जीवन की सच्ची पहचान प्रस्तुत किए गए हैं।

मान्यताएँ एवं परम्पराएँ

भारतीय किसान अनेक प्रकार की मान्यताओं और परम्पराओं पर विश्वास करनेवाले है। यहाँ के जनजीवन में नगरीय छल कपट नहीं है। कुमार कृष्ण ने 'बैल एक' कविता में गाँव का सरल एवं साधारण वातावरण किस प्रकार कवि को आकर्षित करते हैं इसकी ओर इशारा करते हैं-

"गाँव से शहर तक खँसता है वह
बूढा पंजर
खेत जोतने से लेकर
ठेले खींचने तक की मशक्कत
कभी बहस का मुद्दा नहीं बनती
वैसे हर मौसम में नलवाडी
उसके बिकने की दास्तां है"[1]

---

[1] कुमार कृष्ण, गाँव का बीजगणित,पृ.34

आभूषण

आभूषण धातु,रत्नों ,छोटे-मोटे शंख,पत्थर आदि से बनाये जाते है। ये आभूषण पाँव की अगुँली से लेकर ललाट तक के सभी अंगों को सुसज्जित करते हैं।जैसे माथे पे टीला, गरदन में हार , नाक में बेसर, हाथ में चूडियाँ, अंगुलियों में अंगूठियाँ, कटि में मेखला, पाँव में झाँझर आदि। उन विविध प्रकार के आभूषणों का उल्लेख 'कन्हार' कविता में एकांत श्रीवास्तवजी करते हैं। अपने गाँव छत्तीसगढ में प्रचलित विभिन्न आभूषणों की चर्चा यों की है-

"पर कहीं भी हों यहाँ की औरतें
उनके बदन पर मिल जाएँगे वही गिलट के गहने
गले में सूँता और बन्धा
कमर में करधन
हाथ में ऐंठी
कान में खिनवा"[1]

---

[1] कुमार कृष्ण, गाँव का बीजगणित,पृ.74

[1] एकांत श्रीवास्तव,बीज से फूल तक,पृ. 125

वेश-भूषा

भारत के विभिन्न प्रांतों के लोग अपने परिवेश के अनुकूल विभिन्न प्रकार के वस्त्र पहनते हैं। वहाँ के परिवेश के अनुकूल ही वहाँ के वस्त्र परिधान तथा अलंकरण होते हैं। छत्तीसगढ के लोगों की वेशभूषा यों है-

"कहीं भी हों यहाँ के आदमी
वही धोती मिलेंगे पहने हुए
बडी- बडी ज़ेबों वाला रंगीन सलूखा
पाँव में भँदई
काँधे पर साफी
और कान में खुँसी ठूठी बीडियाँ"[1]

त्योहार

किसानों के जीवन में पर्वों तथा त्योहारों का महत्वपूर्ण स्थान है। गाँवों में सामाजिक तथा धार्मिक उत्सव किसी एक घर का न होकर सारे गाँव का सम्मिलित समारोह होता है। लोग त्योहारों के दिन अच्छे वस्त्र पहनते हैं, बढिया भोजन बनाते हैं, घर में चारों ओर खुशी का वातावरण होता है।

---

[1] एकांत श्रीवास्तव,बीज से फूल तक,पृ. 125

गोवर्धन पूजा

दीपावली के दूसरे दिन गोवर्धन मनाया जाता है। इस दिन भगवान की आकृति बनाकर उसकी पूजा होती है। कृषक अपनी गायों और भैंसों को सजाते हैं तथा कृषि संबन्धी उपकरणों की पूजा करते हैं भारतीय संस्कृति में गो- पशुओं को प्रारम्भ से ही बहुत महत्वपूर्ण समझा गया है तथा इस दृष्टि से इनकी पूजा की जाती थी। उस समय ग्रामीण लोग-

"सजे हुए रंगीन कुर्तों और कौडियों से
पीकर मंद धुत्त
नाचते हुए घर-घर
तेंदू की तेल पी हुई लाठियाँ भाँजते हवा में
लगाते हुए एक दूसरे को गोबर का टीका
थामे हुए मडई का रंगीन फूलदार ध्वज
सोनई बाट में विदा कर दिए गए हैं"[1]

नवान्न

गाँव में नवान्न जैसा उत्सव मनाया जाता है। जिसका जिक्र जितेन्द्र श्रीवास्स्तव ने इस प्रकार किया है-

"कितना मनभावन है

---

[1] एकांत श्रीवास्तव,बीज से फूल तक,पृ. 125,126

जो पुरखों ने बना दी है एक रस्म
कि फसल कटने से पहले-पहले
हर घर में होना ही चाहिए
नवान्न का उत्सव" [1]

अंधविश्वास

प्रकृति की गतिमानता के बहुत से रूपों से किसान समझ न पाने के कारण भयाक्रांत हो जाते थे और उससे रक्षा केलिए पूज और बलि पर विश्वास करने लगते थे। इसलिए उनमें अन्धविश्वास, टोने- टोटके, जादू और मंत्रों की परंपरा दिखायी देती है। अनेक लोक विश्वासों से समृद्ध गाँव की दुनिया के निजी विश्वासों को, जिसमें लोक परंपरा का सर्जनात्मक योगदान होता है। यह अलग बात है कि उनमें से अनेक की तार्किक फलश्रुतियों से हम परिचित नहीं है। साथ ही कई विश्वास ऐसे भी हैं, जिनकी लोक चेतना जीवन को हर्ष- विषाद, आशा-आकांक्षा से संचालित होती है।

लोक विश्वास के अनुसार हरे – भरे पेड को क्षति पहूँचाना सुखद नहीं है, यदि कभी ऐसी ज़रूरत हो तो यह खयाल रखना ज़रूरी है कि वृक्ष को कम से कम क्षति पहूँचे-

"हरा पत्ता

---

[1] जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा, पृ. 41

कभी मत तोडना

और अगर तोडना तो ऐसे

कि पेड को ज़रा भी

न हो पीडा"[1]

लोक विश्वास जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं के प्रति कृतज्ञता के भाव को तरजीह देता है। केदारनातह सिंह ने अकाल में सारस कविता में अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों को व्यक्त किया है। एक किसान पिता अपने बेटे को सन्देश देता है-

"रात को रोटी जब भी तोडना

तो पहले सिर झुकाकर

गेहूँ के पौधे को याद कर लेना"[1]

दुर्दिन जब आनेवाले होते हैं, तब प्राकृतिक संकेतों में उसकी छाया प्रकट होने लगती है, इस विश्वास को पिता अपने बेटे से प्रकट करते हुए कहता है-

"अगर कई – कई रातों तक

कभी सुनाई न पडे स्यारों की आवाज़

तो जान लेना

[1] केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, पृ. 18

[1] केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, पृ. 18

बुरे दिन आनेवाले हैं"[1]

यहाँ पिता अपने बेटे को दुर्दिन के बँवर से उबरने में आत्मबल की भूमिका का प्रत्याख्यान करता है-

"मेरे बेटे
बिजली की तरह कभी मत गिरना
और कभीए गिर भी पडो
तो दूब की तरह उठ पडने केलिए
हमेशा तैयार रहना"[1]

यह कवि की लोकचेतना का उत्कृष्ट बिन्दु है, जब वह प्रचलित विश्वासों से अलग लोकचेतना के छन्द को रचना चाहता है। आमतौर पर दिशाभ्रम की स्थिति में ध्रुवतारे की अपेक्षा कुत्ते के भैंकने पर अधिक विश्वास करें। यह कवि के जनधर्मी लोकविश्वास का संवेदनशील उदाहरण है-

"कभी अँधेरे में
अगर भूल जाना रास्ता
तो ध्रुवतारा पर नहीं

[1] केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, पृ. 18,19

[1] केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, पृ. 19

सिर्फ दूर से आनेवाली
कुत्तों के भूँकने की आवाज़ पर
भरोसा करना" [1]

कुत्ते के भूँकने पर भरोसा करना, उस आस्था को प्रकट करता है, जिससे लोकजीवन के प्रति कवि की संबद्धता पुष्ट होती है।

एकांत श्रीवास्तव गोवर्धन पूजा करने से क्या-क्या लाभ होता है इसकी ओर इशारा करते हैं-

"सब भूत – प्रेत , मरि- मसान
मंत्र कीलित रुके रहेंगे वे अब वहीं
अमंगल नहीं होगा गाँव में अब
बैगाओं ने की है पूजा
दी है बलि"[1]

खेती-बारी

भारत की खेती- बारी मौसम पर निर्भर है। इसलिए बाढ, सूखा आदि के आने पर उनकी खेती नष्ट हो जाती है। भारत के अधिकांश किसान गरीब और अशिक्षित हैं। बेरोज़गारी हमारे गाँवों की सबसे बडी

[1] केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, पृ. 19

[1] एकांत श्रीवास्तव,बीज से फूल तक,पृ. 126

समस्या है। गाँव का मुख्य पेशा खेती है, कृषि के सारे काम एक दूसरे की साझेदारी एवं सहयोग से होते हैं। उनका सुन्दर वर्णन समकालीन कवित में हैं। 'सिला बीनती लडकियाँ' कविता में एकांत श्रीवास्तव ने इस प्रकार कहा है-

"धान- कटाई के बाद
खाली खेतों में
वे रंगीन चिडियों की तरह उतरती हैं
सिला बीनने झुण्ड
और एक खेत से दूसरे खेत में
उडती फेरती हैं"[1]

भारतीय समाज और उसके लोकजीवन को समझने केलिए यहाँ के ग्रामीण जीवन से परिचित होना ज़रूरी है। क्योंकि भारतीयता की जडें गाँवों में ही है। अरुण कमल ने अपने परिवेश में किसान और उसकी भूमिका को सहज होकर पूरी गहराई से देखा है। उनकी कविताओं में किसान की संवेदना अत्यंत सूक्ष्म रूप में घुली- मिली है।

"बचा हूँ अब भी
जल कर राख हुए घर का चौखट
रौंदा हुआ धान का खेत
नल लग जाने के बाद त्यागा हुआ घर का कुआँ बचा है जल

[1] एकांत श्रीवास्तव, अन्न है मेरे शब्द ,पृ.16

अब भी

भग्न सुनसान

ढहा गिरा या थोडा उठा कर छोडा हुआ

अधूरा मकान"[1]

भारतीय जीवन का मुख्य आधार ग्राम है। गाँव का जीवन खेतों पर निर्भर है। खेती करना, फसल काटना, काटने के बाद अनाज की बोरियाँ गोदाम में पहूँचाना ये सब पवन करण के 'गेहूँ' कविता में दिखाई देते हैं।

"फसल काटने के कोई डेढ माह बाद

बोरियों में भरकर गेहूँ आया घर

हर साल का बँधा हुआ किसान है

सो पति ने इस बार भी बोल दिया उसे ही

सो उसने एक सुबह अपनी ट्रॉली

आकर खडी कर दी घर के दरवाज़े पर" [1]

कृषि सहयोगी औजार

खुरपी

खुरपी घास छीनने का औजार एक औजार है।

"मवेशियों केलिए छीलनी हो घास

सोहना हो खेत

---

[1] अरुण कमल, नये इलाके में, पृ.27

[1] पवन करण, अस्पताल के बाहर टेलीफोण, पृ.31

चढानी हो मिट्टी फुलवारी में

गाडना हो माडो का बाँस आँगन में

या खोदनी हो चौके की माटी चूल्हा गाड्ने केलिए

काम नहीं चल सकता खुरपी के बिना”[1]

कुदाल

कुदाल मिट्टी खोदने और खेत गडने का एक औजार है।

“कन्धे से उतरकर

खेत की मेड पर

खडी है कुदाल ठकुआई हुई”[1]

किसानों को खेती करने केलिए कुदल की ज़रूरत है।

हेंगा

यह भी कृषि कार्य करने केलिए प्रयुक्त औजार है। ज़मीन के साथ इसका निकटतम रिश्ता है। “हेंगा ज़मीन के साथ घिसने वाले

काठ का नाम है

वह हर वक्त

बीज की जडों के बारे में सोचता है”[2]

---

[1] जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा,पृ. 43

[1] जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा,पृ. 127

[2] कुमार कृष्ण, गाँव का बीजगणित,पृ.99

धान

नागकेसर

नागकेसर छत्तीसगढ के एक लुप्तप्राय धान का नाम है जिसके पौधों और बीज का रंग सुर्ख लाल या लगभग कत्थई होता है।

"तब इतनी परती नहीं थी ज़मीन
यहाँ उगता था
दूबराज, जयफूल
विष्णुभोग और नागकेसर
हरे खेतों में अलग से
दिखता था"[1]

भुट्टा

भुट्टा का सुन्दर वर्णन कवि ने यों किया है-

"बाल में केश की तरह/ निकला है भुजा
अभी कुछ ही दिन हुए
उसमें आए हैं दाने

[1] एकांत श्रीवास्तव , नागकेसर का देश यह, पृ.23

नरम- नरम रस भरे"[1]

किसानों के वाहन

जब मनुष्य ने यह जाना कि गोला आकार का पहिया ज़मीन पर तेज़ी से चलता है तो उससे उस पहिये के ऊपर लकडी की पटरिया इत्यादि लगाकर उन पर सामान रखकर बैलों,घोडों और अन्य सुविधा से पाये जानेवाले पशुओं को प्रयुक्त कर खींचने लगा इससे उसके श्रम एवं समय की भी बचत हुई तथा पशुओं का उपयोग भी हुआ। कृषि कार्य में इन वाहनों का प्रयोग प्रारम्भ से लेकर आज तक होता चला आ रहा है। आज उसके आकार- प्रकार और बनावट में बहुत थोडा ही अंतर आया है। वाहनों के नामकरण उनमें जुते जानवरों के आधार पर किये गये है जैसे- बैलगाडी,भैंसगाडी आदि। खेतों में बीज, बेंड,खाद की ढुलाई से लेकर बाज़ार में अनाज ले जाने की प्रक्रिया तक इन वाहनों का प्रयोग होता है।

बैलगाडी

आज विज्ञान अपने चरम विकास पर है किंतु गाँवों में अब भी बैलगाडी दिखाई पडती है। यह बैलगाडी तो ग्रामीणों के सुस्त मानसिकता का प्रतीक है। जितेन्द्र श्रीवास्तव को अपने गाँव की मन्द गति पर आश्चर्य हुआ -

"वे बैल जो हल से

---

[1] जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा,पृ. 81

चीर सकते हैं धरती का कलेजा
ढो सकते हैं सामान बैल गाडी में नधकर
अब साबित हो गए हैं पिछडे"[1]

विनाशकारी कीडे

कृषि कार्य में नित्य नूतन बाधाएँ उत्पन्न होती रहती हैं। इन आपत्तियों में से प्रमुख है कीडों मकोडों का प्रकोप। अनेक कीडे पूरी फसल को नष्ट कर देते हैं, गेहूँ के डंठल कट कर गिरा देते हैं। मटर चने के दानों को कच्ची अवस्था में ही खा जाते हैं। आलू अरहर आदि के पौधों में झुलसा नामक रोग लग जाता है। इन सभी कष्टों से कृषक मुक्ति के स्वप्न देखते हैं। आधुनिक विज्ञान से अनेक कीडों के उत्पात को और अनेक रोगों के प्रभाव को नष्ट किया जा सकता है।

घुन

अन्न, लकडी आदि में लगानेवाला एक प्रकार का छोटा कीडा है घुन। यह किसान की एक सबसे बडी शत्रु है। इसका परिचय जितेन्द्र श्रीवास्तव ने 'घुन' कविता में प्रस्तुत किया है-

"घुन लग जाए
तो चाल देते हैं गेहूँ
नरक मचा देते हैं बखार में " [1]

---

[1] जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा,पृ. 45

समकालीन कविता में कृषि संस्कृति एवं किसान जीवन के परिवेश का यथार्थ एवम् सूक्ष्म चित्रण हुआ है। समकालीन कवि किसानों की वेदनाएँ नहीं अपितु समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करता है। संघर्ष केलिए तैयार रहने का संदेश भी देता है। कृषक जीवन के यथार्थ का जब पर्दाफाश होता है तब उनकी लोकसंस्कृति से जुडे कई तत्वों का उद्घाटन भी होता है। यह तत्व उन्हें अन्यों से अलग करता है और अपनी अस्मिता क चिह्न भी बनता है। आज लुप्त होटल लोकतत्वों में उनकी याद कर उन्हें और ताजा बनाने का औदात्यपूर्ण कार्य हमारे कई समकालीन कवि करते आ रहे हैं।

****

[1] जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा,पृ. 47

समकालीन कविता में लोक प्रकृति

मनुष्य और प्रकृति के बीच का संबन्ध अनादिकाल से रहा है। मनुष्य स्वयं प्रकृति का अंग है। प्रकृति में ही सारी सृष्टि उत्पन्न होती है अंत में उसमें ही लीन हो जाती है। इसलिए जीवन में निरंतर प्रकृति का बोध हमें होता रहता है। शुक्लजी के अनुसार- "जिन प्राकृतिक दृश्यों के बीच हमारे आदिम पूर्वज रहे और अब भी मनुष्य जाति का अधिकांश (जो नगरों में नहीं आ गया है) अपनी आयु व्यतीत करता है, उनके प्रति प्रेम भाव पूर्वसाहचर्य के प्रभाव से संस्कार या वासना के रूप में हमारे अंतकरण में निहित है"[1] । इस प्रकार मनुष्य के जीवन में प्रकृति की दखलंदाज़ी प्राचीन काल से चली आ रही है।

भारतीय संस्कृति अपनी पुरानी परंपरा पर निर्भर है। वह प्रकृति से जुडी है। अर्थात् उसमें प्रकृति और मनुष्य का अटूट संबन्ध है। मनुष्य प्रकृति की गोद में ही पला है। मनुष्य के वैज्ञानिक विश्लेषण से यह बात सिद्ध है कि प्रकृति द्वारा ही मनुष्यों में भावों का उदय हुआ। प्रकृति ही कविता की प्रेरक शक्ति है। प्रकृति के ही नाना रूपों को देखकर मनुष्य के ह्रदय में कौतुहल पूर्ण भाव उदित हुए। प्राकृतिक वातावरण में रहनेवालों को जीवन का यथार्थ सुख मिलता है। आज कवि लोग खुले परिवेश में यात्रा कर रहे हैं, जहाँ उसे प्रकृति और अपने आसपास के परिवेशों का

---

[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि भाग-2, पृ. 61

सामना करना पडता है। उन्हें सौंन्दर्यबोध अपने चारों ओर व्याप्त प्रकृति से मिलता है। प्रकृति अत्यंत सौंन्दर्यमयी है। उसका मोहिनी स्वरूप अत्यंत अद्‌भुत, अनुपम एवं अकथनीय है। मानव ने प्रकृति की सुरम्य गोद में ही अपनी सम्पूर्ण लीलायें की हैं। इसी के आश्रय में मानव का लालन- पालन हुआ है और इसी के सहारे वह आज इतना उन्नत एवं उच्च बना है।

प्रकृति के ऋतु,आकाश, समुद्र, पशु- पक्षी, नदी- नाले, पेड-पौधे,झरने, सभी मनुष्य के संवेदनाजन्य मन से जुडे हैं। प्रकृति कभी कोमल- ललित किसलयों एवं पराग- पूरित प्रफुल्लित प्रसूनों के द्वारा वसंत-श्री का वेश बनाकर हमारे चित्त को बरबस अपनी ओर खींच लेती है, तो कभी तप्त किरणों द्वारा अग्नि वर्षा करती हुई भयंकर तेज एवं असह्य उष्णता से युक्त निदाघ का रूप धारण करके हमें भयभीत बना देती है। कभी वह श्याम मेघमालाच्छादित सघन गगन- मण्डल से जल की फुहारें बरसाती हुई तथा हरित परिधान ओढकर वर्षा- वधू का सुकुमार रूप धारण करती हुई अपने कुसुमित लता एवं पल्लवित द्रुमदलों द्वारा हमारे हृदयों को मुग्ध बना देती है तो कभी विकट विद्युल्लता द्वारा दाँत कटकटाती हुई तथा घन- गरजन द्वारा भयंकर नाद करती हुई एक दानवी की भांति हमें प्रकम्पित कर देती है। इसी तरह कभी वह राका- राशि के ज्योत्सना- पूर्ण मुख मण्डल से खिलखिलाकर हँसती हुई तथा विकसित-सुललित कमल- दलों के रूप में अपनी रूप माधुरी की छटा विकीर्ण करती हुई सुहावनी शरद-ऋतु के मनो-मोहक वेश द्वारा हमें आनन्द- विभोर कर

देती है, तो कभी हिमपूरित शीतल वायु के झोंकों से प्रताडित करती हुई तथा चारों ओर हिमापात द्वारा विनाश करती हुई शिशिर- दावनी के रूप में सम्पूर्ण प्राणियों के ह्रदयों को काँपा देती है। इस प्रकार यह प्रकृति मृदुल एवं कठोर, सुकुमार एवं भयंकर तथा सुन्दर एवं असुन्दर दोनों रूपों में विभिन्न क्रीडायें करती हुई दृष्टिगोचर होती है। समकालीन कविता में प्रकृति से संबन्धित कविताओं में लोक प्रकृति और परिवेश का चित्रण बहुतायत से है।

लोक प्रकृति के अनेक उपादान

वन

वन हमारे पर्यावरण का संचालक और संरक्षक है। जीवन का आधार है। वन जलधाराओं को रोककर रखता हैं, मिट्टी को कटाव से बचाता है, प्राणवायु देता है, बहुमूल्य लकडी, चारा इंधन और औषधियाँ प्रदान करता है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जन्म उत्तरप्रदेश के बस्ती जिले में हुआ था। आगे नगरीय परिवेश में रहते हुए भी उनके जीवन के आरम्भिक काल की प्रकृति का जो रूप उनके मन में रहती है उसको बहुत सुन्दर ढंग से उन्होंने यों व्यक्त किया है-

"यह कैसा अनिंघ वन है
एक सुनहरा उजास
थिरक रहा है
हर वृक्ष पर,

हर पत्ती अहिस्ता- अहिस्ता गुनगुना रही है
किरनें एक दूसरे से गुंथकर
नाच रही हैं
सारा जंगल झूम रहा है मेरे भीतर"[1]

वे प्रकृति के लोकभाव से प्रेरित कवि हैं । पहले जंगल हरे भरे थे,और उसमें चिडियाँ चहचहाती थीं लेकिन आज जंगल कुछ धुएँ या कोयले या चूल्हे में जलती लकडी में तब्दील हो चुका है। पहले वह कितने स्वच्छ एवं सुन्दर था लेकिन आज स्थिति बदल गयी है। इसका चित्रण 'जंगल की याद मुझे मत दिलाओ' कविता में कवि ने किया है –

"जंगल की याद
अब उन कुल्हाडियों की याद रह गयी है
जो मुझ पर चली थीं
उन आरों की जिन्होंने
मेरे टुकडे- तुकडे किये थे
मेरी सम्पूर्णता मुझसे छीन ली थी!" [2]

पेड-पौधे

[1] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, खूँटियों पर टँगे लोग,पृ.48
[2] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, खूँटियों पर टँगे लोग,पृ.13

पेड- पौधों के साथ मनुष्य का रागात्मक सम्बन्ध है। पत्तियों की स्निग्ध भाषा की आँखों को बंजर होने से रोकती है, उसे आदमीपन के नज़दीक पहुँचा देती है। इतना ही नहीं पेड बच्चों को फल, स्त्रियों को फूल और प्रेम केलिए छाँह के अलावा थोडी सी आड भी देते हैं। लेकिन मनुष्य बहुत स्वार्थी है कि वह केवल काठ की चिडियों से अपनी दीवार सजाता है। पर्यावरण सुरक्षा पर बल देते हुए कवि चन्द्रकांत देवताले पेड की महिमा का वर्णन करते हैं। कवि पेड की गरिमा को यों चित्रित करते हैं-

"पर आदमी पेडों की पसलियों
तक से वसूल करता है
और काठ की दो तीन चिडियाओं को
निरंतर अपने कन्धों पर
बिठलाते हैं
ताकि आदमियों के
बच्चों की दिलचस्पी का दरवाज़ा
खडकता रहे
और दूध के दाँतों के टूटने से पहले ही
उसके कान
संगीत केलिए बहरे नहीं जायें" [1]

[1] चन्द्रकांत देवताले, लकडबग्घा हँस रहा है, 74-75

पेड तो चिडियों को घोंसला देता है और अपनी टहनियों में बसनेवाली चिडियों के कलकल संगीत से सारे बच्चों के अंतर एक अच्छा भविष्य, एक नयी सुबह की आकांक्षा भरता है।पेड के बारे में मंगलेश जी कहते हैं कि पेड अनादि काल से हमारे साथ है,पृथ्वी और आकाश में अपने पर्यावरण असंतुलन का मुख्य कारण पेड- पौधों तथा हरियाली का घट जाना है। समकालीन कवि वृक्षों के प्रति सबसे अधिक चिंतित हैं। वे पेड-पौधों और मनुष्य में अंतर्सम्बन्ध देखता है। कुकरेतीजी इसी स्थिति को बयान करते हैं-

"कमज़ोर सूरज की काँपती हुई उँगलियाँ
उसको छू रही हैं बहुत डरकर
वह पेड का कटा हुआ हाथ है सिहरन होती है उसमें
और उसे देखनेवाला पेड अपनी जडों में घुटकर रह जाता है"[1]

'आम का पेड' कविता में आलोकधन्वा ने बहुत पुराने आम के पेड की याद करते हुए कहा-

"बीसों साल पुराना
यह पेड आम का
शाम के रंग का
ज़मीन तक झुक कर

[1] हेमंत कुकरेती, चलने से पहले, पृ. 97

ऊपर उठी हैं
इसकी कई डालियाँ
कुछ तने को ऊपर उढाती
साथ- साथ गयी हैं खुले में"[1]

फूल रोहिडा मरु प्रदेश का वृक्ष है, जो पलाश की तरह ही खिलता है। इसे सागवान की तरह ही उत्कृष्ट और मूल्यवान माना है। विजेन्द्र ने 'फूल रोहिडा' कविता में इस पेड का सुन्दर वर्णन किया है-

"फूल रोहिडा जब पहले पहले देखा
लगा मुझे जैसे दोआब का पलाश है
खिला फूल जनपद की ऋतु का उलास है
माथ नवा मैंने खींची मन में रेखा"[2]

नदी-नाले

प्राचीन काल का इतिहास इस बात का गवाह है कि विश्व की लगभग सभी प्राचीन संस्कृतियां नदियों के किनारे ही विकसित हुई हैं। ईश्वर ने इस धरा को जो अनगिनत वरदान दिये है उनमें जीवन केलिए परम आवश्यक वायु के बाद जल का ही स्थान है। मनुष्य अन्न के बिना कुछ ही जीवित रह सकता , लेकिन बिना जल का एक ही दिन भी जीवित नहीं रह सकता। देश की संस्कृति, परंपरा और इतिहास के निर्माण में

[1] आलोकधंवा, दुनिया रोज़ बनती है, पृ. 9
[2] विजेन्द्र, उदित क्षितिज पर, पृ. 31

नदियों का योगदान महत्वपूर्ण है। भारतीय सभ्यता का विकास ही नदी-तट पर हुआ है। इसलिए यहाँ के लोगों का नदियों से गहरा जुडाव है। हमारे देश की नदियों ने मानव का काफी कल्याण किया है इसलिए भारत में नदियों को माँ का दर्जा देकर पूजा की जाती है। नदियाँ भारतीय संस्कृति की प्रतीक मानी जाती है। भारत में सभी नदियां पवित्र मानी जाती है, लेकिन जिस नदी को सबसे ज़्यादा पूजनीय माना जाता है, वह है गंगा। जो प्रकृति मानव जीवन का आधार है, उसके के साथ ही आज बडे बडे छल, और धोखा हो रहा है। गंगा को प्यार कविता में प्रकृति के साथ की गयी षडयंत्र को इस प्रकार कहा है-

"षड्यंत्र

गंगा के साथ भी षड्यंत्र

हिमालय के साथ

पृथ्वी नक्षत्र समस्त मण्डल के साथ"[1]

देवताले ने नदियों के संरक्षण पर ध्यान दिया है। आज लोग विकास के नाम पर प्राकृतिक वस्तुओं का नाश कर रहे हैं। कवि कहते हैं-

"आकाश के फेफडों में दमा

नदियों के पेट में कैंसर

और हवा की छाती क्षय के कीटाणु बोकर

---

[1] अरुण कमल,अपनी केवल धार,पृ.64

देखो वे सौ – पचास हाथी सफेद झूमते

पता नहीं किस जश्नगाह में जा रहे हैं"[1]।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपनी लम्बी कविता 'कुआनो नदी' में एक ऐसी नदी का जिक्र किया है जो कुएँ से निकलती है। मुर्दाघाट केलिए प्रसिद्ध है यह नदी।

"इस नदी के किनारे

कोई मेला नहीं लगता।

न ही पूर्णिमा- स्नान होते है।

एक मंदिर है

जो बहुत कम खुलता है

जिसकी सीढियाँ

अहदियों के बैठने के काम आती हैं"[1]

'नदी से' कविता में भी कवि ने नदी से अपने आत्मीय रिश्ते को व्यक्त किया है।

"तमाम दोपहर-

मैं तुम्हारे किनारे घूमता रहा

बिना यह जाने कि तुम कहाँ से आयी हो

[1] चन्द्रकांत देवताले, आग हर चीज़ में बतायी गयी थी, पृ. 115

[1] सर्वेश्वर्दयाल सक्सेना, कुआनो नदी, पृ.14

और किससे मिलने जा रही हो

तुम्हारी कितनी थाह है"[1]

केदारनाथ सिंह ने अपने गाँव की नदी के बारे में इस प्रकार कहा-

"मेरे गाँव को चीरती हुई

पहले आदमी से भी बहुत पहले से

चुपचाप बह रही है वह पतली- सी नदी

जिसका कोई नाम नहीं

तुमने कभी देखा है

कैसी लगती है बिना नाम की नदी?

कीचड, सिवार और जलकुंभियों से भरी

वह इसी तरह बह रही है पिछले कई सौ सालों से

एक नाम की तलाश में

मेरे गाँव की नदी"[1]

नदियों के पास रहने से जीवन की मुख्य आवश्यकता जल की सहज ही पूर्ती हो जाती है, इसलिए संसार की सभी मुख्य सभ्यताएं नदियों के किनारों पर ही विकसित हुई। विनोद कुमार शुक्ल ने 'नदी के कुछ अदृश्य खँडहर हैं जलवाष्प' नामक कविता में इस प्रकार कहा है-

"नदी के कुछ अदृश्य खँडहर हैं जलवाष्प

[1] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, खूँटियों पर टँगे लोग,पृ.95

[1] प्रयाग शुक्ल,कविता नदी,पृ.224

इतिहास की नदी हैं, गंगा, ब्रह्म्पुत्र, जमुना,व्यास
एक मनुष्य नदी में स्नान करता है
यह सभ्यता है
नदी के किनारे एक स्त्री कपडे धोती है
यह सभ्यता है
एक मृत लडका नदी में
संस्कार की तरह
प्रवाहित होता है
बरसात नदी के खँडहर का दृश्य है
जहाँ नदी नहीं है
बरसात में भीगना पर्यटन है"[1]

मंगलेश डबराल ने अपनी कविता 'आयोवा' में अपने गाँव की नदी के बारे में इस प्रकार कहा है-

"इस शहर का नाम
एक नदी का नाम है
शहर का सन्नाटा नदी की आवाज़ है
दिन में शहर के चौराहे, पुल और पार्क
चुपचाप पानी में उतरते हैं
किताबें, कपडे,गृहस्थी का सामान और

[1] प्रयाग शुक्ल,कविता नदी,पृ.242

हैमबरगर बेचती दूकानें

पानी में स्थिर पडी रहती हैं

खिलौनों की एक दूकान

कुछ देर नदी के तल में सो जाती है"[1]

कवि कुमार विकल ने 'नदी माँ' कविता में नदी के साथ कवि के रिश्ते को अत्यंत सुन्दर ढंग से चित्रित किया है-

"किंतु हर्षित नदी

कोई लोकगीत गा रही है

जैसे पर्व मना रही है

कवि गीत को समझ नहीं पा रहा है-

माँ, ओ नदी माँ!

मुझे थोडा- सा बल दो

मेरी सुख रही जिजीविषा को जल दो"[2]

'कोई नदी है यह' कविता में अष्टभुजा शुक्ल ने अपने अंचल की नदी के बारे में कहा-

"नदी ने

---

[1] प्रयाग शुक्ल,कविता नदी,पृ.276

[2] कुमार विकल, संपूर्ण कविताएँ, पृ. 235

अपने आँचल को
दो भागों में
बाँट लिया है
जिसके आधे भाग में
खेती होती है
और आधे भाग से
सींचती है नदी
अपनी अधिया फसल”[1]

पगडंडियाँ

गाँवों में पगडंडियाँ दिखाई देती हैं। ग्रामीण उस पथ पर चलते हैं। आलोकधन्वा ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है-

“वहाँ घने पेड हैं
उनमें पगडंडियाँ
ज़रा आगे ढलान शुरू होती है
जो उतरती है नदी के किनारे तक”[2]

पगडण्डियाँ हमें कहाँ ले जाते हैं, वह हमारा नहीं जानते हैं। ये तो योजना के अनुसार बनाए नहीं। इसलिए मदन कश्यप ने कहा-

---

[1] अष्टभुजा शुक्ल, इसी हवा में अपनी भी दो चार साँस है, पृ. 63
[2] आलोकधंवा, दुनिया रोज़ बनती है, पृ. 83

"कभी खुले मैदान में

तो कभी सघन झाडियों में

कभी घाटियों में

तो कभी पहाडियों में

जाने कहाँ- कहाँ ले जाती हैं पगडण्डियाँ"[1]

पहाड

पहाड के ऊपर सूर्योदय होता है और सूर्यास्त भी वहाँ होता है। अनेक युगों से दृढ होकर रहनेवाले पहाड को देखकर राजेश जोशी कहते हैं-

"युगों की उम्र वाले

पथरीले

और खुरदरे पहाड" [2]

कवि राजेश जोशी के अनुसार पहाड सरल थे। इसलिए उसमें-

"पहाड सरल थे

लकडहारों की तरह

मैंने गुस्से में नहीं देखा कभी उन्हें

लेकिन लोग कहते हैं

निर्णायक होता है पहाडों का गुस्सा"[3]

---

[1] मदन कश्यप, लेकिन उदास है पृथ्वी,पृ. 17

[2] राजेश जोशी, एक दिन बोलेंगे पेड, पृ. 31

[3] राजेश जोशी, एक दिन बोलेंगे पेड, पृ. 35

सूर्य

सूर्य-ग्रहण का वर्णन अरुण कमल ने इस प्रकार किया है-

"बहुत सुन्दर लगेगा सूर्य
धीरे-धीरे गरेगा प्रकाश
और अंत में रह जाएगी,एक काली पुतली
रोशनी के वर्क में लिपटी,
कभी बस हीरे के नग-सा दमकता सूर्य
कभी मोतियों की माला सा झिलमिल
कभी गरी की एक फाँक भर उज्ज्वल
और एक क्षण को धरती पर बिछेगी
प्रकाश और अँधेरे से बुनी चटाई" [1]

समुद्र

समुद्र की लहरें कवि के मन पर एक के बाद दस्तक देती है।

"सभी ओर से
अंतरतम के किसी कोण पर
झुका हुआ- सा
सुनता प्रतिपल
एक समुद्री दस्तक
मन की पर्त- पर्त पर

[1] अरुण कमल,अपनी केवल धार,पृ.24

धीमे-धीमे....." [1]

यहाँ प्रकृति एवं कवि के बीच एक रिश्ता सा कायम होता है। सुन्दर सागर की ओर हमारा ध्यान खींचकर सुषमा सिन्हा कहती है-

" ऐ सुन्दर सागर,
तुम कब और कहाँ से आए हो?
युगों- युगों के सारे भेद छुपाए हो।
ये विशाल हृदय कहाँ से पाया है?
कुछ मुझको भी बतलाओ ना
आखिर इतने गहरे क्यों हो?"[2]

वर्षा-बादल

पहली वर्षा का चित्रण अरुण कमल ने इस प्रकार किया है-

"खूब बरसा है पानी
जीवन रस में डूब गई है धरती
.....
धरती बहुत संतुष्ट बहुत निश्चिंतहै आज
दूध- भरे थन की तरह भारी और गर्म
.....
बज रही है धरती

---

[1] केदारनाथ सिंह, अभी बिल्कुल अभी, पृ. 25
[2] सुषमा सिन्हा, मिट्टी का घर, पृ. 50

हजारों तारों वाले वाद्य-सी बज रही है धरती
चारों और पता नहीं कितने जीव-जंतु
बोल रहे हैं हजारों आवाजों में कभी मद्धिम कभी मंद्र कभी शांत"[1]

प्रकृति नैसर्गिक ढंग से चल रही है, जबकि मानव का जीवन पूरा कृत्रिम हो गया है-

"बारिश हो रही है झमाझम
कितना पुराना तरीका है बादलों के
बरसने का"[2]।

कवि मदन कश्यप का 'धूप में बारिश' कविता में प्राकृतिक सौंदर्यबोध स्पष्ट झलकता है।

"जब बरसने लगता है बादल पूरी तैयारी के बिना
तब उगी होती है आसमान में एक ओर धूप भी
अभी- अभी उसने जिस धरती को जलाया है तपाया है
उसे बारिश में नहाती जलन मिटाती देखकर
कुटिलता से मुस्कुराती हुई"[3]

---

[1] अरुण कमल, सबूत,पृ.12

[2] बोधिसत्व, हम जो नदियों का संगम है, पृ.41

[3] मदन कश्यप, कुरूज,पृ. 28

बरसने केलिए आतुर होकर रहनेवाले भूरे काले बादल को देखकर कवि बोधिसत्व कहता है-

"भूरे- काले बादल
बरसने को आतुर
न जाने कहाँ- कहाँ से
आ कर जुट रहे हैं यहाँ," [1]

आँधी

आँधी जैसे प्रकृति क्षोभ से विश्व में कई आदमी मारे जाते हैं। इससे त्रस्त लोगों की स्थिति अरुण कमल की 'आँधी की एक रात' कविता में द्रष्टव्य है-

"आँधियाँ जोरों से दौडती आती हैं
चारों दिशाओं से छूटकर
बार- बार मेरे दरवाजे को पत्ते-सा हिलातीं
लगता है कोई पिस रहा है अँटक कर
दरवाज़े की फाँट में
रह-रहकर हिल रहा है मेरा घर"[2]

---

[1] बोधिसत्व, सिर्फ कवि नहीं, पृ.47

[2] अरुण कमल,अपनी केवल धार,पृ.42

रात

अरुण कमल ने 'रात का ढाबा' कविता में सामाजिक यथार्थ को प्रकृतिक यथार्थ द्वारा प्रकट किया गया है। ये पंक्तियाँ देखिए -

"जब सारे फूल मूँदते हैं फूल कुछ रात में
बिलोंसे निकलती है मर्म की मिट्टी
प्रगट होता है छुपा हुआ जल पत्ती की नोक पर
जब ठंडे हो रहे होते हैं सारे चूल्हे
तब पूरे ताव पर होता है रात का ढाबा"[1]

पशु-पक्षी,जीवजंतु

जीव जगत में पशु ही मनुष्य का आदिम और निकटतम सहवर्त्ती है। पक्षी मनुष्य के आनंद लोक के संगी कहे गये हैं। समकालीन हिन्दी कविता में पशुओं की अपेक्षा पक्षियों का वर्णन अधिक है।

चुचुहिया

केदारनाथ सिंह ने एक अधूरी कविता में चुचुहिया नामक एक पक्षि का जिक्र किया है। वो भोजपुरी के कुछ क्षेत्रों में प्रचलित एक छोटी चिडिया है। जिसकी आवाज़ सुबह- सुबह सबसे पहले सुनाई पडती है।

"चुचुहिया की आवाज़ से भी पहले
उठ जाती थी वह

---

[1] अरुण कमल, नये इलाके में, पृ.38,39

पहले बिस्तर ठीक करती थी

फिर अपने बाल कि ताकिए पर दिख जाता था

.....

.....

देखो न इन पक्षियों को- दुनिया में कितनी कम जगह

घेरते हैं वे- शायद उससे भी कम

जितना उनके नाम घेरते हैं शब्दकोश में"[1]

परमुटकी

यह एक चिडिया जो खेतों में मिट्टी के ढेलों के बीच घोंसला बनाती है-

"मैं घर लौटूँगा

इससे पहले कि नई मेंडों पर

मिट्टी के ढेलों के बीच बने

परमुटकियों के घोंसले

बारिश में बह जाएँ"[2]

कोयल

कोयल की कूक को हर व्यक्ति के मन को लुभाती रही है। उसका गायन प्राणों को विह्वल कर देता है। कोयल के जन्म के बारे में प्रसिद्ध

---

[1] केदारनाथ सिंह, ताल्सताय और साइकिल, पृ.134,135

[2] एकांत श्रीवास्तव, मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद, पृ.63

मान्यता है कि वह अपने अंडे कौवे के घोंसले में छोड देती है। जिससे उसके बच्चे कौवे के संग ही बडे होते हैं।

"कोयल मीठा गाती गती है
मगर अंडे नहीं सेती
बच्चे नहीं पालती घोंसले नहीं बनाती"[1]

बकरी

आलोकधन्वा ने कहा-

"अगर अनंत में झाडियाँ होतीं
तो बकरियाँ अनंत में भी हो आतीं
भर पेट पत्तियाँ टूँग कर वहाँ से
फिर धरती के किसी परिचित बरामदे में
लौट आतीं" [2]

जीवजंतु

प्रकृति असंख्य जीवजंतुओं से भरी पडी है। प्रकृति की विशाल जीव सृष्टि में अनेक जीव- जंतुओं का स्थान रहा है। सभी जंतुओं की अपनी अलग विशेषता रही है- खाने में, चलने में, रूप रंग में , सोने बैठने में हरेक जीव जंतु विशेष गुण रखता है।

---

[1] मदनकश्यप, नीम रोशनी में, पृ. 47

[2] आलोकधंवा, दुनिया रोज़ बनती है, पृ. 11

तितली

तितली प्रकृति की अनुपम देन है। रंग बिरंगे पंखों से सजी फूल-फूल पर मंडराती तितलियाँ प्राय: सबका मनमोहक है। रंग बिरंगी सुन्दर तितलियों को देखकर सविता सिंह ने लिखा -

"किस ओर से आने लगी हैं
इतनी सारी सुन्दर रंग-बिरंगी
ढेर सारी तितलियाँ"[1]

"हरी पीली लाल बैंजनी
रंग- बिरंगी तितलियाँ
जैसे स्वप्न पंखदार
जैसे बहुरंगी आग के टुकडे
उडते हुए
तितलियाँ आती हैं घरों में बिना आवाज़, बेखटके
जवान होती लडकी के बदन पर
बैठती हैं उड जाती हैं"[2]

---

[1] सविता सिंह, अपने जसा जीवन ,पृ.17

[2] राजेश जोशी, मिट्टी का चेहरा, पृ.133

कुछ पीली, नीली रंगवाली और उजली तितलियों को देखकर कवि का मन आनंद विभोर होता है-

"तितली
कुछ पीली
कुछ कुछ उजली
कुछ हल्की नीली
जिसमें पडी लाल धारायां
उड कर आई
फिर
बैठ फूल की अछुआ नाभि पै
पिया शहद
फिर डंक गढाया
पंख हिलाए"[1]

जब रंग- बिरंगी तितलियाँ फूलों पर आती हैं। यह फूलों केलिए सौभाग्य की बात है।

"खिले फूल पर नित तितली आती
खन भर बैठी फिर उड जाती,नहीं
सुहाता उसको एक फूल, कहीं
कहीं फिरती, चख चख भिरमाती"[1]

---

[1] विजेंन्द्र, चैत की लाल टहनी, पृ.47

मधुमक्खियाँ

फूल- फूल पर मंडरानेवाले मधुमक्खियों बडे आश्च्य के साथ कवि देखा है।

"आज सारी दोपहर
मधुमक्खियों ने बडा उत्पात किया शहर में
वे लगाती रहीं नारे
पेडों और घरों के चारों ओर घूम- घूम
खोल दो...खोल दो
चिल्लाती रहीं वे
आला वज़ीर के फाटक के सामने"[2]

चींटी

चींटी जो पृथ्वी का छोटा सा जीव है पर अपने श्रम केलिए वे मिसाल है। वह दिन भर मीलों तक चलती है, अर्थात् निरंतर कार्यरत रहती है उसकी सक्रियता से मानव कुछ सीख ले सकता है। वह न केवल श्रमरत ही रहती है बल्कि अपना जीवन भी सुव्यवस्थित रूप में सँवारती है। कवि अरुण कमल चींटी के उदाहरण मानव को श्रमरत रहने की प्रेरणा देते हैं।

"चींटी को देखकर लगता है

---

[1] विजेन्द्र, उदित क्षितिज पर, पृ. 99

[2] केदारनाथ सिंह, उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ,पृ. 64

उसे कितने जतंसे बनाया गया होगा,
उसमें जरा- सा शहद
एक बूँद की भी बूँद ऐसे भरना कि जरा भी जाया न जाय-
जो लोग बहुधा कला की बात करते हैं
उनसे मेरा कहना है कि हाथी बनाने से कहीं ज़्यादा
बहुत ही ज़्यादा मुश्किल है चींटी बनाना" [1]

जुगनू

जुगनू एक ऐसा जीव है जो रात्रि के अन्धकार में स्वयं प्रकाशित होता हैं। उसकी टीमटाम तारों जैसा होती है।ज्योंही सन्ध्या विदा होती है तुरंत अपने कूप- नीसों से दल बाँध कर निकल पडता है। समकालीन कवियों ने इन छोटे जीवों में अपार श्रद्धा, वीरता और धीरता दिखाई देती है। रात के अंधेरे में ये कैसे लगते हैं इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है।

प्रकृति के हर एक कण को एकांत श्रीवास्तव ने अपनी कविता का विषय बनाया है। जैसे- सूर्य, धान- गन्ध, फूल, पहाड, नदी आदि।

"चमक रही हैं नदी की आँखें
हिल रहे हैं पेडों के सिर
और पहाडों के
कन्धे पर हाथ रखता

[1] अरुण कमल , पुतली में संसार, पृ.21

आहिस्ता- आहिस्ता

वह उग रहा है"[1]

यहाँ कवि प्रकृति, जीवन की खुशहाली एवं प्रात:काल का अद्भुत चित्र प्रस्तुत करते हैं।

झींगुर

गहन रात्रि में झींगुर की झन्कार रात्रि की भयानकता बडा देती है। उसका तीव्र स्वर कानों में तीर सा चुभ जाता है। उसके तीखे स्वर को सुनकर कवि लिखते हैं-

"पर कोई नहीं ड्रेगा तब

तब किसी चीज़ का डर नहीं बचेगा

बचेंगे सिर्फ झींगुर

जो अगली दुनिया बसने तक"[2]

तिलचट्टे

तिलचट्टे को हम मारना चाहता है। क्योंकि अंधेरे में यह बाहर आता है। हमारे पावों के नीचे बिना डर के आते जाते हैं।

---

[1] एकांत श्रीवास्तव, अन्न है मेरे शब्द ,पृ. 11

[2] राजेश जोशी, मिट्टी का चेहरा, पृ.118

"रोशनी गुल होते ही
अँधेरे की छाती पर रेंगने लगते हैं
इतने भद्दे और घिनौने
कि घिन के मारे इन्हें मारने का भी नहीं करता
इतने कठजीव
कि पाँव से कुचल जाने पर भी मरते नहीं
इतने कठजीव
कि पाँव से कुचल जाने पर भी मरते नहीं
इतने बदबूदार
कि कीडे खाने वाले जंतु भी इन्हें निगल नहीं पाते"[1]

ऋतु परिवर्तन के अनुसार बदलती प्रकृति

प्रकृति की संस्कृति विचित्र होती है। वह किस दिशा की ओर बह रही है, बादल किस प्रकार है, इसकी दशा- दिशा कैसी है, किस नक्षत्र में क्या चल रहा है, महीनों की गतिविधियाँ कैसी हैं, इस प्रकार की कई बातें हैं जो ऋतुओं से प्रभावित होती हैं। वास्तव में ऋतुएँ प्राकृतिक दशाओं के अनुसार वर्षा के दो मास वाले छह विभाग है- वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर ।

[1] मदन कश्यप, लेकिन उदास है पृथ्वी,पृ. 55

वसंत ऋतु

वसंत शोभाश्री का काल है। इस ऋतु के आते ही वनस्पति जगत नए फूल, पराग और पत्तियों से लद जाता है। इस समय रबी की फसलें भी पूर्णत: पक जाती हैं। किसान जिस तरह से ऋतु या तापमान में आया बदलाव समझता है ठीक उसी प्रकार नागार्जुन भी प्रकृति के विभिन्न बदलाव को समझते हैं। वसंत को हम ऋतुराज कहते हैं तो नागार्जुन पावस को ऋतुवर कहते हैं।

"ऋतुओं के प्रति पालक ऋतुवार
पावस तुम्हें प्रणाम" [1]

पावस ऋतु अन्य ऋतुओं का पालन करता है कवि की दृष्टि में पावस ऋतु सभी ऋतुओं में महान है। क्योंकि किसानों को फसल निकलने केलिए उपयोग होता है।

वसंत आते ही गाँव में परिवर्तन आ गया है। इस का वर्णन एकांत श्रीवास्तव ने इस प्रकार किया है-

"वसंत हँसेगा
गाँव की हर खपरैल पर
लौकियों से लदी बेल की तरह
और गोबर से लीपे
हमारे घरों की महक बनकर उठेगा"[1]

---

[1] नागार्जुन, तुमने कहा, पृ.85

यहाँ कवि वसंत का हर्षोल्लास व्यक्त किया है।

अगहन महीने में धान की फसल शोभा- समृद्दि के साथ खेतों में लहलहाती है। अगहन शब्द में खेत का श्री- सौन्दर्य, किसान- जीवन की खुशी तथा उल्लास, जन जीवन की सुख- समृद्धि सबकी व्यंजना निहित है। अरुण कमल ने 'अगहन' कविता में विभिन्न रंगों के संयोजन कर प्रकृति सौंदर्य को प्रकट किया है-

"खेत पीले
हरा पेड
नीला आकाश
बगुले सफेद"[2]

बसंत आज भी भारतीय जनजीवन में बारहमासा का प्राणतत्व है। इसलिए केदारजी महसूस करते हैं-

"और बसंत फिर आ रहा है
शाकुंतल का एक पना मेरी आलमारी से निकलकर
हवा में फरफरा रहा है"[3]

---

[1] एकांत श्रीवास्तव, अन्न है मेरे शब्द ,पृ. 20

[2] अरुण कमल, नये इलाके में, पृ.42

[3] केदारनातह सिंह, यहाँ सेदेखो, पृ. 23

वर्तमान दैर बसंत ऋतु के आगमन से अतीत के 'अभिज्ञान शाकुंतल' का पन्ना फरफराना दरअसल स्मृतियों में ऋतु परिवर्तन के संवेदनाओं के बीच जीना है।

ग्रीष्म ऋतु

ग्रीष्म बडी भीषण ऋतु है। उस ऋतु में प्रचंड ताप से जल सूख जाता है। यह जेठ में तो झुलसा देनेवाली आग बरसाती है, ग्रीष्म में भी किसान आषाढ के नए बादल की आशा में बीज डालने केलिए खेत की जुताई आदि शुरू कर देते है। इसलिए कवि ग्रीष्म का स्वागत करते हैं-

"आ रहा है ग्रीष्म
देह का एक एक रोम अब
खुल रहा है साफ और अलग
नभ इतना खुला फैलता हुआ
सूरज डूबने के बाद भी"[1]

वर्षा ऋतु

ग्रीष्म ऋतु की शुष्कता से पीडित धरती को जीवन दान देने के हेतु वर्षा का आगमन होता है। उस वर्षा ऋतु का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है-

"अगर वर्षा ऋतु आई
तो तालाबों के महा कडाह में

[1] अरुण कमल, पुतली में संसार, पृ.

उपराएँगे मैथुनरत मेंढक

जिन्हें पकौडों की तरह देखेंगे साँप” [1]

शरद ऋतु

शरद उतार- चाढावों से रहित शांत,शीतल और स्वच्छ ऋतु होती है। अष्टभुजा शुक्ल ने शरद ऋतु का वर्णन इस प्रकार किया है-

“शरद ऋतु में तालाबों की सतह से उठेगी भाप

जो पशुपक्षियों के लिए

होगी चाय का विकल्प”[2]

शिशिर ऋतु

शिशिर का मोहक वर्णन मदन कश्यप ने यों किया है-

“धीरे – धीरे ठंडा हो रहा है मौसम

कमज़ोर पड रही हैं

पृथ्वी को गर्म रखने की

सूरज की कोशिशें

शिशिर आ रहा है

---

[1] अष्ट्भुजा शुक्ल, इसी हवा में अपनी भी दो चार साँस है, पृ. 53

[2] अष्ट्भुजा शुक्ल, इसी हवा में अपनी भी दो चार साँस है, पृ. 53

कभी-कभी कटे धान के पुआल
और कोल्हूआर में पक रहे गुड की
नयी महक के साथ शिशिर आ रहा है"[1]

प्रकृति और मनुष्य के बीच का संबन्ध

हम एक ऐसे समाज में जी रहे हैं जहाँ प्रकृति और मनुष्य के बीच का संबन्ध टूटता जा रहा है। जिस प्रकृति ने उसे पाला है उसी प्रकृति को नष्ट करने की कोशिश हो रही है। पर्यावरण वैज्ञानिकों ने प्रकृति और मनुष्य के आपसी संबन्ध को पुन: स्थापित करने तथा प्रकृति के शोषण के खिलाफ जनता को अवगत कराने के प्रयास में इन्होंने बडी भूमिका निभाई है। एकांत श्रीवास्तव के मतानुसार-

"किस ऋतु का फूल सूँघूँ
किस हवा में साँअ लूँ
किस डाली का सेब खाऊँ
किस सोते का जल पियूँ
पर्यावरण वैज्ञानिको! कि बच जाऊँ" [2]

---

[1] मदन कश्यप, लेकिन उदास है पृथ्वी, पृ.9

[2] एकांत श्रीवास्तव, अन्न है मेरे शब्द ,पृ. 102

मानव और प्रकृति के बीच का संबन्ध अटूट है। मानव और प्रकृति के बीच के संबन्धों के प्रति आस्थावान कवि एकांत श्रीवास्तव जी कहते हैं-

"ज़मीन
बिक जाने के बाद भी
पिता के सपनों में
बिछी रही रात भर"[1]

आज के संदर्भ में प्रकृति का ही नहीं मनुष्य का अस्तित्व भी संकट में है। प्रकृति के साथ उनकी आत्मीयता को वे इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

"ऊर्जा दे हमें ओ पृथ्वी
कि हम चुकायें
बरसों – बरसों का बकाया
तेरे अन्न- जल का ऋण"।[2]

आधुनिक उपभोगवादी दृष्टि ने प्रकृति और मानव के सह- अस्तित्व को मिटाकर प्रकृति को मात्र उपभोग की वस्तु मान लिया है। इसके परिणामस्वरूप पर्यावरण में कई विकृतियाँ आई हैं।लोकजीवन का वातावरण पूर्णत: प्रकृति के सत्- चित् आनन्दमय रूप से बनता है। प्रकृति के हर रूप परिवर्तन पर मन में जिन भावनाओं का आरोह होता है वही

---

[1] एकांत श्रीवास्तव, अन्न है मेरे शब्द ,पृ. 23

[2] एकांत श्रीवास्तव, अन्न है मेरे शब्द ,पृ. 81

इनके वातावरण को रचता है। प्रकृति में लोकजीवन के सहज संस्कार पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहते हैं।

****

समकालीन कविता में लोक भाषा

भाषा लोक को पहचानने का मुख्य साधन है। वह लोक को अभिव्यक्त करने की तरीका है। लोक भाषा का सीधा संबन्ध लोक और लोकजीवन से होता है, इसलिए उसमें सहजता होती है। उसमें माँ जैसी ममता होती है, माँ की गोदी जैसी सुखानुभूति एवं संरक्षण होता है। लोक भाषा में अपनी मिट्टी की सौंधी जैसा सुखाभास होता है। इसलिए लोक भाषा अत्यंत सहज भाव से हमारी संस्कृति को अभिव्यक्त कर सकने में सक्षम होती है। जिसके द्वारा कवि लोक के मानस में उत्पना संवेदना को, ज्ञान तथा अनुभवयुक्त विचारों को समेटकर लोकजीवन का संस्कार ग्रहण करता है। समकालीन हिन्दी कवियों ने इसको अपने कवि कर्म का अनिवार्य अंग मानते हुए परम्परागत रूढियों एवं शास्त्रीय अलंकरणों के संश्लिष्ट आच्छादन से काव्यभाषा को मुक्त कर उसे लोकजीवन के निकट लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

भाषा लोकजीवन की संवाहक होती है। वह लोक की शक्ति है। वह स्वयं अपनी संस्कृति का यश सृजित करती है। वह लोकजीवन को प्रसारित करती है और उसका पोषण और संरक्षण करती है। इसलिए उसमें सहजता, सुगमता और शालीनता का गुण होता है। उसमें कृत्रिमता नहीं है। इसी के द्वारा लोगों के सुख- दु:ख, राग- विराग आदि को सहज ढंग से अभिव्यक्त किया जाता है। परमानंद श्रीवास्तव ने स्पष्ट ही कहा है कि “लोकचेतना को वहन करनेवाली जिसमें यथार्थवादी ठेठ काव्य प्रवृत्ति

के महत्व को हम यहाँ रेखांकित करना चाहते हैं उसमें स्वत: एक सजग परिवर्तनकामी सांस्कृतिक दृष्टि मौजूद रहती है। इस दृष्टि की पहली पहचान भाषा के स्तर पर हुई है। आश्चर्य नहीं कि कविता में लोकचेतना के स्पर्श को व्यंजित करने वाली टिप्पणियाँ बदली हुई भाषा संवेदना की ओर इंगित करती जान पडती है"[1]। इससे स्पष्ट है कि कविता की भाषा लोकभाषा के अत्यंत निकट होती है।

स्त्रियों की भाषा में एक खास तरह का आवेग होता है। बदलते लोकजीवन का परिचय उनकी भाषा में मिलने लगी है। उसमें वस्तुनिष्ठता और आत्मनिष्ठता का समायोजन प्रतिबिम्बित होती है। काव्य भाषा की जकडन खोलने में, उसे बातचीत की भाषा के करीब लाने में स्त्री कविताओं की बडी भूमिका है। क्योंकि स्त्री स्वतंत्र रूप से सोचकर, अपने विचारों को अपनी भाषा में अभिव्यक्त करती है। उसकी प्रत्येक कविता में अपनी अस्मिता की तलाश बुलंद है। अपना जो यथार्थ है वह स्त्री अपनी भाषा में लिखने का प्रयास कर रही है। इसलिए उसमें जीवंतता आती है। वह लोकजीवन से ज़्यादा निकट है।

दलित कविता की अपनी भाषा है, उसमें उनके जीवन का यथार्थ मौजूद है। दलितों की भाषा को हम असभ्य मानते हैं। लेकिन यह भाषा दलितों की बोलचाल की भाषा है। उसमें शिष्ट समाज की भाषा की तरह तटस्थता नहीं है, व्याकरण के नियम भी नहीं है। वे अपने अनुभवों को

---

[1] मधुमती, दिसंबर 1996

अपनी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास करते हैं। इसकेलिए दलित कवियों ने अपने इलाके की भाषा का प्रयोग किया है। शिष्ट समाज के लोगों की भाषा को वे नकारते हैं। क्योंकि उसमें एक प्रकार का दंभ दिखाई देता है। इसलिए दलित कवियों ने अपनी कविताओं में अपने इलाके की लोक भाषा का प्रयोग किया है। इसके द्वारा उन्हें अपने जीवन के यथार्थ को पाठकों के सामने अच्छी तरह अभिव्यक्त करने का मौका मिल रहा है।

किसी भी जाति या समुदाय का समुचित विकास उसकी भाषा पर निर्भर होता है। आदिवासियों की अपनी भाषा है। इसके द्वारा वे लेखन कर अपनी अस्मिता को कायम रखना चाहते हैं। सभ्य समाज के लोग उनकी भाषा को जंगली बताकर उसे वर्जित करता है। सभ्य समाज द्वारा इस्तेमाल की जा रही भाषा को वे समझ न सकते। इसलिए उन्हें अपरिष्कृत कहते हैं। इन सब के बावजूद भी आदिवासी लोग अपनी भाषा को छोडना नहीं चाहते। वे अपनी मातृभाषा में विचारों को प्रस्तुत करते हुए अपनी अस्मिता को कायम रखना चाहते हैं।

लोक शब्द

लोकभाषा में सम्प्रेषणीयता एक बहुत बडी समस्या है। लोकजीवन का परिचय दिलाने केलिए लोकभाषा की ज़रूरत है। कवियों ने इसको अधिक मार्मिक ढंग से स्पष्ट करने केलिए लोक शब्दों का प्रयोग करते हैं। पाठकों को इसका अर्थ स्पष्ट करने केलिए पादटिप्पणियों में उसका अर्थ देते हैं। इन विशेष शब्दों से वहाँ के जनजीवन का परिचय मिलता है।

मदन कश्यप ने 'कुरुज'' नामक कविता में कुरुज शब्द का प्रयोग किया है। जो बहेलियों की भाषा का शब्द है। कुरुज वह जगह है जहाँ एक खास मौसम में इकट्ठे होकर परिन्दे अपने पुराने पंख झाडते है और गर्भधान करते हैं।

"यह शब्दों का कुरूज है
अपने पुराने पंख झाड रहे हैं शब्द"[1]

लीलाधर मंडलोई ने 'समुद्र की प्रार्थना' कविता में आन्तमान के लोकजीवन का परिचय दिया है। जिसमें उन्होंने वहाँ के कुछ स्थानीय श्ब्दों का प्रयोग किया है। जैसे- केनो(नाव), क्वालाण्डा (झोंपडी), चमेरे-बेर(आग जलाने की लकडियाँ) , ता- चोई- चा – लोक (धनुष- तीर बनाने की लकडियाँ)[2] आदि।

कवि पवनकरण ग्वालियर प्रदेश से है। इसी कारण वहाँ की प्रादेशिक संस्कृति की झलक उनकी कविताओं में देखने को मिलती है। 'गुल्लक' शीर्षक कविता में सिक्कों से गुल्लक भरनेवाली ग्रामीण युवति का जिक्र किया गया है। यह पुरानी संस्कृति को याद दिलानेवाला शब्द है।

---

[1] मदन कश्यप, कुरूज, पृ. 24

[2] लीलाधर मंडलोई, देखा- अदेखा, पृ. 88

"बिटिया बडे जतन से सिक्के जोडती
कान से सटाकर देखती बजाकर
गुल्लक में सिक्के खन- खन करते"[1]

कुमार कृष्ण ने 'गाँव का बीजगणित' कविता संग्रह में अनेक ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया है। फटे- पुराने वस्त्रों से सोने केलिए बनाये गये तलाई और रजाईनुमा वस्त्र को 'लेवा'[2] कहते हैं। 'ठल्कू'[3] जो फटे-पुराने वस्त्रों से बच्चों को सोने केलिए बनाया गया तलाईनुमा वस्त्र। पहाडों से फूटने वाले पानी के चश्मे को 'चोये'[4] और एक स्थान पर एकत्र किये हुए घास के गट्ठर को 'कूप'[5] कहते हैं।

एकांत श्रीवास्तव ने नागकेसर का देश यह' कविता में छत्तीसगढ में प्रयुक्त एक विशेष प्रयोग जिक्र किया है।

"लुवाई का बखत है"[6]

जिसका अर्थ है फसल काटने का समय ।

भोजपुरी लोकभाषा का प्रयोग कर अरुण कमल ने हिन्दी काव्य भाषा को एक नया मोड दिया है। अरुण कमल ने अपनी कविताओं में लोकजीवन से जुडे अनेक शब्दों का प्रयोग किया है।

---

[1] पवन करण, इस तरह मैं,पृ. 75

[2] कुमाराकृष्ण, गाँव का बीजगणित, पृ.15

[3] कुमाराकृष्ण, गाँव का बीजगणित, पृ.18

[4] कुमाराकृष्ण, गाँव का बीजगणित, पृ.19

[5] कुमाराकृष्ण, गाँव का बीजगणित, पृ.19

[6] एकांत श्रीवास्तव , नागकेसर का देश यह, पृ.9

"खेत पडे हैं उघारे
अन्यमनस्क है मिट्टी सहसा धूप में पड कर-
हर थोडी दूर पर मेंडों की छाँह-
चमक्ती हैं कटी खूँटियाँ
दूर पर चरती भेडों के रेवड
और मूसकोल
और चींटिंयों के बिलों के बाहर मिट्टी चूर"[1]

यहाँ मेडों की छाँत, कटी खूँटियाँ, भेडों के रेवड, मूसकोल आदि लोकप्रचलित शब्दों का व्यवहार ग्रामीण जीवन के प्रति कवि के लगाव को दर्शाता है।

आदिवासियों की भाषा में एक विशेष प्रयोग दिखाई देता है। जो आदिवासी संस्कृति को दर्शाता है। ग्रेस कुजूर के 'एक और जनी- शिकार' कविता में कुछ आदिवासी शब्दों का प्रयोग किया है- 'महुआ', 'केयोंद', 'गूलर' ये तीनों एक प्रकार के जंगली फल है। 'डोरी' महुआ का बीज है। 'संधरा' करील है, 'सखुआ' शाल का वृक्ष है। 'अखरा' नाचने का स्थल है। 'तोलोंग' पुरुषों के कमर में बाँधने का पट्टा जो आगे पीछे झूलता है। 'अंगनई' और 'डमकच' एक प्रकार का आदिवासी राग है। 'पियार' और 'पिठोर' जंगली फल है जो ग्रीष्मकाल में मिलते हैं। 'खुखडी' और 'रुगडा' मशरूम है। 'डोभा' ऊपर की खेती का पानी जो निचले खेत में गिरता है।

---

[1] अरुण कमल, नये इलाके में, पृ.15

'कुमनी' बाँस का लम्बा सा ढाँचा जिससे धनखेत में मछली फंसाई जाती है। 'ढोंढ' पानी का साँप है, 'आजी' दादी है, 'जाता चक्की और पुटुस'[1] जंगली झाडी है जो छोटानागपुर के पठारी इलाके में पायी जाती है।

बिंब

बिम्ब को काव्यभाषा का निर्धारक तत्व माना जाता है। भाषा जब इन्द्रियबोध से संबन्ध होती है तब उसमें बिम्बात्मकता आती है। बिम्ब कविता का एक जीवंत तत्व है। कल्पना व स्मृति की जो क्रिया शब्दों द्वारा चित्रित की जाती है, उसे ही हम बिम्ब कहते हैं। बिम्ब का अर्थ उस कल्पना शक्ति के मूर्तीकरण से लिया जा रहा है, जो वर्ण्य विषय, दृश्य एवं भाव को पाठक की आँखों से होकर ह्रदय में उतरता है। डॉ नगेन्द्र के अनुसार "काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है"[2]। जिसका सम्बन्ध जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र तथा कल्पना के शाश्वत जगत से होता है। इसलिए बिम्ब को काव्यभाषा का निर्धारक तत्व माना जाता है। लोकरंग, जनजीवन, प्रकृति आदि विभिन्न क्षेत्रों से बिम्बों को ग्रहण करते हैं। ध्वनि, स्पर्श,घ्राण, चाक्षुष और रंग जैसे विभिन्न प्रकार के बिम्ब समकालीन कविता में उपस्थित हैं। अमूर्त को बिम्बों में मूर्त कर कविता की अर्थक्षमता व प्रभावधर्मिता का विस्तार किया जाता है।

---

[1] रमणिका गुप्ता, आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, पृ. 21

[2] डॉ नगेन्द्र, काव्य बिम्ब, पृ. 5

केदारनाथ सिंह की 'पर्व- स्नान' कविता में रंग और ध्वनि बिम्ब की सुन्दर योजना हुई है। "एक लाल क्रौंच

चोंच से खुजला रहा था

अपनी भूरी गर्दन

एक काली स्त्री

अर्ध्य देने के बाद अपने बाल सुखा रही थी

ऊपर कौए मंडरा रहे थे

और नीचे

काँपते हुए जल में

अमरता की छपाछप होड मची थी"[1]

यहाँ लाल क्रौच, भूरी गर्दन, काली स्त्री आदि विभिन्न रंगों के माध्यम से रंग बिम्ब की अभिव्यक्ति होती हैं। 'छपाछप' शब्द से ध्वनि बिम्ब की सूचना मिलती है, जिससे वह सुन्दर अभिव्यक्ति का साधन बना।

केदारजी 'नये वर्ष के प्रति' कविता में नये वर्ष से सवाल करते हैं कि वह क्या- क्या लायेगा? इसको स्पष्ट करने केलिए बिम्बों को प्रयुक्त करते हैं। करता में रंग, गन्ध, स्पर्श और शब्द बिम्बों का प्रयोग हुआ है-

"गन्ध पहले बौर की

या फलों पर चढते सुनहले रंग

---

[1] केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस पृ. 40

स्पर्श हाथों का नया

या सर्द पानी सी छुअन निरसंग"[1]

यहाँ हाथों का गरम 'स्पर्श' है और सर्द पानी- सी 'छुअन' है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने प्राकृतिक बिम्बों का प्रयोग 'नीली चिडियाँ' कविता में किया है।

"तुम्हारी आँखों से उडी

नीली चिडियाँ

मेरे खुलते अधरों पर बैठ जाती हैं

- शब्द चुगने लगती हैं"[2]

'वसंत राग-2' कविता में -

"उद्यान में

उड रही हैं तितलियाँ-

वसंत के प्रेमपत्र"।[3]

'तितली ने कहा' कविता में इस प्रकार कहा है-

"तितली ने कहा फूल से

मैं तुम्हारे साथ

---

[1] केदारनाथ सिंह, अभी बिल्कुल अभी, पृ.65

[2] सर्वेश्वर्दयाल सक्सेना, जंगल का दर्द, पृ. 64

[3] सर्वेश्वर्दयाल सक्सेना, जंगल का दर्द, पृ. 86

कितनी भरीपुरी लगती हूँ

और उड गई"। [1]

इन तीनों में सक्सेना ने नीली चिडियाँ और तितलियों के प्रयोग से लोकजीवन को प्राकृतिक बिम्बों से और गहराते हैं।

मिथक

मनुष्य के सामूहिक अनुभवों का शब्दबद्ध रूप है मिथक। प्राचीन काल से ही मनुष्य देवी- देवताओं, अलौकिक शक्तियों और लोकाचार विषयों के अस्तित्व में विश्वास करता था। लोकप्रकृति से उसका घनिष्ठ संबन्ध था। पशु- पक्षियों, उडने वाले सिंहों और घोडों, इच्छित वस्तु प्रदान करनेवाले फलों और वृक्षों आदि का विश्वास लोकजीवन में था। अज्ञेय ने ठीक ही कहा है- "हमारा होना, हमारा सचमुच होना, हमारा समर्थ होना मिथक के साथह जुडा हुआ था, इन तीनों की पहचान भी मिथक के साथ जुडी हुई थी, और मिथक के द्वारा ही हम उनकी रक्षा करते थे- अर्थात् नई सृष्टि करते थे या फिर से उत्कृष्ट होते थे"।[2] समकालीन हिन्दी कविता में बहुत से रीति- रिवाज़ हैं, विश्वास हैं, प्रथाएँ हैं, अनुष्ठान हैं, आस्था विश्वास है जो मिथक के साथ जुडते हैं।

आदिवासी लोकजीवन में मिथकों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके बिना आदिवासी लोकसाहित्य नहीं लिखा जा सकता है। समकालीन

---

[1] सर्वेश्वर्दयाल सक्सेना, जंगल का दर्द, पृ. 87

[2] अज्ञेय, स्रोत और सेतु, पृ. 69

हिन्दी कविता में आदिवासी लोकजीवन को अभिव्यक्त करने केलिए कवियों ने मिथकों का सहारा लिया है। इस दृष्टि से अनुज लुगुन का 'एकलव्य से संवाद' महत्वपूर्ण है। पुराण के एक प्रसिद्ध पात्र एकलव्य को आदिवासियों के प्रतिनिधि के रूप में उठाया गया है। द्रोण को अपना गुरु मानकर द्रोणाचार्य का पुतला बनाकर उसके चरणों में बैठकर धनुर्विद्या का अभ्यास करता रहा था एकलव्य। अंत में आशीर्वाद मिलने केलिए गुरु के पास पहुँचता है। गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य से गुरुदक्षिणा स्वरूप अँगूठा माँग लिया था। यहाँ द्रोणाचार्य सभ्य समाज का प्रतिनिधि है, जो आदिवासियों की परंपरा को उभारने के बदले कुचल डालता है। 'एकलव्य से संवाद' में कवि एकलव्य की खोज करता है।

"एक पहाड के बाद
दूसरे पहाड को लाँघते
और घने जंगल में सूखे पत्तों पर हुई
अचानक चर्राहट से
उनके हाथों में धनुष ऐसे ही तन उठती थी"[1]।

कात्यायनी की कविता 'गार्गी' में पुराण के मिथकीय पात्र को चुन लिया गया है। गार्गी गार्ग मुनि की बेटी थी। वह एक पंडिता थी। ब्रह्मत्व पर उसे अपार ज्ञान था। मिथिला के राजा जनक का गुरु था याज्ञवल्क्य। एक बार उनके नेतृत्व में ब्रह्म तत्व के बारे में तर्क हुआ। उस विषय पर

[1] प्रगतिशील वसुधा, पृ. 181

पंडिता गार्गी ने अनेक बौद्धिक प्रश्न पेश किये। तब दूसरे लोग गार्गी को उपदेश देते हैं-

"गार्गी तुम देवी हो- जीवनसंगिनी हो
पवित्रता हो गार्गी तुम
हम अधूरे हैं तुम्हारे बिना
महान बनने में हमारी मदद करें दुनिया को फतह करने में
आसमान तक चढने में
गार्गे तुम एक रस्सी बनो
त्याग- तप की प्रतिमा हो तुम
सोचो परिवार का हित
अपने इस घर को संभालो
मत जाओ प्रश्नों की सीमा से आगे
तुम्हारा सिर कटकर लुढकेगा ज़मीन पर"[1]

त्याग और तपस्या की प्रतीक है स्त्री। इसलिए पुरुषों के सामने प्रश्न मत करना। यहाँ कवयत्रि ने गार्गी को आधुनिक स्त्री के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया है।

इस दृष्टि से हरिराम मीणा की कविता संग्रह 'रोया नहीं था यक्ष' महत्वपूर्ण है। जिसमें उन्होंने मेघदूत के यक्ष की कथा को इक्कीसवीं सदी के साँचे में ढालने की कोशिश की है। । आदिवासी जन को उनकी अनिवार्य,

[1] कात्यायनी, सात भाइयों के बीच चम्पा, पृ. 32

स्वाभाविक एवं इच्छा आधारित चीज़ों से महरूम किया जा रहा है। कवि हरिराम मीणा कहता है-

"वह कुबेर चर रहा था पहाडों को
जंगलों को
वनस्पतियों को
जीवों को
पी रहा था नदियों को
झरनों को
सरोवरों को
झीलों और
समुद्र को
पगला रहा था हवाओं को
धूप को
चाँदनी को ऋतुओं को
उत्सव- उमंगों
संवेदनाओं को
लीलता जा रहा था पृथ्वी के रूप-रस- गंध- स्पर्श
और शब्दों को"[1]

[1] हरिराममीणा, रोया नहीं था यक्ष, पृ. 26,27

यहाँ यक्ष आज का वंचित दलित नायक है और जीवन के अजस्र संघर्ष का प्रतिनिधि है। कुबेर आधुनिक शासक वर्ग का प्रतिनिधि है।

मुहावरे

मुहावरे का शाब्दिक अर्थ है- रूढ वाक्यांश अर्थात् वह वाक्यांश जो किसी विलक्षण अर्थ केलिए रूढ हो चुका है, उसे मुहावरा कहा जाता है। मुहावरे किसी भी भाषा की अमूल्य निधि एवं धरोहर हैं। मुहावरे भाषा में सौंन्दर्य की वृद्धि कर उसे अधिक रोचक एवं सुन्दर बना देते हैं। ये नीरस भाषा में भी रस की अभिवृद्धि करके उसे सरस बना देते हैं। वह वाक्यांश जो सामान्य वाच्यार्थ प्रकट न कर, विलक्षण अर्थ प्रदान करें तो उसे मुहावरा कहलाता है। डॉ नगेन्द्र ने मुहावरे की परिभाषा इस प्रकार दी है- "किसी भी भाषा में प्रयुक्त विशिष्ट प्रयोग जिनका अभिधार्थ से भिन्न विशिष्ट अर्थ लिया जाता है, मुहावरा कहलाता है"[1]। सामान्यत: मुहावरे के प्रयोग के बिना भी रचनाकार अपनी बात प्रकट कर सकता है लेकिन भाषा में रोचकता एवं गम्भीरता बढाने केलिए कवि मुहावरों का प्रयोग करता है।

समकालीन कविता में लोकप्रचलित मुहावरों का प्रयोग किये हैं। जिससे लोकजीवन का सही यथार्थ का अंकन हो सका। केदारनाथ सिंह के 'कुछ सूत्र जो एक किसान बाप ने बेटे को दिये' कविता में लोकविश्वास भी

---

[1] डॉ. नगेन्द्र, भारतीय साहित्य कोश, पृ. 1003

है, और लोकप्रचलित मुहावरे का प्रयोग भी किया गया है। यथा-

“मेरे बेटे

कुँए में कभी मत झाँकता

जाना

पर उस ओर कभी मत जाना

जिधर उडे जा रहे हों

काले- काले कौए” [1]

मंगलेश डबराल ने अपनी कविता में एक आधुनिक मुहावरे का प्रयोग किया है-

“यह बात लिख लो यह गीत सुन लो

क्यों गरीब के घर कंटीली घास की भी किल्लत है”[2]

कहावत

लोकमानस में जिन भावों को नितांत निजी तथा गहन समझता है उन केलिए कहावतों का आश्रय लिया जाता है। कहावतें मानव स्वभाव और व्यवहार कौशल के सिक्के के रूप में प्रचलित होती हैं और वर्तमान पीढी को पूर्वजों से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होती हैं। कहावतों का अजस्र भण्डार हमारे चारों ओर बिखरा पडा है, और किसी भी स्थान की कहावत साहित्य का पूरा लेखा जोखा लेने केलिए जीवन व्यापी श्रम और

---

[1] केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, पृ.18

[2] मंगलेश डबराल, आवाज़ भी एक जगह है, पृ. 30

साधना की आवश्यकता है। वास्तव में कहावत सूत्र रूप में प्रयुक्त किया गया है। जिसके द्वारा संक्षिप्त तथा स्पष्ट रूप में सत्य का प्रतिपादन किया जाता है।

राजेश जोशी ने 'चूहा' नामक कविता में उनके गाँवों में प्रचलित एक कहावत का इस्तेमाल किया था-

"कहा जाता था कि चिडियाँ हमारी सुबह की बातें सुनती हैं
और चूहे रातों की"[1]

राजस्थान में पाई जानेवाली एक कहावत है-

"फसल कट रही है
कुछ कट गई है
कुछ कटने को हुई।
धूप ज्यों गहराई
खिलने को बुई"[2]

यहाँ खिलने को बुई का अर्थ है जिसके खेत में बुई भर दे कुई। यह फसल काटने के समय गाँवों में प्रचलित एक उक्ति है।

मदन कश्यप की 'किस्सा एक जंगल की' कविता में सर्व प्रचलित एक कहावत दिखाई देती है-

"एक म्यान में दो तलवारें

---

[1] राजेश जोशी, चाँद की वर्तनी,पृ.72

[2] विजेन्द्र, घना के पाँखी, पृ.39

और एक जंगल में दो शेर नहीं रह सकते"[1]

अष्टभुजा शुक्ल की 'नई कहावत' नामक कविता में एक आधुनिक कहावत का प्रयोग है-

"देश का प्रधान मंत्री होना बहुत टफ है
लेकिन गाँव का प्रधान होना टफेस्ट"[2]

प्रतीक

प्रतीक का अर्थ है चिह्न संकेत या प्रतिरूप अर्थात् जिन चिह्न या संकेतों से कवि अपनी कलात्मकता को मूर्त रूप प्रदान करता है उन्हें प्रतीक कहते हैं। प्रतीक विस्तार का संक्षेपीकरण है। प्रतीक नई संवेदनाओं, अनुभूतियों एवं नव्य चेतना की अभिव्यंजना का माध्यम है। मानव जब अधिक भावुक होता है। तब वह अपनी भावाभिव्यंजना केलिए प्रतीकों का सहारा लेता है। डॉ धीरेन्द्रवर्मा के मतानुसार "प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा गोचर वस्तु केलिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य अथवा अगोचर विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण बनती है। किसी अन्य स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है"[3]। फलत: कवि अपनी कलात्मकता, विस्तारणा को प्रकट करने केलिए जिन संकेतों का प्रयोग

---

[1] मदन कश्यप, नीम रोशनी में, पृ. 55

[2] अष्टभुजा शुक्ल, इसी हवा में अपनी भी दो चार साँस है, पृ. 75

[3] डॉ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1), पृ.398

करता है उन्हें प्रतीक कहा जाता है। समकालीन कविता में प्रतीकों का प्रयोग कवियों ने व्यंग्यात्मक दृष्टि से और विचारात्मक दृष्टि से किया है।

व्यंग्यात्मक प्रतीक

समकालीन कवियों ने व्यंग्य का प्रयोग किया था। वर्तमान जीवन की विसंगतियों और कठिनाईयों ने कवियों को गहराई से सोचने की प्रेरणा दी थी। इसी सोच का परिणाम है कि कवि ने देश के तथाकथित नेताओं और उनके दोगलेपन एवं अंतर्विरोधी आचरण को व्यंग्यात्मक प्रतीकों के द्वारा प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से एकांत श्रीवास्तव की कविता 'नागकेसर का देश यह' विचारणीय है।

"मैं शांति के कबूतर उडाता हूँ
और तुम आदमखोर बाघ छोडते हो"[1]

यहाँ कबूतर भारतीय संस्कृति का प्रतीक है और बाघ विदेशी संस्कृति का। इस प्रकार इस कविता में बबूल वृक्ष का जिक्र किया गया था। वह आज छत्तीसगढ में दिखाई देनेवाला पेड है। पहले वहाँ नागकेसर के पेड मात्र थे, उसके स्थान पर आज 'बबूल' के पेड मात्र है। जिसका अर्थ है विदेशी संस्कृति के प्रभाव के कारण हमारी अपनी संस्कृति नष्ट हो रही है।

---

[1] एकांतश्रीवास्तव, नागकेसर का देश यह, पृ. 68

विचारात्मक प्रतीक

विचारात्मक प्रतीक ऐसा है जो अपने पाठकों को सोचने और विचार करने का मौका देता है। लीलाधर मंडलोई ने 'पृथ्वी खोजती हो अपना होना' कविता में समुद्र को एक मानवीय चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है।

" बहुत नीचे कहीं
थककर लेटा है आज समुद्र
और कुछ मछलियाँ घूमती हैं
छोडती प्रकाष रेखाएँ वहाँ"[1]

'धरती की भूरी हंडिया में' कविता में भी स्वयं समुद्र एक सजीव मानव चरित्र के रूप में आता है।

"रंग- बिरंगे रंगों का अलमस्त समुद्र यह
निकोबारी बाला की चटक देह से आलिंगनबद्ध
घूम रहा है आज हाट में खुल्लम- खुल्ला"[2]

अनामिकाजी ने 'सेफ्टी पिन' नामक कविता में हमारे दैनंदिन जीवन की उपयोग में लाये जाने वाली छोटी सी वस्तु को प्रतीक के रूप में लिया है।

---

[1] लीलाधर मंडलोई, देखा- अदेखा, पृ. 63
[2] लीलाधर मंडलोई, देखा- अदेखा, पृ. 62

"श्रीमती सावित्री पाठक की
लाल काँच की चूडियों से
पेण्डुलम की तरह लटका
लगातार डोलता ही रहता था
एक जंगाया-सा सेफ्टी पिन"[1]

कात्यायनी की कविता 'सात भाईयों के बीच चम्पा में' चम्पा अपने भाईयों के बीच पली बडी हुई है। चम्पा के भाइयों ने उसे ओखल में धान के साथ कूट दी। उसे भूसों के साथ कूडे पर फेंक दिया गया है। लेकिन वह अमरबेल बनकर उगती है।

"ओखल में धान के साथ
कूट दी गयी
भूसी के साथ कूडे पर
फेंक दी गयी।
वहाँ अमरबेल बनकर उगी।
झरबेरी के सात कँटीले झाडों के बीच
चम्पा अमरबेल बन सयानी हुई"[2]।

यहाँ अमरबेल को प्रतीक के रूप में लिया है। स्त्री को हर तरह से दबाने पर भी वह हर मुश्किलों को झेलती हुई उससे जूझती हुई आगे बढती है। स्त्री उर्वरता का प्रतीक है। धरती की उर्वरता कभी नहीं मिटती।

---

[1] अनामिका, अनुष्टुप्, पृ. 60

[2] कात्यायनी, सात भाइयों के बीच चम्पा, पृ. 21

उसी तरह स्त्री की उर्वरता को नेस्तनाबूत करना असंभव है। वह अमरबेल की तरह झरबेरी के काँटीले झाडी के बीच उगती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'बस्स बहुत हो चुका' कविता में दलित जीवन का परिचय दिया है-

"जब भी देखता हूँ मैं
झाडू या गन्दगी से भरी बाल्टी- कनस्तर
किसी हाथ में
मेरी रगों में दहकने लगते हैं"[1]

यहाँ झाडू और बाल्टी दलितों के विद्रोह का प्रतीक है। सभ्य समाज के लोग इसे साधारण चीज़ मानते हैं। लेकिन दलितों केलिए ये रोज़मर्रा की ज़िन्दगी केलिए अनिवार्य है।

इस प्रकार देखें तो समकालीन कविता लोकजीवन की अभिव्यक्ति को जीवंत एवं सहज बनाने केलिए लोकभाषा का प्रयोग करती आ रही हैं। आज स्थानीय कविताओं की रचना बड़ी पैमाने पर हो रही है। समकालीन कविता इस स्थानीयता को आधार बनाकर छोटे जीवन को विषय बनाती है, जहाँ लघुमानवों की बेचारगी के बजाय मनुष्य अपनी पूरी गरिमा के साथ जीवन जी रहा है। इस लोकजीवन को केन्द्र में लाकर

[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स बहुत हो चुका, पृ. 79

भारतीय संस्कृति को एक नया आयाम एवं व्यापकता प्रदान किया जा सकता है।

****

उपसंहार

आधुनिकता औद्योगिक संस्कृति का सौन्दर्यशास्त्र है। इसलिए आधुनिक कविता में नगर संस्कृति ज़्यादा बुलंद हुई। इस संस्कृति का प्रतिरोध है समकालीनता। इसके केन्द्र में सांस्कृतिक संरचना अथवा लोक संस्कृति के औद्योगिक संस्कृति की जगह प्रतिष्ठित करने की कोशिश समकालीन कविता की सबसे बडी खासियत है। भूमण्डलीकरण हमारी सहज संस्कृति को बढावा दे रहा है। इसलिए हमारी भारतीय संस्कृति एक द्विखंडित संस्कृति बन रही है। तब समकालीन समझदार कवि उस नष्ट की खतरनाक परिणति से सजग होकर लोकतत्व को वापस कविता में लाने की कोशिश में सफल होते नज़र आ रहे हैं। हमारी सहज संस्कृति को पहचानना युग की आवश्यकता है। समकालीन कविता में नष्ट होते हुए हमारे सांस्कृतिक मूल्यों, प्रेम, सौहार्द, संवेदनशीलता, विवेक तथा अखण्डता का स्वर प्रकट है। इसको स्पष्ट करने केलिए समाज के उपेक्षित लोगों, आदिवासियों, दलितों, किसानों को कविता का विषय बनाया जा रहा है। इनकी जीवन शैली,वेश-भूषा, रहन- सहन, पर्व- त्योहार, आचार-विचार, खानपान, मान्यतायें, भाषा आदि समकालीन कविता में पुन: जगह प्राप्त करने लगा। अधिकतर कवि अपने गाँवों या कस्बों में रहकर

कविता लिखने की रुचि प्रकट करते हैं। इसलिए कविता में वहाँ के लोकजीवन का यथार्थ खुलने लगा।

लोकजीवन में देखनेवाले सहज तत्वों को हम लोकतत्व कहते हैं। लोकतत्व उन परम्पराओं का सूत्र हैं, जो किसी मानव ह्रदय में स्वाभाविक रूप से पाये जाते हैं। दलित, आदिवासी जैसे असंस्कृत मनुष्यों में सहज एवं स्वाभाविक रूप से और सभ्य समाज के मन की गहराईयों में यह स्पष्ट दिखाई देता है। लोकजीवन में पाये जानेवाले परम्परागत संस्कारों को लोकतत्व के अंतर्गत रखा जा सकता है। यह प्रत्येक जाति विशेष की सांस्कृतिक व्यवस्था के निरूपक होते हैं। इसलिए उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत और व्यापक है। इसका सीधा संबन्ध अतीत से होता है, लेकिन उसकी गंध वर्तमान में प्रकट होते हैं। साधारण जनता पर इसका स्पष्ट रूप दिखाई देता है।

कुमार अंबुज, बोधिसत्व, हेमंत कुकरेती, कुमार विकल, केदारनाथ सिंह, विजेन्द्र, ज्ञानेन्द्रपति जैसे कवियों की कविताओं में लोकजीवन का सहज भाव दिखाई देता है। इन कवियों ने लोकजीवन के विविध उपादानों को प्रस्तुत कर लोक के व्यापक और विविधतामय दुनिया को हमारे सामने प्रस्तुत करने की कोशिश की है। पुरुष से ज़्यादा लोकजीवन के साथ आत्मीयता स्त्री में है। इसलिए पुरुष कविता से स्त्री कविता में स्त्री पक्ष ज़्यादा प्रखर है। अनामिका, कात्यायनी,सविता सिंह,सुषमा सिन्हा आदि कवयित्रियों की कविता में लोकजीवन का अनावरण बडे पैमाने पर हुआ

है। दलितों के जीवन के संघर्ष से भी समकालीन कविता के स्वर मिलने लगा है। सुशीला टाकभौरे, सूरजपाल चौहान, ओमप्रकाश वाल्मीकि आदि कवियों की कविताओं में लोकजीवन के इन संघर्षों को बहुत गहराई से प्रस्तुत हुआ है। हाशिएकृत जीवन की सचाई कभी भी लोकतत्व से विलुप्त नहीं होगी। आदिवासियों को लोकज्ञान का अनुभव परंपरागत संपत्ति के रूप में उन्हें प्राप्त है। आदिवासी भी आज हिन्दी कविता में प्रवेश कर चुके हैं। समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी लोकजीवन को प्रस्तुत करनेवाले कवियों में प्रमुख हैं- हरिराम मीणा, निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन, ग्रेस कुजूर आदि।

किसानी संस्कृति समकालीन कविता को संवारती आ रही है। वह भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग भी है। अगर किसान नहीं है तो हमारे सब कुछ बिगड जायेगा। हमारी सांस्कृतिक गरिमा नष्ट हो जायेगी। इसलिए लोकजीवन में किसानों का बहुत बडा स्थान है। समकालीन कविता में कृषक संस्कृति एवं किसानी जीवन की दर्दनाक गाथा प्रस्तुत है। एकांत श्रीवास्तव, पवन करण, अरुण कमल, राजेश जोशी, मदन कश्यप, नागार्जुन, जितेन्द्र श्रीवास्तव, कुमार कृष्ण, बोधिसत्व जैसे कवि समकालीन संदर्भ में किसानों के जीवन की वास्तविकता को हमारे सामने प्रस्तुत करते आ रहे हैं। किसान अपने खेती में निरंतर संघर्ष कर अभावग्रस्त ज़िन्दगी जीने केलिए मजबूर होते हैं। खेती के साथ उसका निकटस्थ संबन्ध है। किसान अपनी जीविका चलाने केलिए खेती में कठिन

परिश्रम करता है। लेकिन उनका जीवन ऋणग्रस्त, दरिद्र तथा अन्य कई प्रकार के कष्टों से भर गया था। अकाल, कृषि की पैदावार का कम मूल्य आदि के कारण किसानों का जीवन दिन-ब- दिन गिरता जा रहा था। इसलिए किसानों के बेटे कभी किसान न बनना चाहते, और कोई काम करना चाहते हैं। इस प्रकार हमारे परंपरागत किसानी संस्कृति विलुप्त होती जा रही है। इसलिए कवियों ने अपने गाँव के किसानों के जीवन को, वहाँ के वातावरण को, रहन-सहन, वेश- भूषा, त्योहार आदि को हमारे सामने पेश करते हैं। ये हमें पीछे की ओर जाने या हमारी किसानी संस्कृति की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करने केलिए बहुत सहायक है।

समकालीन कविता में लोकजीवन का वातावरण सृजित करने में प्रकृति का बहुत बडा हाथ है। प्रकृति दृश्यमान जगत है, नैसर्गिक है और परिवर्तनशील भी है। प्रकृति का हर एक उपकरण जैसे आकाश, समुद्र, पशु- पक्षी, पेड-पौधे, नदी- नाले, पगडंडियाँ सब मानव जीवन से जुडे हुए हैं। लेकिन आधुनिक उपभोगवादी संस्कृति में मनुष्य ये सब छोडकर उसे नष्ट कर आगे बढना चाहता है। हमारे पूर्वज जो प्रकृति से जुडे रहते थे, उससे आज हम बहुत दूर हैं। हमारे बच्चों केलिए ये सब अपरिचित हैं। वे टी. वी. में, इण्टरनेट में या तो मोबाइल में ये सब देखते हैं। इसलिए उनका प्रकृति के साथ रागात्मक संबन्ध मुश्किल है। वे हमेशा प्रकृति को लूटने के बारे में सोचते हैं। इस प्रकार प्रकृति उपभोग की वस्तु में बदल गयी है। इसलिए हमारे समकालीन कवि विशेषकर आलोकधन्वा, विजेन्द्र,

चन्द्रकांत देवताले, कुमार विकल, एकांत श्रीवास्तव, राजेशजोशी, नागार्जुन,अरुण कमल, अष्टभुजा शुक्ल आदि लोकजीवन को सहज एवं उर्वर बनानेवाली प्रकृति के विभिन्न वेशों को कविता में सहजता से उतारने में सफल निकले हैं।

समकालीन कवियों ने लोकजीवन को पेश करने हेतु लोकभाषा का प्रयोग किया है। हमारी नष्ट होती हुई बोलियों और भाषाओं को बचाने की कोशिश इसमें दिखाई देती है। इसके कारण कविता में विभिन्न स्थानीय भाषाओं और शब्दों का सहज रूप समाहित हो गये हैं। लोकभाषा में कृत्रिमता नहीं हैं। उसमें लोकजीवन की सही पहचान है। लोकभाषा के माध्यम से ही लोक संस्कृति का यश बखान किया जाता है। वास्तव में वह हमारी संस्कृति का यश सृजित करती है, लोक में प्रसारित करती है और उसका पोषण और संरक्षण करती है। लोक भाषा का मूल रूप गाँव या ग्रामांचल होता है। वहाँ से शहर में आकर बस रहे आम आदमी की भाषा भी लोकभाषा के अंतर्गत आती है। इसलिए भाषा लोकजीवन की संवाहक होती है।

आधुनिकता में हमारे परम्परागत गीत, नृत्य, मेले, लोककथा, कला, त्योहार सब नष्ट होते जा रहे थे। इस प्रकार हमारी संस्कृति का ह्रास होती है। उसके स्थान पर फिल्मी गीत, पॉप- म्यूज़िक, सिनेमा, कम्प्यूटर,इण्डरनेट, फेईसबुक, मोबैइल जैसे आधुनिक सुविधायें हमें पाश्चात्य संस्कृति की ओर ले जाते हैं। इस प्रकार हमारी भारतीय संस्कृति

का ह्रास होती है। हमारे परम्परागत जीवन मूल्यों को धक्का लगता है। जीवन में कृत्रिमता और अस्वभाविकता आती हैं। लेकिन हर भारतीयों के दिल और दिमाग में अपनी ज़मीन से आत्मीयता और परिवार के साथ भावात्मक लगाव है। यह लगाव उन्हें टूटने से बचा लेता है। यही भारतीयता की पहचान है। ये सब उन्हें अपने समय की चुनौतियों का सामना करने की शक्ति भी देते हैं। परम्परागत संस्कृति में जो तत्व है उसकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करना या उसकी तरफ हमें ले जाना समकालीन कवियों का लक्ष्य है। समकालीन कविता में निहित इस लोकजीवन की गमक हिन्दी कविता को एक अलग पहचान प्रदान करता है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि समकालीन कविता में लोकपक्ष बहुत ज्वलंत है। इसमें संस्कृति और प्रकृति के बीच के संबन्ध की तलाश है। इसके केन्द्र में मनुष्य मात्र नहीं, बल्कि समस्त चराचर है। प्रकृति और मनुष्य की अवस्थिति से प्राप्त सामूहिक बोध है। उससे उत्पन्न खुशी है। यांत्रिकता से उत्पन्न अनाथत्व एवं भय नष्ट होता नज़र आता है। यहाँ द्वन्द्वातीत जीवन की समग्रता को बढावा देता है। यहाँ भारतीय संस्कृति को एक नया आयाम प्रदान करता है। केन्द्रीय संस्कृति के साथ अन्य स्थानीय एवं लोक संस्कृतियों की अस्मिता को स्वीकार करते हुए भारतीय संस्कृति की विविधता के चमकीले रंग के ज्योतिकिरण केलिए

यह अनिवार्य है। यह साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टियों से भी शुभ सूचना है।

****

शोधछात्रा के प्रकाशित शोध लेख

1. अज्ञेय की कविताओं में पारिस्थितिकी – अनुशीलन (शोध पत्रिका) 2011 जुलाई
2. भारतीयता के संदर्भ में -'एक और द्रोणाचार्य'अनुशीलनशोध) (पत्रिकाजनवरी 2012
3. स्त्री विमर्श में लोकपक्ष की भारतीयता -अनुशीलन (शोध पत्रिका) जुलाई 2012
4. पारिस्थितिक अवबोध - हेमंत कुकरेती की कविताओं में - अनुशीलन (शोध पत्रिका) जनवरी 2013

राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रपत्र प्रस्तुतीकरण

1. समकालीन कविता में पारिस्थितिक अवबोध –जनवरी 2013
2. दलित कविता में लोकसंस्कृति- फरवरी 2013

संदर्भ ग्रंथसूची

मूलग्रंथ

1. अकाल में सारस — केदारनाथ सिंह
   राजकमल प्रकाशन
   नयी दिल्ली,प्र. सं. 1998

2. अतिक्रमण — कुमार अंबुज
   राधाकृष्ण प्रकाशन
   दिल्ली, प्र. सं. 2002

3. अनभै कथा — जितेन्द्र श्रीवास्तव
   नवचेतन प्रकाशन
   दिल्ली,प्र. सं 2004

4. अनुष्टुप् — अनामिका
   किताबघर
   नयी दिल्ली,प्र. सं. 1998

5. अनंतिम — कुमार अंबुज
   राधाकृष्ण प्रकाशन
   दिल्ली, प्र. सं. 2002

6.	अन्न है मेरा शब्द	एकांत श्रीवास्तव आधार प्रकाशन हरियाणा,प्र. सं. 1994
7.	अपनी केवल धार	अरुण कमल वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्र. सं. 1999
8.	अपने खेत में.....	नागार्गुन वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली,प्र. सं. 1997
9.	अपने घर की तलाश में	निर्मला पुतुल रमणिका फाउडेशन दिल्ली, प्र. सं. 2004
10.	अब और नहीं	ओमप्रकाश वाल्मीकि राधा कृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009
11.	अबूतर कबूतर	उदय प्रकाश राधाकृष्ण प्रकाशन नयी दिल्ली,प्र. सं. 1984

12. अभी बिल्कुल अभी केदारनाथ सिंह
संभावना प्रकाशन
हापुड, प्र. सं. 1980

13. असुन्दर सुन्दर जितेन्द्र श्रीवास्तव
भारतीय ज्ञानपीठ
नयी दिल्ली, प्र. सं. 2008

14. अस्पताल के बाहर टेलीफोन पवन करण
राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र. सं. 2009

15. इस तरह मैं पवन करण
मेधा बुक्स
दिल्ली, प्रं.सं. 2004

16. इस पौरुषपूर्ण समय में कात्यायनी
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र. सं . 1999

17. उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ — केदारनाथ सिंह
राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र. सं. 1995

18. उदित क्षितिज पर — विजेन्द्र
किताब घर
नयी दिल्ली,प्र. सं. 1996

19. कब होगी वह भोर — सूरज पाल चौहान
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली,प्र. सं. 2007

20. कहना नहीं आता — पवन करण
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र. सं. 2012

21. काल बाँक तिरछा — लीलाधर मंडलोई
राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र.सं. 2004

22. कुआनो नदी — सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
राज कमल प्रकाशन
नयी दिल्ली,प्र. सं. 1993

23. कुरुज	मदन कश्यप राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली,प्र. सं. 2006
24. खत्म नहीं होती बात	बोधिसत्व राजकमल प्रकाशन दिल्ली,प्र. सं. 2010
25. खुरदुरी हथेलियाँ	अनामिका राधाकृष्ण प्रकाशन नयी दिल्ली,प्र.सं. 2005
26. खूंटियों पर टंगे लोग	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना राज कमल प्रकाशन नयी दिल्ली,प्र. सं. 1982
27. गंगातट	ज्ञानेन्द्रपति राधाकृष्ण प्रकाशन नयी दिल्ली, प्र .सं.2000

28. गाँव का बीजगणित — कुमार कृष्ण
प्रकाशन संस्थान
दिल्ली,प्र. सं. 2000

29. घना के पाँखी — विजेन्द्र
सार्थक प्रकाशन
नई दिल्ली,प्र. सं. 2000

30. चलने से पहले — हेमंत कुकरेती
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र. सं. 1996

31. चाँद पर नाव — हेमंत कुकरेती
भारतीय ज्ञानपीठ
नयी दिल्ली,प्र. सं. 2003

32. चाँद की वर्तनी — राजेश जोशी
राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र. सं. 2006

33. चैत की लाल टहनी — विजेन्द्र
संभावना प्रकाशन
हापुड,प्र. सं. 1982

34. जंगल का दर्द — सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
राजकमल प्रकशन
नयी दिल्ली,प्र. सं. 1976

35. दुनिया रोज़ बनती है — आलोकधंवा
राज कमल प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र. सं. 1998

36. दुस्वप्न भी आते हैं — अष्टभुजा शुक्ल
राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली,प्र. सं. 2004

37. देखा अदेखा — लीलाधर मंडलोई
शिल्पयान प्रकाशन
दिल्ली,प्र. सं. 2002

38. धूप घडी — राजेश जोशी
राजकमल प्रकशन
नयी दिल्ली,प्र. सं. 2002

39. नगाडे की तरह बजते शब्द — निर्मला पुतुल
भारतीय ज्ञानपीठ
नई दिल्ली, प्र. सं. 2004

40. नये इलाके में — अरुण कमल
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली,प्र. सं. 1996

41. नागकेसर का देश यहाँ — एकांत श्रीवास्तव
प्रकाशन संस्थान
दिल्ली , प्र. सं 2009

42. नीम रोशनी में — मदन कश्यप
आधार प्रकाशन
हरियाणा, प्र. सं. 2000

43. नेपथ्य में हँसी — राजेश जोशी
राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली,प्र. सं. 1994

44. पहाड पर लालटेन — मंगलेश डबराल
राधाकृष्ण प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र. सं. 1981

45. पानी का दुखडा	विमल कुमार वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली,प्र.सं. 2009
46. बीज से फूल तक	एकांत श्रीवास्तव राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली,प्र. सं. 2004
47. बस्स! बहुत हो चुका	ओमप्रकाश वाल्मीकि वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्र. सं. 1997
48. बाघ	केदारनाथ सिंह भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली,प्र. सं. 1998
49. बीजाक्षर	अनामिका भूमिका प्रकाशन नयी दिल्ली,प्र. सं. 1993
50. मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद	एकांत श्रीवास्तव प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली,प्र. सं. 2000

51. मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए	स्वप्निल श्रीवास्तव मेधा प्रकाशन दिल्ली, प्र. सं. 2004
52. यह तुम जानो तुमने उसे कब पहचाना	सुशीला टाकभौरे स्वराज प्रकाशन दिल्ली, प्र. सं. 1994-1995
53. ये आकृतियाँ तुम्हारी	विजेन्द्र कोणार्क प्रकाशन दिल्ली,प्र. सं. 1980
54. यहाँ से देखो	केदारनाथ सिंह राधाकृष्ण प्रकाशन नयी दिल्ली, प्र. सं. 1983
55. रात में हारमोनियम	उदयप्रकाश वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली,प्र. सं. 1998
56. रोया नहीं था यक्ष	हरिराम मीणा जगतराम एण्ड संस नयी दिल्ली, प्र, सं 2003

57. लेकिन उदास है प्रथ्वी	मदन कश्यप आधार प्रकाशन दिल्ली,प्र. सं. 1992
58. लकडबग्धा हँस रहा है	चन्द्रकांत देवताले वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्र. सं. 2000
59. सबूत	अरुण कमल वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली प्र. सं. 1989
60. संपूर्ण कविताएँ	कुमार विकल आधार प्रकाशन हरियाणा, प्र. सं. 2000
61. संशयात्मा	ज्ञानेन्द्रपति राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली,प्र. सं. 2004

62. सात भाइयों के बीच चम्पा — कात्यायनी
आधार प्रकाशन
हरियाणा, प्र. सं. 1997

63. सिर्फ कवि नहीं — बोधिसत्व
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद,प्र. सं. 1991

64. हमारा जो देखते हैं — मंगलेश डबराल
राधा कृष्ण प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र. सं. 1995

65. हमारा जो नदियों का संगम है — बोधिसत्व
राधाकृष्ण प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र. सं. 2000

सहायक ग्रंथ

1.अज्ञेय से अरुण कमल(भाग-1) — डॉ संतोष कुमार तिवारी
भारतीय ग्रंथ निकेतन
नई दिल्ली,प्र. सं. 2005

2.अज्ञेय से अरुण कमल(भाग-2)	डॉ संतोष कुमार तिवारी भारतीय ग्रंथ निकेतन नई दिल्ली,प्र. सं. 2005
3.आज की कविता	विनय विश्वास राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली प्र. सं. 2009
4.आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी	रमणिका गुप्ता वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली प्र.सं 2002
5.आधुनिक हिन्दी कविता में कृषि संस्कृति	डॉ गायत्री सिंह साहित्य निलाय कानपुर प्र. सं. 2008

6.आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व	डॉ वीरेन्द्र नाथ द्विवेदी विद्याप्रकाशन कानपुर प्र. सं 1991
7. आधुनिक हिन्दी कविता में विचार	डॉ बलदेव वंशी वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली प्र. सं. 2002
8. आधुनिक हिन्दी कविता का वैचारिक पक्ष	रतन कुमार विश्वविद्यालय प्रकाशन वारणसी,प्र. सं. 2000
9. कविता का आत्मपक्ष	एकांत श्रीवास्तव प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली प्र. सं. 2006

10.कविता का स्त्री पक्ष	प्रमीला के.पी. जवाहर पुस्तकालय मथुरा प्र. सं. 2008
11. कविता की वापसी और अरुण कमल का काव्य	विधि शर्मा अनामिका पब्लिशर्स नई दिल्ली प्र.सं. 2005
12. कहती हैं औरतें	अनामिका इतिहास बोध प्रकाशन इलाहाबाद प्र. सं. 2003
13.केदारनाथ सिंह और उनका समय	निरंजन सहाय शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्टीब्यूटर्स दिल्ली प्र. सं 2008

14. केदारनाथ सिंह का काव्य लोक — डॉ शेरपालसिंह, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 2005

15. चन्द्रकांत देवताले की कविता — उषस् पी. एस्, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र. सं. 2008

16. चिंतामणि भाग-1 — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र. सं. 1983

17. जनजातीय लोकसंगीत एक अध्ययन — डॉ सत्यनारायण व्यास, अंकुर प्रकाशन, उदयपुर, प्र.सं 2002

18. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र — डॉशरण कुमार लिंबाले
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 2000

19. नई कविता का रूप — डॉ रेनू दीक्षित
सरस्वती प्रकाशन
कानपुर
प्र.सं.2009

20. नागार्जुन की कविता — रमाकांत आपरे
विकास प्रकाशन
कानपुर
प्र. सं. 2008

21.प्रकृति पर्यावरण और समकालीन कविता मनीषा झा
आनंद प्रकाशन
कोल्कत्ता
प्र. सं. 2004

22. प्रगतिवादी कविता में प्रकृति प्रेम और सौंदर्य — डॉ हरिलाल शर्मा
विवेक प्रकाशन
मुंबई
प्र.सं. 1998

23.फिर फिर नागार्जुन — सं. विश्वरंजन
प्रमोद वर्मा स्मृति संस्थान
दिल्ली
प्र. सं. 2011

24.भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश — रामविलास शर्मा
किताबघर प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1999

25. भोजपुरी लोकगाथा — सत्यव्रत सिन्हा
हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद
प्र. सं. 1957

26. मुक्तिबोध की काव्य कला	डॉ अचला रानी तिवारी विद्या विहार कानपुर प्र. सं. 1989
27. रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्य में लोकतत्व	जगदेव कुमार शर्मा संजय प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. 2003
28. लोकसाहित्य अर्थ और व्याप्ति	डॉ सुरेश गौतम संजय प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. 2008
29. लोकसाहित्य और संस्कृति	डॉ दिनेश्वर प्रसाद इलाहाबाद प्र. सं. 1973

30. लोकसाहित्येवं लोकसंस्कृति	उषा सक्सेना राजभाषा प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. 2007
31. लोकसाहित्य का अध्ययन	त्रिलोचन पाण्डेय लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्र. सं. 1978
32. लोक साहित्य की रूपरेखा	डो कृष्णदेव उपाध्याय लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्र. सं 1988
33. लोकसाहित्य का लोकतत्व	डॉ रामनिवास शर्मा निर्मल पब्लिकेशन दिल्ली सं.2003

34. लोकसाहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन	डॉ महेश गुप्त समीक्षा प्रकाशन दिल्ली, प्र. सं. 2001
35. लोक संस्कृति के सोपान	कमलेश माथुर जैना पब्लिशर्स जयपुर, प्र.सं. 1998
36. लोकसाहित्य विविध आयाम एवं नयी दृष्टि	डॉ जयश्री गावीत विद्या प्रकाशन कानपुर प्र. सं. 2007
37.समकालीन कविता एक विश्लेषण	अशोक सिंह लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्र. सं.1990
38. समकालीन कविता और सौन्दर्यबोध	रोहिताश्व वाणी प्रकाशन नई दिल्ली सं.1996

39. समकालीन कविता की भूमिका — डॉ मोहन, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 2005

40. समकालीन कविता के आयाम — सं. डॉ.पी. रवि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 2013

41. समकालीन कवि दृष्टि और बोध — रतन कुमार पाण्डेय, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2002

42. समकालीन हिन्दी कविता — विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1982

43. समकालीन कविता में मानव मूल्य — डॉ हुकुमचंद राजपाल, शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 199

44. समकालीन कवि लीलाधर जगूडी डॉ. अंजली चौधरी
विद्या विहार
कानपुर
प्र. सं. 2007

45. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और उनका
काव्य संसार डॉ मञ्जु त्रिपाठी
विश्वविद्यालय प्रकाशन
प्र. सं. 2001

46. समकालीन साहित्य चिंतन सं. डॉ महीपसिंह
ज्ञान गंगा प्रकाशन
बाज़ार दिल्ली
प्र. सं. 1995

47. समय संस्कृति और समकालीन कविता मनीषा झा
प्रकाशन संस्थान
नयी दिल्ली
प्र. सं. 2011

48. साठोत्तरी हिन्दी कविता में लोक सौन्दर्य — श्री प्रकाश शुक्ल
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद
प्र. सं. 2001

49. स्त्री मुक्ति और कविता — डॉ. प्रमीला के. पी.
मिलिन्द प्रकाशन
हैदराबाद
प्र. सं. 2006

50. स्त्री विमर्श का लोक पक्ष — अनामिका
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली
प्र. सं. 2012

51. स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यासों में कृषक जीवन — डॉ. उत्तमभाई एल. पटेल
भारत भारती
दिल्ली
प्र. सं. 2002

52. स्वातंत्रोत्तर हिन्दी नाटक साहित्य में लोकतत्व शैलजा भारद्वाज
भारतीय कला
प्रकाशन
दिल्ली
प्र. सं. 1998

53. हमारे त्योहार और उत्सव
प्रकाश नारायण
नाटाणी
किताब घर नई
दिल्ली
प्र. सं. 2006

54 हिन्दी कविता का वर्तमान परिदृश्य
डॉ हरिशर्मा
प्रकाशन संस्थान
नई दिल्ली
प्र. सं. 2007

55 हिन्दी दलित कविता
डॉ रजत रानी मीनू
नवभारत प्रकाशन
दिल्लीप्र. सं. 2009

पत्र- पत्रिकाऐं

आजकल	अप्रैल 1981
	अक्तूबर 2005
आलोचना	जनवरी- मार्च 2001
	अक्तूबर-सितंबर 2005
कथन	अक्तूबर- दिसंबर 2006
	जून 2007
कथाक्रम	अक्तूबर 2006
	जनवरी 2007
कथादेश	मई 2010
	मई 2012
भाषा	जनवरी- फरवरी 2001

	जुलाई- अगस्त 2005
मधुमती	दिसंबर 1997
	अप्रैल 2002
	फरवरी 2003
	मार्च 2003
	दिसंबर 2005
	जनवरी 2006
	अप्रैल- मई 2006
	मई 2008
	अगस्त 2008
	अक्तूबर 2008
	मई 2009
	अक्तूबर 2009
	अप्रिल- मई 2010
	अगस्त 2010
	सितम्बर 2010
युद्धरत आम आदमी	विशेषांक 2011

वचन	जनवरी 2012
वागर्थ	जुलाई 2007
	फरवरी 2011
विकास प्रभा	मार्च 2013
समकालीन भारतीय साहित्य	नवंबर 2011
साक्षात्कार	नवम्बर 1994
	सितंबर 1995
	अक्तूबर 1995
	अगस्त 1998
	अप्रैल 1999
	जुलाई 1999
	अगस्त 1999
	सितंम्बर 2001
	अक्तूबर 2001
	जून 2003
	नवम्बर 2003
	मई 2004
	जून 2004